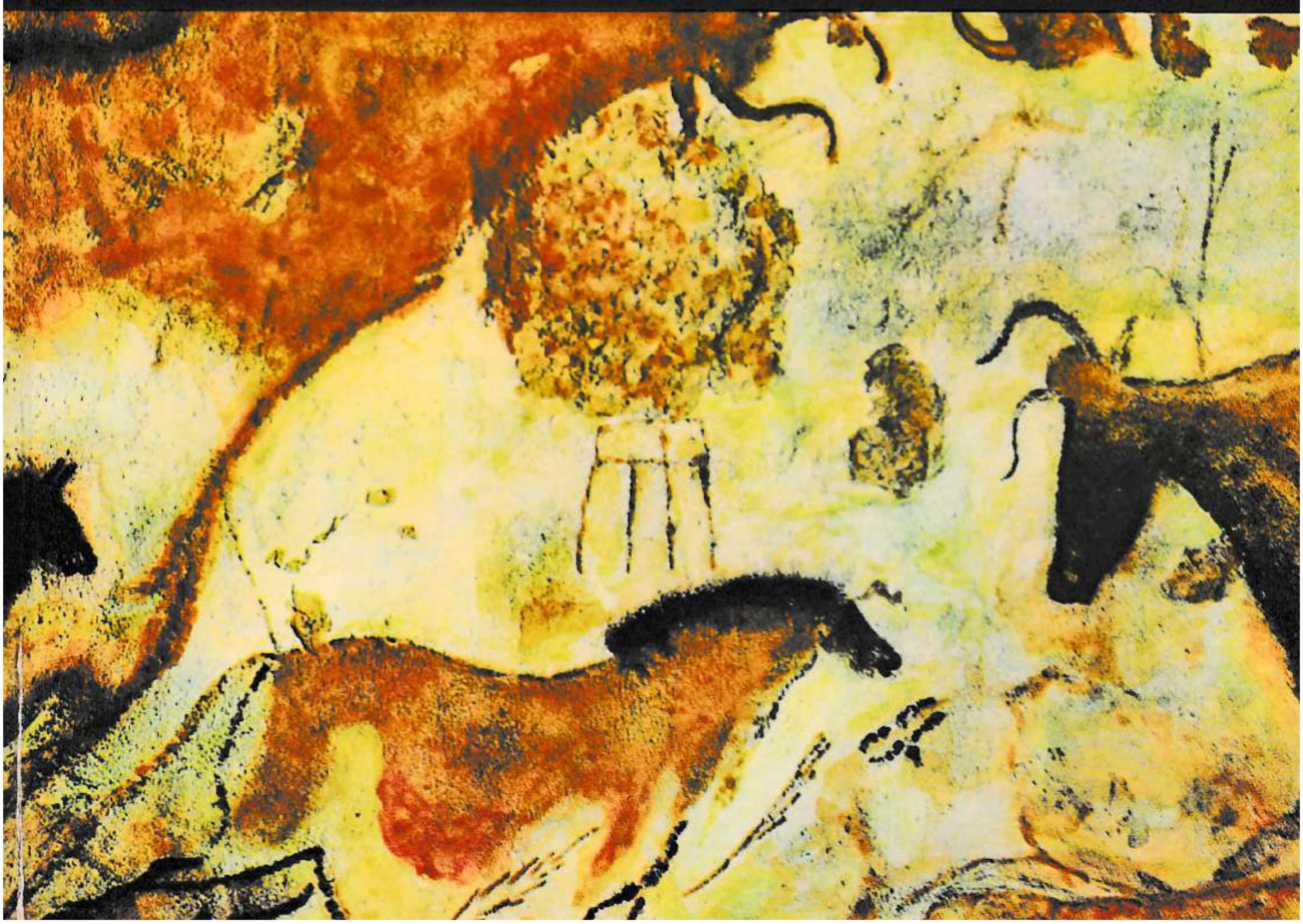
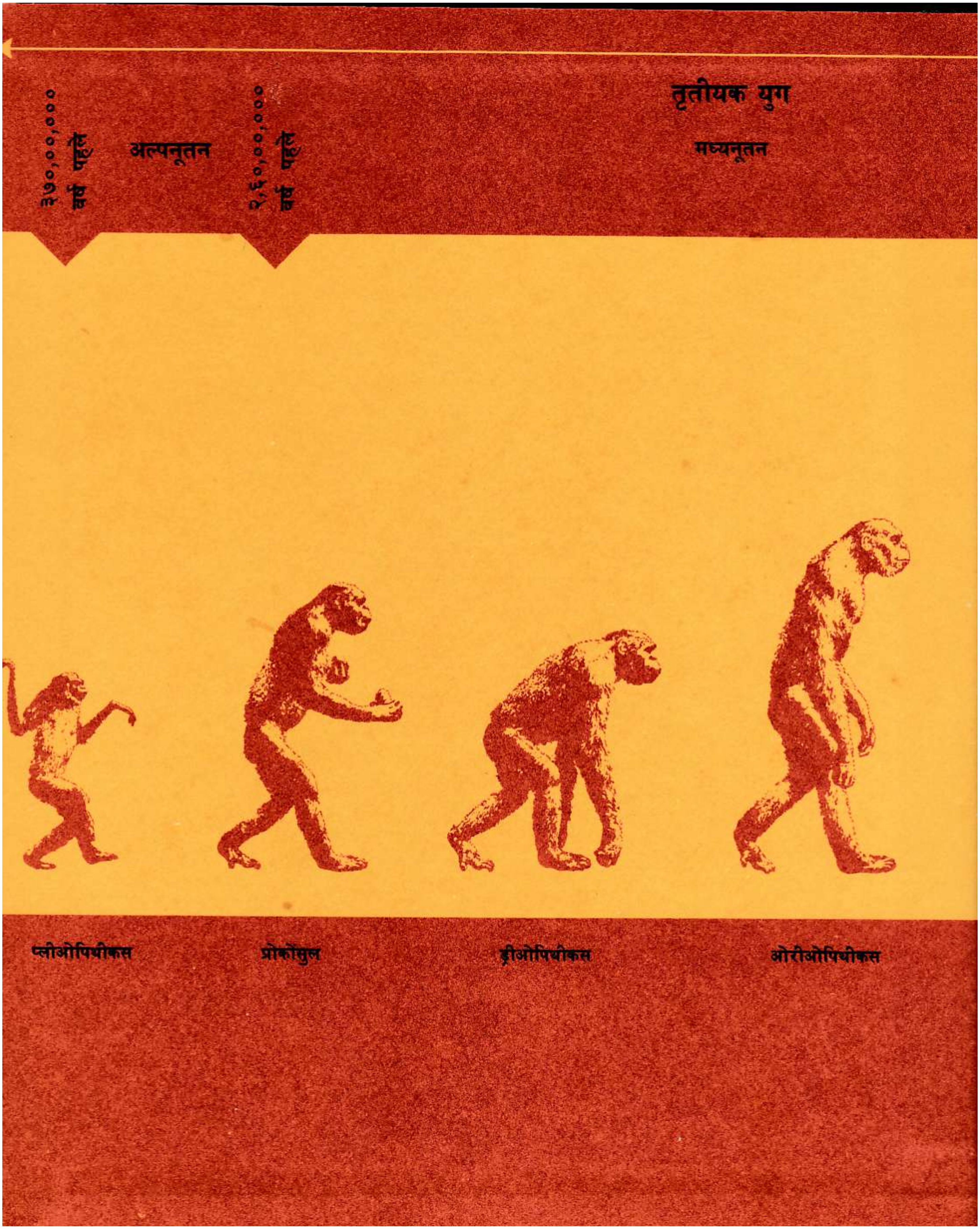
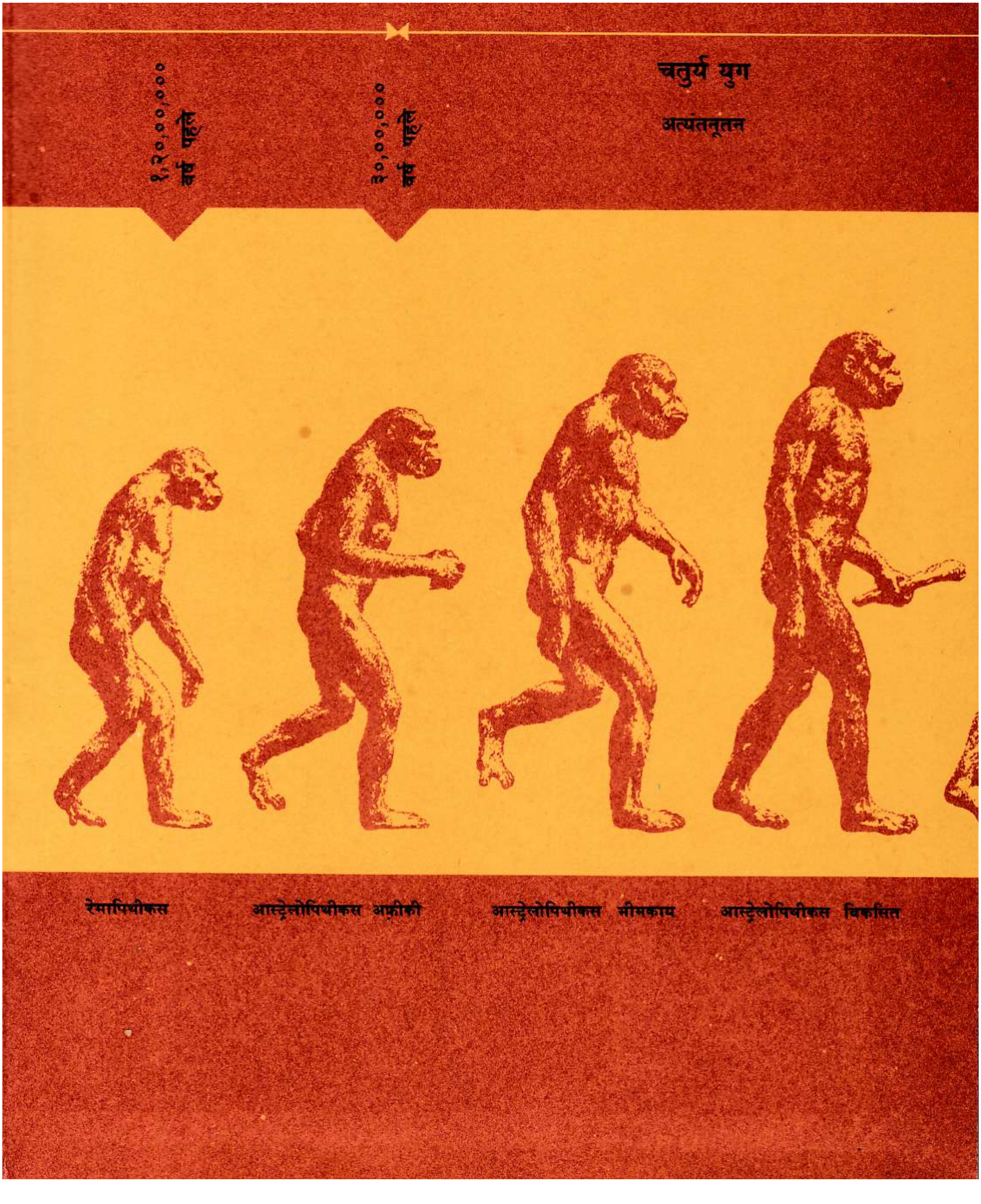
मि॰ इल्यीन,
ये॰ सेगाल

मनुष्य महाबली कैसे बना





तृतीयक युग
मध्यनूतन
३७०,००,००० वर्ष पहले
अल्पनूतन
२,६०,००,००० वर्ष पहले
प्लीओपिथीकस
प्रोकोंसुल
ड्रीओपिथीकस
ओरीओपिथीकस


१,२०,००,००० वर्ष पहले
३०,००,००० वर्ष पहले
चतुर्थ युग
अत्यंतनूतन
रेमापिथीकस
आस्ट्रेलोपिथीकस अफ्रीकी
आस्ट्रेलोपिथीकस भीमकाय
आस्ट्रेलोपिथीकस विकसित

मनुष्य महाबली कैसे बना

मि॰ इल्यीन,
ये॰ सेगाल

रादुगा प्रकाशन · मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा॰) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

अनुवादक : नरेश वेदी

डिज़ाइन और रूप सज्जा : लेओनीद श्कानोन।

छाया और स्लाइड : वालेन्तीन चेर्तोक (सौजन्य : ऐतिहासिक संग्रहालय)।
चित्रकार : अलेक्सेई कोल्ली तथा द्मीत्री ग्रोमान।

आवरण पर सामने : घोड़ा और बैल। चित्र। लास्को गूफा। फ़्रांस। प्रारंभिक पुरापाषाण युग।
आवरण पर पीछे : जाबरान (सहारा) में चट्टान पर खुदाई। ६,०००,००० से १,०००,००० वर्ष ई० पू० तक।

हिन्दी अनुवाद ० रादुगा प्रकाशन ० मास्को

सोवियत संघ में मुद्रित

М. Ильин, Е. Сегал
КАК ЧЕЛОВЕК СТАЛ ВЕЛИКАНОМ
на яз. хинди

Ilyin M. and Segal H.
HOW MAN BECAME A GIANT
in Hindi

ISBN 5-05-000405-9

И $\frac{4803010102-600}{031(05)-85}$ 362-85

इस पुस्तक के विषय का सुझाव म० गोर्की ने दिया था। उन्होंने कहा था: "जानते हो मैं इस तरह की किताब कैसे शुरू करता? अनंत शून्य की कल्पना करो। नक्षत्र, नीहारिकाएं... किसी विशाल नीहारिका की गहराई में कहीं सूरज चमकने लगता है। ग्रह सूरज से अलग हो जाते हैं। किसी छोटे-से ग्रह के धरातल पर पदार्थ सजीव हो उठता है, उसमें अपने बारे में चेतना पैदा होने लगती है। मनुष्य उत्पन्न होता है..." इस पुस्तक के लेखकों ने १९३६ में अपना काम आरंभ किया। उन्होंने बताया है कि मनुष्य कैसे उत्पन्न हुआ, उसने काम करना और सोचना कैसे आरंभ किया, उसने आग और लोहे को अपने वश कैसे किया, उसने प्रकृति पर अपना प्रभुत्व कैसे स्थापित किया, किस तरह उसने इस दुनिया को समझा और उसका पुनर्निर्माण किया।

मनुष्य महाबली है

इस धरती पर एक महाबली रहता है।

उसके हाथ भीमकाय रेलवे इंजन को उठा सकते हैं।

उसके पैर हज़ारों कोस रोज़ नाप सकते हैं।

उसके पंख उसे बादलों के ऊपर ले जा सकते हैं, जहां कोई पक्षी भी नहीं पहुंच सकता।

उसके पर किसी भी मछली के परों से ज़्यादा शक्तिशाली हैं।

उसकी आंखें अदृश्य चीज़ों को देख लेती हैं, उसके कान दुनिया के दूसरे छोर पर बोले गये शब्द सुन लेते हैं।

वह इतना बलवान है कि पहाड़ों को आरपार छेद सकता है और झरनों को रोक सकता है।

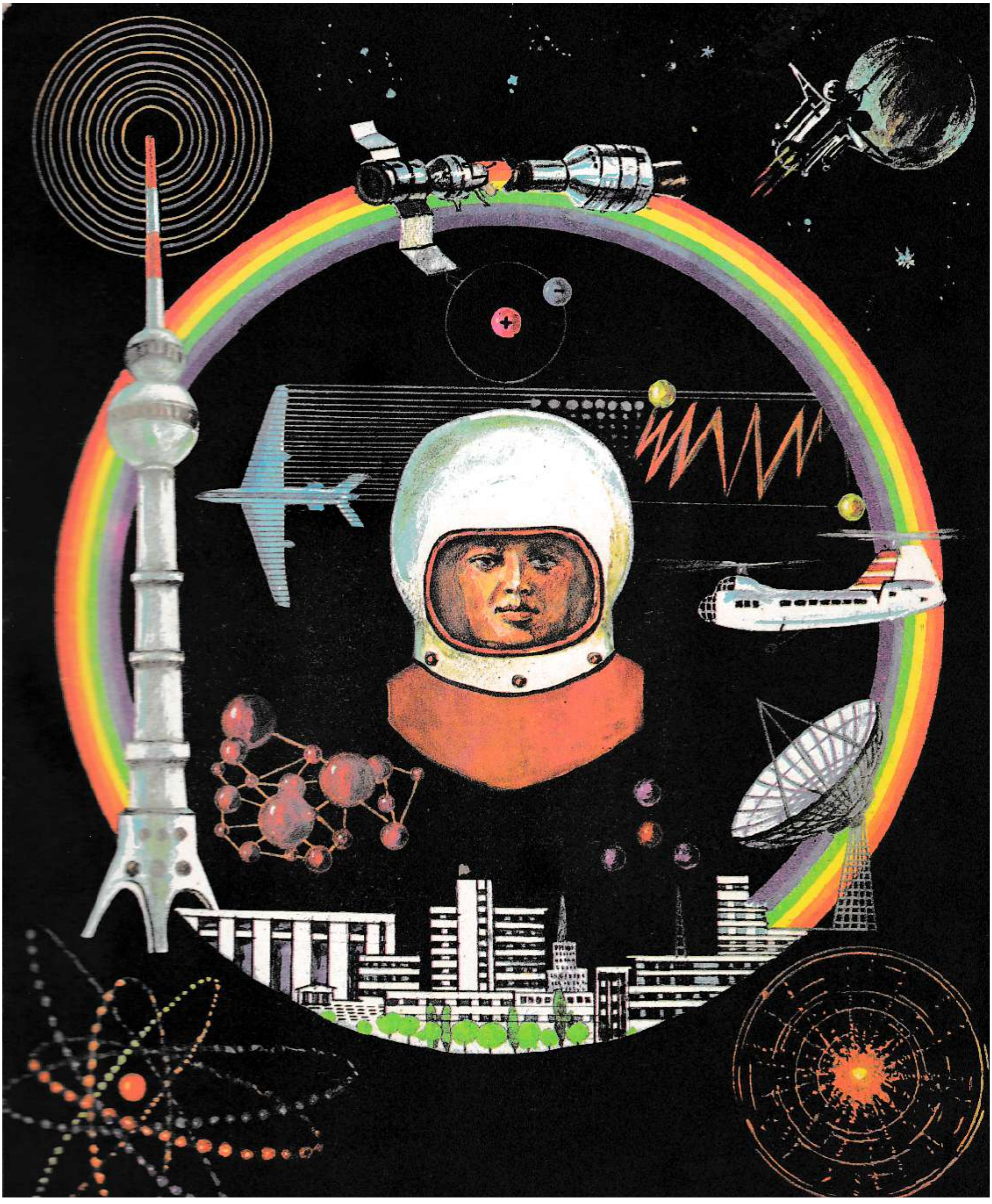
वह धरती का चेहरा बदल रहा है, जंगल उगा रहा है, समुद्रों को जोड़ रहा है, रेगिस्तानों में पानी ला रहा है।

यह महाबली कौन है?

मनुष्य।

लेकिन वह महाबली क्योंकर बना, वह धरती का राजा कैसे बना?

यही इस पुस्तक की हकानी है।





अदृश्य पिंजरा

ज़माना था जब मनुष्य महाबली नहीं, बौना था, प्रकृति का स्वामी नहीं, उसका सामान्य दास था।

प्रकृति पर उसका उतना ही बस था, वह उतना ही आज़ाद था जितना कि जंगल का कोई जानवर या हवा में उड़नेवाला पक्षी।

कहावत है – चिड़ियों की तरह आज़ाद।

लेकिन क्या चिड़िया सचमुच आज़ाद होती है?

ठीक है कि उसके पंख होते हैं। और उसके पंख उसे जंगलों, पहाड़ों और सागरों के पार कहीं भी ले जा सकते हैं। शरद ऋतु में दक्षिण की ओर जाते सारसों से हमें कितनी बार ईर्ष्या हुई है! ऊपर, ऊंचे आसमान पर पक्षियों की क़तारें पंख मारती चली जाती हैं और नीचे अचरज से सिर उठाये लोग कहते हैं – "ज़रा, चिड़ियों को तो देखो! वे कहीं भी जा सकती हैं!"

लेकिन बात क्या सचमुच यही है? क्या पक्षी हज़ारों किलोमीटर महज़ इसलिए उड़कर जाते हैं कि उन्हें सैर करना अच्छा लगता है? नहीं, जो चीज़ उन्हें ले जाती है, वह आनंद नहीं, आवश्यकता है। ये घुमक्कड़ आदतें पक्षियों की असंख्य पीढ़ियों के लाखों वर्ष लंबे जीवन-संघर्ष के दौरान पैदा हुई हैं।



पक्षी क्योंकि एक जगह से दूसरी जगह आसानी से उड़कर जा सकता है, इसलिए इस पर अचरज करना स्वाभाविक ही है कि पक्षियों की हर जाति संसार के हर भाग में क्यों नहीं पाई जाती।

अगर ऐसा होता, तो हमारे उत्तरी चीड़ वन और भोज अरण्य चटकीले रंगों के परोंवाले तोतों से भरे होते, और जंगलों में हम मैदानी पक्षी भरत (लार्क) की सुपरिचित चहक सुन लेते। लेकिन ऐसा न है और न कभी हो सकता है, क्योंकि पक्षी जितने आज़ाद नज़र आते हैं, दरअसल उतने हैं नहीं। दुनिया में हर पक्षी की अपनी जगह है। कोई जंगल में रहता है, कोई खेत में, तो किसी का ठिकाना समुद्र के तट पर है।

सोचो तो, उक़ाब के पंख कितने शक्तिशाली होते हैं! तिस पर भी अपना घोंसला बनाने की जगह चुनते समय वह एक अदृश्य सीमा को (जिसे नक्शे पर सचमुच अंकित किया जा सकता है) कभी पार नहीं करेगा। सुनहरा उक़ाब खुले, वृक्षहीन मैदान में अपना विशाल घोंसला नहीं बनायेगा और मैदानी उक़ाब कभी जंगल में अपना घर नहीं बनायेगा।

एक अदृश्य बाड़ जंगल को मैदान से अलग कर देती है, जिसे कोई भी जानवर या पक्षी पार नहीं कर सकता।

पिंगल कुकल (हेज़ेल-ग्राउज़), स्वर्णचूड़ पक्षी (किंगलेट) या गिलहरी जैसे वनवासी तुम्हें कभी मैदान में नहीं मिल सकते। और सारंग (बस्टर्ड) या चपलाखु (जरबोआ) और धानीमूष जैसे असली मैदानी पशु-पक्षी कभी जंगल में नहीं मिलेंगे।

इसके अलावा हर जंगल और मैदान में कितनी ही और छोटी-छोटी अदृश्य बाड़ें होती हैं, जो उन्हें कितनी ही नन्हीं-नन्हीं दुनियाओं में बांट देती हैं।

जंगल की सैर

जंगल में घूमते समय तुम लगातार अदृश्य बाड़ों को पार करते जाते हो। और जब तुम पेड़ पर चढ़ते हो, तो तुम्हारा सिर कितनी ही अदृश्य बाड़ों को तोड़ देता है। सारा का सारा जंगल एक बड़े रिहायशी मकान की तरह मंज़िलों और फ़्लेटों में बंटा हुआ है। ये सब सचमुच में हैं, चाहे तुम उन्हें देख न सको।

जंगल में घूमते समय तुम यह अवश्य देख सकते हो कि वह एक जैसा नहीं है। मिसाल के तौर पर, तुम्हारा ध्यान इस तरफ़ जा सकता है कि अचानक देवदार की जगह चीड़ के पेड़ ले लेते हैं और कहीं चीड़ के पेड़ और जगहों के मुक़ाबले ऊंचे जाते हैं। कहीं तुम्हारे पैर काई के हरे क़ालीन पर पड़ते हैं, तो कहीं ज़मीन घास या पत्थर के फूलों (लाइकेन) से ढकी होती है।



देहाती इलाक़े में गरमियां बितानेवाला शहरी तुमसे कहेगा कि वह जंगल में है। मगर तुम किसी वनविशेषज्ञ से पूछो, तो वह कहेगा कि यहां एक नहीं, चार जंगल हैं। सीलन भरे उतार में सरो के पेड़ रोपते हैं, जहां काई का मोटा क़ालीन है। उसके आगे, रेतीले ढाल पर, हरी काई भरी ज़मीन पर चीड़ का कुंज है, जिसमें लाल और काली बिलबेरियों की झाड़ियां भरी पड़ी हैं। इससे भी ऊपर, रेतीले टीलों पर सफ़ेद काई चढ़े चीड़ों का वन है। और जहां नम जगह है, वहां चीड़ों के नीचे की ज़मीन घास से ढकी है।

जंगल को चार छोटी-छोटी दुनियाओं में बांटनेवाली तीन दीवारों को तुमने अभी-अभी उन्हें देखे बिना ही पार किया है।

मकानों पर जिस तरह नामों की तख़्तियां लगी रहती हैं, वैसी कहीं जंगल में भी होतीं, तो देवदार के जंगल के पेड़ों पर तुम्हें ये नाम मिलते – श्री विषमचंचु (क्रॉसबिल), श्रीमती चटिका (सिस्किन), श्री स्वर्णचूड़ (किंगलेट), श्री तिपंजा कठफोड़वा। पत्रधारी जंगलों में बिलकुल दूसरे नाम मिल जाते – श्री हरित कठफोड़वा, श्रीमती स्वर्णचटक (गोल्डफ़िंच), कुमारी नील वल्गुली (ब्लू टिटमाउस), श्री शलभाश (फ़लाइकैचर), श्रीमती द्रुमकूजिनी (चिफ़-चैफ़) श्रीमती मैना (मॉकिंगबर्ड), श्री कालशीर्ष (ब्लैककैप), श्री कृष्ण कठफोड़वा, आदि-आदि।

हर जंगल की कई-कई मंज़िलें होती हैं।

चीड़ वन की दो – और कभी-कभी तीन भी – मंज़िलें होती हैं। निचली मंज़िल काई या घास की होती है। बीच की झाड़ियों की होती है। ऊपरी मंज़िल चीड़ वृक्षों की होती है।

शाहबलूत वन में सात मंज़िलें होती हैं। बलूत, प्रभूर्ज (ऐश ट्री), वासच्छाय (लिंडन) और मेपल की सबसे ऊपरी मंज़िल आसमान से बातें करती है। वह वन

के ऊपर गरमियों में हरी और शरद में चटकीली सुनहरी छत बनाती है। बांज की आधी ऊंचाई तक पहुंची पहाड़ी प्रभूर्ज और जंगली सेब तथा नाशपाती की फुनगियां होती हैं।



इनके नीचे झाड़-झंखाड़ की भरमार होती है – शंबी कुंज (नट ग्रोव) , श्वेतकंट (हॉथर्न)। झाड़ियों के नीचे फूल और घासें होती हैं। ये भी अलग-अलग स्तरों पर होते हैं और इनमें गोमेद (ब्लूबेल) अन्य फूलों से ऊंचे होते हैं। इनके नीचे, पर्णांग (फ़र्न) में वासंती नलिनी (लिली आफ़ द वैली) और गोधूम (काऊव्हीट) और इनके भी नीचे ज़मीन के और पास नील-पुष्प (वाइ-अ-लिट) और जंगली स्ट्रॉबेरियां होती हैं। ज़मीन पर काई फैली रहती है।

जंगल का तहख़ाना, जैसा कि होना भी चाहिए, ज़मीन के नीचे होता है। यहीं हमें पेड़ों, झाड़ियों और फूलों की जड़ें मिलती हैं।

चीड़ या पत्रधारी जंगल की हर मंज़िल के अपने बाशिंदे होते हैं। बाज़ अपना घोंसला सबसे ऊंचाई पर बनाता है। उसके नीचे, किसी पेड़ के कोटर में कठफोड़वा अपने परिवार के साथ रहता है। कालशीर्ष ने अपना घोंसला झाड़ी में बनाया है। जंगली मुर्ग़ा, जो निचली मंज़िल पर रहता है, ज़मीन पर घूमता है। ज़मीन के नीचे, तहख़ाने में, जंगली चूहों के बिल और घर हैं।

इस विशाल भवन में सभी तरह के निवास-स्थान हैं। ऊपरी मंज़िलें धूपदार और ख़ुश्क हैं। निचली मंज़िल अंधेरी और नम है। ऐसे ठंडे निवास-स्थान भी हैं, जो ग्रीष्मावासों का काम दे सकते हैं और ऐसे गरम निवास भी हैं, जो बारहों मास काम आ सकते हैं।

ज़मीन में खुदा बिल गरम निवास है। वैज्ञानिकों ने एक बिल का ताप नापा, जो डेढ़ मीटर गहरा चला गया था। यह सरदियों की बात है, बाहर का ताप –१८ ° (सें०) था, लेकिन बिल में तापमापी ने +८ ° दिखाया।

पेड़ के कोटर में बहुत ठंड होती है। यहां सरदियों में जानवर जम तक सकता है। तथापि गरमियों में यह जगह मज़ेदार हो जाती है, ख़ासकर उल्लुओं और चमगादड़ों के लिए, जो हमेशा ही "रात की पाली" पर होते हैं और दिन का समय धूप से बचे-बचे किसी अंधेरे कोने में काटना पसंद करते हैं।

लोग अपने निवास-स्थान बदलते ही रहते हैं और एक मकान से दूसरे में, एक मंज़िल से दूसरी पर जाते ही रहते हैं। लेकिन जंगल में यह बात लगभग असंभव है।

जंगली मुर्ग़ा कभी अपने अंधेरे, नम मक़ान की जगह सूखी, धूपभरी अटारी नहीं लेगा। और अटारी का प्रेमी बाज़ कभी अपना घोंसला पेड़ के नीचे ज़मीन पर ले जाने को तैयार न होगा।

जंगल के क़ैदी

चलो, मान लें कि किसी गिलहरी ने अपने निवास की धानीमूष के निवास से अदला-बदली करने का निश्चय कर लिया। गिलहरी जंगल में रहती है, जबकि धानीमूष खुले स्तेपी या रेगिस्तान में रहता है।

गिलहरी का घर पेड़ पर, ऊंचे पर, किसी कोटर में या डालियों पर है। धानीमूष ज़मीन के नीचे बिल में रहता है।

अपने नये घर में पहुंचने के लिए धानीमूष को पेड़ पर चढ़ना होगा। मगर वह यह कर न पायेगा, क्योंकि उसके पंजे चढ़ने के लिए बेकार हैं।

इसके विपरीत, गिलहरी कभी भी ज़मीन के भीतर न रह पायेगी। उसकी सभी आदतें और तौर-तरीक़े पेड़ों के बाशिंदों के ही हैं।

यह जानने के लिए कि वह कहां रहती है, हमारे लिए बस उसकी दुम और पंजों को देखना काफ़ी है।

गिलहरी के पंजे डालियों को पकड़ने और पेड़ों से काष्ठफल और चीड़फल तोड़ने के लिए बने हैं। उसकी दुम एक बाक़ायदा हवाई छतरी होती है, जो एक डाल से दूसरी डाल पर फलांग लगाते समय उसे हवा में सहारा देती है। गिलहरी की दुम तब भी उसके काम आती है, जब उसे कसिया (मार्टेन) की पकड़ से बचने के लिए लपकना और छलांग लगाना पड़ता है।

लेकिन धानीमूष के पंजे, जो स्तेपी में रहता है, एकदम दूसरी तरह के होते हैं और उसकी दुम गिलहरी की दुम से ज़रा भी मेल नहीं खाती। सपाट, खुले स्तेपी में छिपने के लिए न कोई झाड़ी होती है और न सुरक्षा प्रदान करने के लिए कोई पेड़। दुश्मन से बचने का अकेला तरीक़ा होता है भागना, ग़ायब हो जाना, सचमुच ज़मीन के भीतर घुस जाना। और यही असल में धानीमूष करता भी है। जैसे ही उसे ऊपर मंडराता कोई उल्लू या बाज़ नज़र आता है, वह जितनी तेज़ी से हो सकता है, दूर छलांग लगा जाता है और किसी बिल में ग़ायब हो जाता है। इसीलिए उसके पंजे ऐसे होते हैं। वह अपनी लंबी पिछली टांगों का उपयोग छलांग लगाते समय ज़मीन से उछलने में करता है, जबकि उसकी अगली टांगें खुदाई का काम करती हैं। अपने दुश्मनों से बचने के लिए वह अपने बिल में छिपता है, जो उसे गरमियों में गरमी से और सरदियों में ठंड से बचाता है।



और उसकी दुम? धानीमूष की दुम उसके पंजों की सबसे अच्छी मददगार है। जब यह छोटा-सा जानवर आसपास निगाह डालने के लिए अपनी पिछली टांगों पर बैठता है, तो इसकी दुम ऊपर सीधे टिकने के लिए तीसरी टांग की तरह सहारे का काम देती है। और जब यह छलांग लगाता है, तो इसकी दुम छलांग को पतवार की तरह ठीक दिशा में रखती है। दुम के बिना धानीमूष हर छलांग के समय हवा में गुलाटियां खाता और धड़ाम से ज़मीन पर आ गिरता।

इसलिए, अगर गिलहरी और धानीमूष अपने घरों की अदला-बदली करें, जंगल की जगह स्तेपी और कोटर की जगह बिल की अदला-बदली करें, तो उन्हें दुमों और पंजों की भी अदला-बदली करना पड़ेगी।

अगर हम जंगल और स्तेपी के अन्य निवासियों का बारीकी से अध्ययन करें,

तो हम देखेंगे कि उनमें से हर कोई दुनिया में अपनी जगह से एक अदृश्य ज़ंजीर से बंधा हुआ है – एक ऐसी ज़ंजीर, जिसे तोड़ना बहुत मुश्किल है।

जंगली मुर्ग़ा जंगल की निचली मंज़िल पर इसलिए रहता है कि उसका मनपसंद खाना तहख़ाने में है। उसकी लंबी चोंच ख़ासकर केंचुए खोट निकालने के लिए बनी लगती है। पेड़ पर चूंकि जंगली मुर्ग़े की दिलचस्पी की कोई चीज़ नहीं है, इसलिए तुम्हें वहां कोई जंगली मुर्ग़ा कभी नज़र आयेगा भी नहीं।

लेकिन तिपंजा या चित्तीदार बड़ा कठफोड़वा तुम्हें शायद ही कभी ज़मीन पर दिखाई देगा। कठफोड़वा देवदार या भोज वृक्ष के तने पर ठोंग मारता अपने दिन काट देता है।

यह किसे ठोंग रहा है? यह किसकी तलाश कर रहा है?

अगर तुम देवदार के पेड़ की ज़रा सी छाल उखाड़ो, तो तुम्हें सभी तरफ़ जाती टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें दिखाई देंगी। ये लकड़ी में छालभक्षी भृंग की बनाई सुरंगें हैं, जो सभी देवदार वृक्षों का एक स्थायी ग्राहक और निवासी है। हर टेढ़ी-मेढ़ी रेखा का अंत एक छोटे से छेद में होता है, और हर छेद में भृंग की इल्लियां (भृंग की पंख आने से पहले की कोषावस्था) होती हैं, जो फिर स्वयं भृंग में परिणत होती हैं। इस भृंग ने अपने को देवदार के अनुकूल कर लिया है और कठफोड़वे ने अपने को इस भृंग के अनुकूल बना लिया है। कठफोड़वे की सख़्त चोंच पेड़ की छाल को आसानी से छेद सकती है। और उसकी जीभ इतनी लंबी और लचकदार होती है कि वह इन टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से (या इन छेदों से) इल्लियों तक पहुंच जाती है।

और इस तरह हमें एक ज़ंजीर मिल जाती है: देवदार वृक्ष – छालभक्षी भृंग – कठफोड़वा।

यह उन बहुत-सी ज़ंजीरों में से एक है, जिनसे कठफोड़वा पेड़ से और जंगल से बंधा हुआ है।

जंगल में पेड़ पर इसे अपनी ख़ुराक मिलती है – केवल छालभक्षी भृंग ही नहीं, बल्कि अन्य कीट और उनकी इल्लियां भी। सरदियों में कठफोड़वा बड़ी सफ़ाई के साथ चीड़फल से गिरियां निकाल लेता है – यह चीड़फल को टिकाये रखने के लिए उसे तने और एक डाल के बीच दाब देता है। कठफोड़वा पेड़ के तने को खोखला करके घोंसला बना लेता है। इसकी सीधी दुम और मज़बूत पंजे तने पर चढ़ने-उतरने के लिए एकदम ठीक हैं। फिर यह पेड़ों की अपनी ज़िंदगी को किसी और ज़िंदगी से अदला-बदली भला क्यों करता?

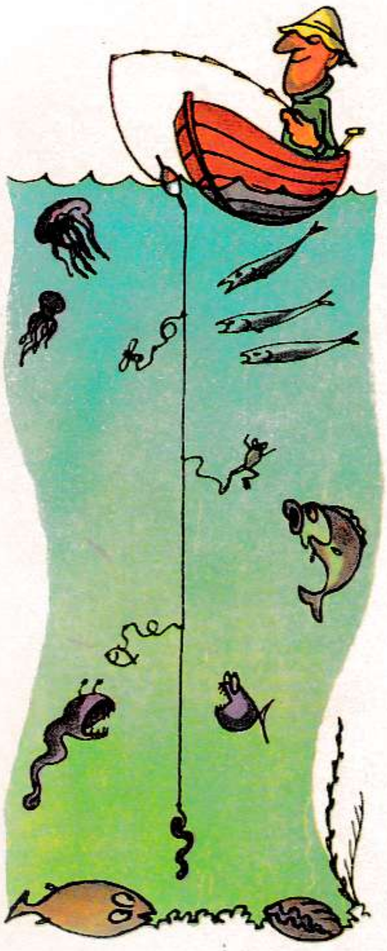
हम देखते हैं कि कठफोड़वा और गिलहरी जंगल के निवासी नहीं, क़ैदी हैं।

मछलियां तट पर कैसे आईं

जंगल की नन्ही-सी दुनिया उन बहुतेरी दुनियाओं में एक है, जिनसे मिलकर बड़ी दुनिया बनती है।

धरती पर केवल जंगल और स्तेपी ही नहीं, पहाड़, तुंद्रा, समुद्र और झीलें भी हैं।

हर पहाड़ पर अदृश्य बाड़ें एक नन्ही दुनिया को दूसरी से अलग करती हैं।



हर समुद्र अदृश्य छतों से पानी के नीचे मंज़िलों में बंटा हुआ है।

पानी के छोर पर ज्वार-क्षेत्र में पत्थर अनगिनती घोंघों से मढ़े होते हैं। ये पत्थर अपनी जगह इतनी मज़बूती से जमे होते हैं कि तेज़ से तेज़ तूफ़ान भी इन्हें वहां से अलग नहीं कर सकते।

इससे आगे, धूप से दमकते पानी में रंगीन मछलियां हरी और कत्थई समुद्री घास में थिरकती फिरती हैं, पारदर्शक जेली मछलियां इधर-उधर तैरती हैं और तारा मछलियां तली में रेंगती फिरती हैं। जलमग्न चट्टानें ऐसे अद्भुत जंतुओं से मढ़ी होती हैं, जो पौधों जैसे ही निश्चल होते हैं। उन्हें अपने भोजन की तलाश नहीं करनी पड़ती – वह स्वयं उनके मुंह में पहुंच जाता है। ये लाल एस्सीडियन हैं, जो देखने में दुहरी गरदनवाली सुराहियों जैसे लगते हैं। इन्हें अपना पोषण उन प्राणियों से मिलता है, जिन्हें ये पानी के साथ चूस लेते हैं। चटकदार समुद्री एनीमोन अपने पंखुड़ियों जैसे संस्पर्शकों से उन मछलियों को पकड़ लेते हैं, जो उनके बहुत पास होकर गुज़रती हैं।

तली की दुनिया का – समुद्र के अंधियाले फ़र्श का, जहां रात कभी दिन में नहीं बदलती, जहां हमेशा अंधेरा छाया रहता है – हाल ही दूसरा है। समुद्र की गहराई में प्रकाश नहीं है, और इसका यह मतलब है कि वहां समुद्री घास भी नहीं है, क्योंकि समुद्री घास को प्रकाश चाहिए।

समुद्र की तली एक विशाल क़ब्रिस्तान है, जिस पर ऊपर से समुद्री जंतुओं तथा वनस्पति के अवशेष आते हैं।

लंबे संस्पर्शकोंवाले दशपाद केकड़े फुसफुसी गाद पर विचरण करते हैं। चौड़े थूथनोंवाली मछलियां अंधेरे में तैरती रहती हैं। किन्हीं-किन्हीं की तो आंखें ही नहीं होतीं। कुछ मछलियों की दूरबीन की तरह निकली दो आंखें होती हैं। ऐसी भी मछलियां होती हैं, जिनके बदन पर लाल चित्तियां होती हैं। ये तीव्र प्रकाशयुक्त झरोखोंवाले जहाज़ों जैसी लगती हैं। ऐसी भी मछलियां होती हैं, जिनके पास अपने प्रकाशदीप होते हैं, जो उनके सिर पर उगे एक ऊंचे डंठल पर दमकते रहते हैं।

हमारी दुनिया से यह अद्भुत दुनिया कितनी भिन्न है!

लेकिन तट के साथ की वह छिछली पट्टी भी तो सूखी ज़मीन से कितनी भिन्न है – चाहे उन्हें एक-दूसरे से एक रेखा ही अलग करती है – समुद्रतट की रेखा।

क्या एक दुनिया के निवासी दूसरी दुनिया में जा सकते हैं? क्या मछली समुद्र को छोड़ सूखी ज़मीन पर जा सकती है?

ऐसा होना एकदम असंभव लगता है। मछली पानी के जीवन के लिए अनुकूलित है। ज़मीन पर रहने के लिए गलफड़ों की जगह फेफड़ों की, और परों की जगह पैरों की ज़रूरत होगी। मछली समुद्र के जीवन की सूखी ज़मीन पर के जीवन से केवल तभी अदला-बदली कर सकती है कि जब वह मछली न रहे।

क्या ऐसा हो सकता है कि मछली मछली न रहे?

अगर तुम यह सवाल किसी वैज्ञानिक से पूछो, तो वह तुम्हें बतायेगा कि कई लाख वर्ष हुए मछली की कुछ जातियां सचमुच तट पर आ गईं और वे मछलियां न रहीं। जल से थल के संक्रमण में एक-दो नहीं, लाखों वर्ष लगे।



कई आस्ट्रेलियाई नदियों में शृंगी मछली की एक जाति ऐसी है, जिसके गलफड़े फेफड़े से मिलते-जुलते हैं। सूखे मौसम में जब पानी का स्तर गिरने लगता है और नदियों को कीचड़ भरी तलैयों की शृंखलाओं में बदल देता है, तो और सभी मछलियां मर जाती हैं और उनकी सड़ती लाशें पानी को दूषित कर देती हैं। केवल शृंगी मछली ही सूखे में बच पाती है, क्योंकि इसके गलफड़ों के अलावा फेफड़े भी होते हैं और जब इसे हवा दरकार होती है, तो यह बस अपना सिर पानी के बाहर निकाल देती है।

अफ़्रीका और दक्षिण अमरीका में मछलियों की कुछ जातियां ऐसी हैं, जो पानी के बिना भी जिंदा रह सकती हैं। अनावृष्टि के काल में वे गाद में जा घुसती हैं और वर्षाकाल के फिर आने तक वहीं अपने फेफड़ों से सांस लेती निश्चल पड़ी रहती हैं।

इसका मतलब है कि मछली फेफड़े विकसित कर सकती थी।

लेकिन टांगें? हां, टांगों को भी सिद्ध करने के लिए ज़िंदा मिसालें हैं। उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में कीचड़फांद मछलियां होती हैं, जो केवल तट पर ही छलांगें नहीं लगा सकतीं, बल्कि पेड़ों पर भी चढ़ सकती हैं। उनके जोड़ेदार पर पैरों का काम देते हैं।

ये सभी विचित्र प्राणी इस बात के जीवित प्रमाण हैं कि मछलियां पानी से निकलकर ज़मीन पर आ सकती थीं। लेकिन हम यह कैसे कह सकते हैं कि ऐसा सचमुच हुआ?

विलुप्त जंतुओं की हड्डियां हमें इसकी कहानी बताती हैं। प्राचीन निक्षेपों में खुदाई करते समय पुरातत्वविदों को एक ऐसे जानवर की हड्डियां मिलीं, जो बहुत कुछ मछली जैसा भी था, मगर जो फिर भी मछली नहीं रहा था। यह एक उभयचर प्राणी था – कुछ मेंढक या ट्राइटन जैसा जानवर। यह जंतु स्टीगोसेफ़ालस कहलाता था। पंखों की जगह इसके बाक़ायदा पांच उंगलियोंवाले पैर थे। जब यह कुछ-कुछ समय के लिए तट पर आता था, तो यह इन पैरों पर – धीरे-धीरे ही सही – चल सकता था।

सामान्य मेंढक का ज़रा बारीकी से अध्ययन करो। अंडे से निकलने के समय यह बैंगची (टेडपोल) होता है, और बैंगची और मछली में बहुत का फ़र्क़ होता है।



इसलिए, नतीजा यह निकलता है कि कई लाख साल पहले मछली की कुछ जातियों ने उस बाड़ को पार कर लिया, जो समुद्र को सूखी ज़मीन से अलग करती है। लेकिन इस प्रक्रिया के दौरान वे बदल गईं। मछली से उभयचरों का विकास हुआ और आगे चलकर ये स्वयं सरीसृपों के पूर्वज हुए। सरीसृप स्तनधारी जंतुओं और पक्षियों के आदि-पूर्वज थे, जिनमें कई ऐसे जंतु और पक्षी भी सम्मिलित हैं, जो पानी क़ा रास्ता बिलकुल ही भूल गये हैं।

मौन साक्षी

अश्मीभूत जंतुओं की हड्डियां वे मौन साक्षी हैं, जो हमें यह बताती हैं कि सजीव प्राणी लाखों वर्षों तक बिना बदले नहीं रहे।

उनको परिवर्तन के लिए किसने विवश किया?

अंग्रेज़ वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने जब तक विकासवाद का अपना सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया, यह एक रहस्य बना रहा। उनके शुरू किये काम को दो रूसी वैज्ञानिकों व० कोवालेव्स्की तथा क्ली० तिमिर्याज़ेव ने जारी रखा। उनके विस्तृत अध्ययन जब पूरे हुए, तो उन्होंने उन चीज़ों को हमारे लिए एकदम साफ़ कर दिया, जिन्हें हमारे दादा-परदादा नहीं समझ सकते थे।

प्रत्येक सजीव प्राणी संसार में अपनी जगह के लिए, अपने पर्यावरण–अपने निवास के पास-पड़ोस के लिए अनुकूलित होता है। लेकिन संसार में अचल और अटल कुछ भी नहीं है–गरम जलवायु ठंडी हो जाती है, जहां कभी मैदान थे, वहां पहाड़ पैदा हो जाते हैं, समुद्र की जगह धरती ले लेती है, देवदार और चीड़ के सदाबहार जंगलों का स्थान पतझड़वा जंगल ले लेते हैं।

और जब आसपास की हर चीज़ बदल जाती है, तो सजीव प्राणियों का क्या होता है?

वे भी बदल जाते हैं।

फिर भी, इसका फ़ैसला वे आप नहीं कर सकते कि वे बदलेंगे किस तरह। हाथी अचानक पत्ते, घास और फलों की ख़ूराक से मांस की ख़ूराक पर नहीं आ सकता। भालू यह कहकर कि "मुझे गरमी लग रही है," अपने बाल नहीं झाड़ सकता।

सजीव प्राणी इच्छानुसार नहीं बदल जाते। वे इसलिए बदलते हैं कि उन्हें नये आहार खाने और नई परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर होना पड़ता है। और जो परिवर्तन आते हैं, वे सदा ही उनके अच्छे के लिए नहीं होते, सदा ही उपयोगी नहीं होते।

अनेक बार जो जंतु या पौधे अपने को नवीन पर्यावरण में पाते हैं, वे सूख जाते हैं, क्योंकि उन्हें अब वे चीज़ें नहीं मिल पातीं, जो उन्हें जीते रहने के लिए चाहिए, जैसी कि उनके पूर्वजों को मिला करती थीं।

वे बुभुक्षित हो जाते हैं और ठंड से जम जाते हैं, या शायद वे असामान्य गरमी या ख़ुश्की से पीड़ित होने लगते हैं। अपने शत्रुओं के लिए वे आसान शिकार बन जाते हैं। उनकी संतान और भी कमज़ोर होती है और इसलिए उसमें नयी परिस्थितियों में जीने की और भी कम क्षमता होती है। अंत में, सारी की सारी जाति मर जाती है, क्योंकि वह परिवर्तनों पर क़ाबू नहीं पा सकती।

लेकिन हो यह भी सकता है कि सजीव प्राणी ऐसे तरीक़े से बदलें जो उनके लिए हानिकर नहीं, लाभकर हो। अनुकूल परिस्थितियों में ऐसे हितकर परिवर्तन बाद की पीढ़ियों को मिलते चले जाते हैं, वे संग्रहीत होते जाते हैं, दृढ़ और पक्के होते चले जाते हैं।

समय बीतने पर हम पाते हैं कि संततियां अब अपने पूर्वजों से नहीं मिलतीं। उनकी प्रकृति ही बदल गई है, वे उन परिस्थितियों में रह सकती हैं, जो उनके

पूर्वजों के लिए हानिकर थीं। वे जीवन की नवीन परिस्थितियों के लिए अनुकूलित, अभ्यस्त हो गई हैं। इसमें जो हुआ, उसे प्राकृतिक वरण कहते हैं – जो प्राणी अपने को नई परिस्थितियों के लिए अनुकूलित नहीं कर सके, वे ख़त्म हो गये, जबकि जो कर सके, वे बचे रहे।

यह एक मिसाल है, जो तिमिर्याज़ेव ने सुझाई थी – जेरूसलम हाथीचक का एक पौधा पहाड़ों पर लगाया गया। मैदानी हाथीचक का तना लंबा और पत्ते मोटे होते हैं। पहाड़ों में यह एक नाटे पेड़ में बदल गया, जिसके पत्ते ज़मीन से लगभग लगकर फैले हुए थे।

यह परिवर्तन इसलिए आया कि हाथीचक ने अपने को नये पर्यावरण में पाया – पहाड़ों की जलवायु और मिट्टी मैदानों से बहुत भिन्न होती हैं। और यह परिवर्तन उसके लिए अच्छा था। अब उसके लिए बर्फ़ में अपने पत्ते छिपाना और ठंडी हवाओं और सर्दियों के पाले से त्राण पाना सुगमतर था।

पर्यावरण के परिवर्तन से सजीव प्राणी की प्रकृति में परिवर्तन आने की ऐसी ही कई मिसालें हैं।

मछलियों के उभयचरों में क्रमिक रूपांतरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है।

इस सब की शुरूआत धीरे-धीरे सूखनेवाले प्रागैतिहासिक समुद्रों तथा झीलों में हुई। मछलियों की वे जातियां, जो अपने-आपको एक नई जीवन-प्रणाली के अनकूल न ढाल सकीं, मरती गईं। जो बच रहीं, उन्होंने लंबे-लंबे समय के लिए पानी के बिना रहना सीख लिया था। सूखे के समय वे अपने को गाद से ढक लेती थीं या अपने परों को पैरों की तरह चलाते हुए कीचड़ के निकटतम गढ़ों में चली जाया करती थीं।



प्रकृति ने सूखी ज़मीन पर सहायक हो सकनेवाले हर न्यूनतम शारीरिक परिवर्तन का उपयोग किया। इन मछलियों का गलफड़ा धीरे-धीरे फेफडों में परिवर्तित हो गया। जोड़ेदार पर पैरों में विकसित हो गये।

इस प्रकार पानी के कुछ निवासियों ने धीरे-धीरे अपने-आपको जमीन के जीवन के अनुकूल बना लिया।

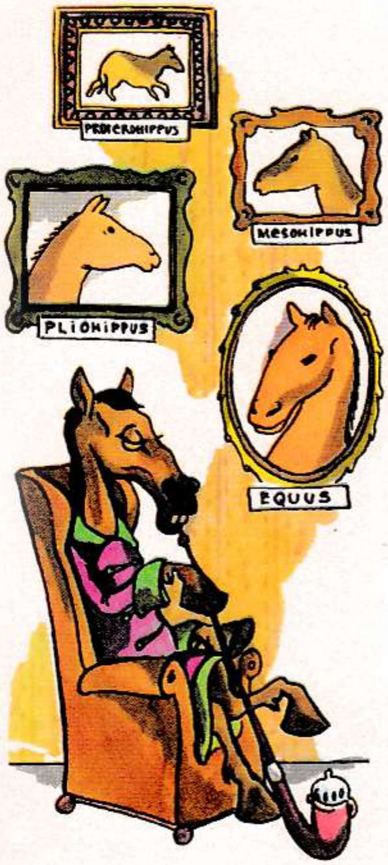
परिवर्तनीयता ने मछली के परों, गलफड़ों तथा शारीरिक रचना को उसके नये पास-पड़ोस के अनुसार बदल दिया।

वरण ने केवल उन्हीं परिवर्तनों को बाक़ी रखा, जो सहायक थे, जबकि जो हानिकर थे, वे ख़त्म हो गये।

आनुवंशिकता ने इन सहायक परिवर्तनों को संग्रहीत और संपुष्ट करते हुए आने-वाली पीढ़ियों को प्रदान कर दिया।

व० कोवालेव्स्की के अध्ययन के अनुसार घोड़े के इतिहास से और भी ज्ञा-नवर्धक जानकारी हासिल की जा सकती है।

इस पर विश्वास करना सचमुच कठिन है कि घोड़ा एक ऐसे छोटे से जंतु से उत्पन्न हुआ है, जो किसी समय घने जंगलों में घूमता हुआ गिरे हुए पेड़ों के तनों पर से सफ़ाई के साथ गुज़र जाया करता था। इस छोटे से जानवर के घोड़े की तरह



खुर नहीं थे, बल्कि सिरे पर पांच उंगलियोंवाले पैर थे। इनसे जंगल में असमतल ज़मीन पर अच्छी तरह पैर टिकाने में सहायता मिलती थी।

कालांतर में महावन छितरकर मैदानों के लिए जगह करने लगे। घोड़े के वन-वासी पूर्वजों को अधिकाधिक खुले मैदानों में आना पड़ता था। जब ख़तरा सिर पर होता, तो जंगल की तरह छिपने को कोई ठौर न था। भागना ही बचने का अकेला साधन था। खुले मैदानों में जंगल का ख़तरे से बचने का आंखमिचौली का तरीक़ा दुम दबाकर भागने में बदल गया और पीछा किये जाने के दौरान कितने ही वनवासी जानवर खेत रहे। केवल सबसे लंबी और तेज़ टांगोंवाले जानवर ही जंगली जानवरों से बच सके, जीते रह सके।

हर ऐसे परिवर्तन को खोजते और संरक्षित करते हुए, जिसके कारण घोड़ा ज़्यादा तेज़ दौड़ सकता था और हर ऐसी बात को त्यागते हुए जो दौड़ने में किसी काम की न थी, एक बार फिर प्रकृति ने अपना वरण किया।

घोड़े के पूर्वजों का जीवन ने जो पुनरावलोकन किया, उसने बताया कि तेज़ दौड़नेवालों को अनेक उंगलियां नहीं चाहिए। एक ही – अगर वह मज़बूत और सख़्त हो – काफ़ी थी। धीरे-धीरे घोड़ों की तीन उंगलियोंवाली जाति और अंत में एक उंगलीवाली जाति पैदा हुई। हम जिस घोड़े को आज जानते हैं, उसकी बस एक बहुत लंबी उंगली (खुर) है।

घोड़े ने जब जंगल का अपना पहला घर त्यागा, तो उसके केवल पैर ही नहीं बदले। उसकी सारी देह ही बदल गई। मिसाल के लिए, उसकी गरदन को ही ले लो। अगर उसकी टांगें लंबी हो जातीं, जबकि गरदन छोटी ही रहती, तो घोड़ा अपने पैरों के नीचे की घास तक न पहुंच पाता। ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि प्रकृति ने छोटी गरदनवाले घोड़े को अस्वीकार कर दिया, जैसे वह छोटी टांगोंवाले घोड़ों को पहले ही अस्वीकार कर चुकी थी।

और घोड़े के दांत? वे भी बदल गये। मैदानों में घोड़े को मोटे, खुरदरे पौधे खाने पड़ते थे, जिन्हें उसे पहले अपने चर्वणदंतों से पीसना पड़ता था। और इसलिए उसके दांत भी बदल गये। अब घोड़ों के दांत बाक़ायदा चक्की के पाटों और सिलबट्टों की तरह के होते हैं और वह भूसे तक को पीस सकता है।

घोड़े की टांगों और उंगलियों, गरदन और दांतों को बदलने के इस ज़बरदस्त काम के पूरा होने में पांच करोड़ वर्ष लगे। और न जाने कितने ही जानवर इस प्रक्रिया में जाते रहे!

इसका मतलब है कि समुद्र को भूमि से और जंगल को मैदानों से अलग करनेवाली बाड़ें स्थायी नहीं हैं। सागर सूख जाते हैं या भूमि को प्लावित कर देते हैं। मैदान रेगिस्तानों में बदल जाते हैं। समुद्र के निवासी सूखी भूमि पर रेंग आते हैं। जंगल के निवासी मैदानों के वासी हो जाते हैं। लेकिन जानवर के लिए अपनी नन्ही-सी दुनिया को छोड़ना, अपने को अपने पास-पड़ोस से बांधनेवाली ज़ंजीरों को तोड़ना कितना कठिन है! इन ज़ंजीरों को तोड़ने के बाद भी वह आज़ाद नहीं होता, क्योंकि वह महज़ एक अदृश्य पिंजरे से दूसरे में चला आता है।

जब घोड़े ने जंगल को छोड़ मैदानों को अपनाया, तो वह वनवासी नहीं रहा

और इसके बजाय मैदानों का निवासी बन गया। मछली की एक जाति ने जहां एक बार पानी के बाहर अपना रास्ता निकाला और सूखी भूमि पर आ गई, फिर वह कभी समुद्र को नहीं लौटी, क्योंकि ऐसा करने के लिए उसे फिर बदलना पड़ता। समुद्र को लौटकर जानेवाली कितनी ही स्थलीय जातियों के साथ बिलकुल यही हुआ। उनके पैर फिर परों में परिवर्तित हो गये। ह्वेल को, मिसाल के लिए, इतना ज़्यादा "मछलीनुमा" होना पड़ा कि जिन लोगों को उसके मूल का पता नहीं, वे उसे मछली समझते हैं, यद्यपि असल में वह स्तनधारी ही है।

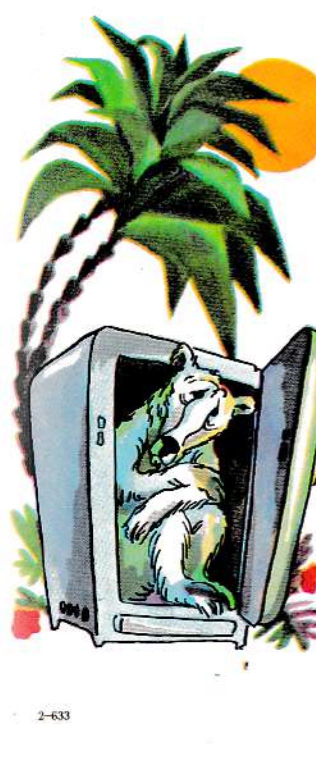
आदमी आज़ादी की राह पर

दुनिया में जंतुओं की कोई दस लाख भिन्न-भिन्न जातियां हैं और हर जाति अपनी ही छोटी-सी दुनिया में रहती है, जिसके लिए वह सबसे अधिक अनुकूलित होती है।

उन जगहों पर, जहां किसी एक जाति को यह अदृश्य नोटिस मिलेगा – "प्रवेश वर्जित है!" वहीं दूसरी जाति को मिलेगा – "स्वागतम्!"

ज़रा कल्पना तो करो, सफ़ेद रीछ अगर अपने को जंगल में पाये, तो क्या होगा! उसका दम घुट जायेगा, क्योंकि उसका समूर (बालदार चमड़ा) उतारा नहीं जा सकता। लेकिन हाथी जैसा उष्णकटिबंधीय प्राणी आर्कटिक के हिम में जम जायेगा, क्योंकि – जैसा कि गरम जगह में अपना जीवन बितानेवालों के लिए ठीक भी है – उस पर उसकी खाल के अलावा और कुछ नहीं होता।

धरती पर केवल एक ही जगह है जहां सफ़ेद भालू और हाथी पड़ोसी होते हैं और जहां तुम्हें दुनिया के सभी भागों के जानवर देखने को मिल जाते हैं। यहां मैदानी जानवर जंगलों में रहनेवाले जानवरों से हाथ-दो हाथ के फ़ासले पर ही रहते हैं और उन्हीं के पड़ोस में पहाड़ी जानवर भी होते हैं। यह जगह है चिड़ियाघर।



चिड़ियाघर में दक्षिण अफ़्रीका आस्ट्रेलिया के बराबर में है और आस्ट्रेलिया उत्तर अमरीका के। जानवर दुनिया भर से आये हैं। लेकिन वे अपने-आप नहीं आये। आदमी ने उन्हें यहां एक साथ इकट्ठा किया है।

ज़रा सोचो तो, इन सब को सुखी रखना भी कितनी मुसीबत का काम है! हर जानवर अपनी ही नन्ही दुनिया का आदी है। और आदमी को उसके लिए चिड़ियाघर में ऐसी परिस्थितियां पैदा करनी पड़ती हैं, जो बिलकुल उसी की अपनी नन्ही दुनिया जैसी हों।

कहीं तलैया में यहां ज़रा-सा सागर होना चाहिए, तो वहां ज़रा-सा रेगिस्तान।

जानवरों को खिलाया जाना चाहिए, उन्हें एक-दूसरे को चट कर जाने से रोकना चाहिए। सफ़ेद रीछ को नहाने के लिए ठंडा पानी चाहिए; बंदरों को गरमी चाहिए; शेर को रोज़ भरपेट कच्चा मांस मिलना चाहिए, तो उक़ाब को अपने पंख फैलाने की जगह की ज़रूरत है।

मैदानों, जंगलों, पहाड़ों, रेगिस्तानों और समुद्रों के जंतुओं को कृत्रिम रूप से साथ लाकर रखने के लिए मनुष्य को उन्हें मृत्यु से बचाने के लिए कृत्रिम परिस्थितियां प्रदान करनी पड़ीं।

मनुष्य स्वयं किस प्रकार का जानवर है – मैदानों का जानवर, या जंगलों का, या पहाड़ों का?

क्या जंगल में रहनेवाले मनुष्य को "जंगली आदमी" और दलदल में रहने-वाले को "दलदली आदमी" कहा जा सकता है?"

बिलकुल नहीं।

जो आदमी जंगल में रहता है, वह मैदानों में भी रह सकता है। और जो आदमी दलदल में रहता है, उसे तो सूखी जगह जाकर रहने में ख़ुशी ही होगी।

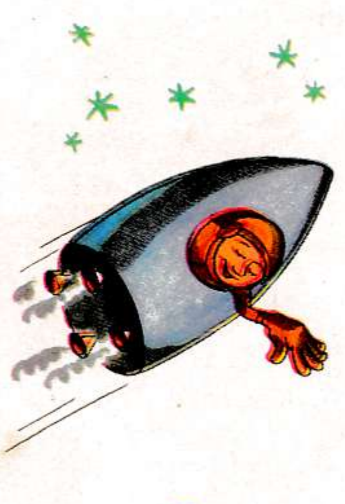
आदमी कहीं भी रह सकता है। धरती पर मुश्किल से ही ऐसी जगहें बाक़ी बची हैं, जहां वह नहीं पहुंच सकता, या जहां यह अदृश्य नोटिस लगा हो – "मनुष्य का आना वर्जित है!" आर्कटिक अन्वेषक तैरते हिमखंडों पर रहते हैं। अगर उन्हें अचानक उष्णतम रेगिस्तानों में भी जाना पड़े, तो वे ऐसा बिना किसी कठिनाई के कर लेंगे।

आदमी अगर स्तेपी से जंगल में या जंगल से मैदानों में जाकर रहना चाहे, तो उसे अपने पैर, हाथ और दांत नहीं बदलने पड़ते। और महज़ इसलिए कि उसका बदन समूर से नहीं ढका है, वह दक्षिण से उत्तर जाने पर ठंड से मर नहीं जायेगा।

समूर के कोट, टोप और जूते उसे ठंड से वैसे ही बचा लेंगे, जैसे जानवर का समूर उसे बचाता है।

आदमी ने घोड़े से कहीं तेज़ चलना सीख लिया है, लेकिन ऐसा करने के लिए उसे अपनी एक भी उंगली को नहीं तजना पड़ा।

आदमी ने मछली से कहीं तेज़ तैरना सीख लिया है, मगर इसके लिए उसे पहले अपने हाथ-पैरों की परों से अदला-बदली नहीं करनी पड़ी।



सरीसृपों को पक्षी बनने में लाखों वर्ष लग गये। उन्हें इस परिवर्तन की ऊंची क़ीमत चुकानी पड़ी, क्योंकि इस प्रक्रिया में उन्हें अपने अगले पंजे गंवाने पड़े, जो पंख बन गये। आदमी ने कुछ ही शताब्दियों के भीतर उड़ना सीख लिया है, लेकिन इसके लिए उसे पहले अपने हाथ नहीं गंवाने पड़े।

आदमी ने बिना बदले उन बाड़ों से गुज़रना सीख लिया है, जिनमें जानवर क़ैद हैं।

आदमी उन ऊंचाइयों तक जा सकता है, जहां उसके सांस लेने को हवा नहीं है, फिर भी वह हंसता-खेलता धरती पर वापस आ जाता है।

जब समतापमंडलीय उड़ाकों ने ऊंचाई पर जाने के सभी पुराने रेकार्डों को तोड़ा, तो उन्होंने जीवन की गंतव्य ऊंचाई को उठा दिया और सजीव प्राणियों द्वारा आवासित संसार की सीमाओं को पार कर लिया।



पशु और पक्षी प्रकृति पर पूर्णतः आश्रित हैं। गणित में किसी समस्या का उत्तर समस्या के निबंधनों पर निर्भर रहता है। प्रकृति में भी यही बात है। हर जंतु एक समस्या है, जिसे जीवन ने सफलतापूर्वक हल कर दिया है। समस्या के निबंधन हैं हर जंतु के लिए जीवन की आवश्यक परिस्थितियां, जबकि उत्तर है पंजों, टांगों, पंखों, चोंचों, नखरों, आदतों और प्रवृत्तियों का एक विस्तृत संव्यूहन। उत्तर इस पर निर्भर रहता है कि जंतु को कहां और कैसे रहना है – नमकीन या मीठे पानी

में या धरती पर, तट पर या समुद्र में, सागर की तली में या सतह के पास, उत्तर में या दक्षिण में, पहाड़ों पर या घाटियों में, धरती की सतह पर या ज़मीन के भीतर, स्तेपी में या जंगलों में। दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि जंतु के पड़ोसी कौन हैं।



जानवर अपने पर्यावरण पर पूर्णतः आश्रित है।

लेकिन मनुष्य अपनी अनुकूल परिस्थितियों का स्वयं निर्माण करता है। अधिकाधिक अवसरों पर वह प्रकृति की पुस्तक को उसके हाथों से झपट लेता है और उन निबंधनों को काट देता है, जो उसे अच्छे नहीं लगते।

प्रकृति की पुस्तक कहती है – "रेगिस्तान में पानी बहुत कम है।" लेकिन हम जब रेगिस्तानों के पार गहरी नहरें ले जाते हैं, तो हम इस मान्यता का खंडन कर देते हैं।

प्रकृति की पुस्तक कहती है – "उत्तरी प्रदेशों की ज़मीन अनुर्वर है।" हम मिट्टी में खाद मिलाकर इसे बदल देते हैं। हम वर्षानुवर्षी खाद्य घासों और फलियों को उगाकर भी धरती को उपजाऊ बना लेते हैं।

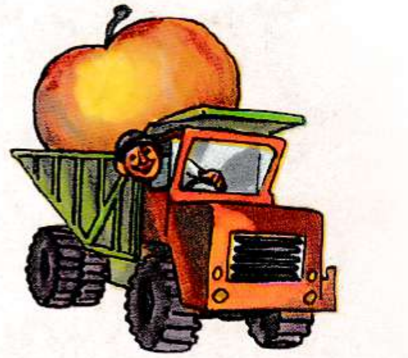
प्रकृति की पुस्तक कहती है – "सरदियों में ठंड और रात में अंधेरा होता है।"

लेकिन आदमी इन शब्दों की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं देता और अपने घर को सरदियों में गरम और रात में प्रकाशपूर्ण बना लेता है।

हम अपने पर्यावरण को सतत परिवर्तित कर रहे हैं।

हमारे चारों तरफ़ जो जंगल हैं, वे वृक्षारोपण और वनों की कटाई के फलस्वरूप अपना मूल रूप कभी का गंवा चुके हैं।

हमारे स्तेपी पहले जैसे विजन, वीरान नहीं हैं। मनुष्य ने उन्हें खेती के लायक़ बना लिया है।



हमारी अब की वनस्पतियां – रई, गेहूं, सेब, नाशपाती – जंगली वनस्पति थोड़े ही हैं, जो कभी अछूती ज़मीन पर उगती थीं।

प्रकृति में तुम्हें भला "सेबिया-नाशपाती" कहां मिलती, या एक ऐसा फल कहां मिलता जो आधा मीठी चेरी और आधा विहंग चेरी हो, या रूसी वैज्ञानिक और उद्यानविद इवान मिचूरिन द्वारा सर्जित अन्य अद्‌भुत फल ही कहां मिल पाते?

उनकी शिक्षा पर चलकर अब वैज्ञानिक प्रकृति की परिवर्तनीयता, आनुवंशिकता और वरण को इस प्रकार निदेशित कर सकते हैं जो मनुष्य के लिए उपयोगी है।

घोड़े, गाय और भेड़ जैसे घरेलू जानवर जंगली अवस्था में नहीं मिलते। मनुष्य ने ही इनकी उत्पत्ति और वंशवृद्धि की है।



मनुष्य ने जंगली जानवरों तक को अपने तरीक़े बदलने के लिए मजबूर कर दिया है। कुछ अपने भोजन की तलाश में मनुष्य के निवास और खेतों के बहुत पास ही रहते हैं, तो अन्य मनुष्य से बचने की चेष्टा में और भी अधिक वन्य प्रदेशों में चले गये हैं। मनुष्य के आगमन के पूर्व उनके पूर्वज कभी इन इलाक़ों में नहीं रहे थे।

आनेवाले ज़माने में मनुष्य को अछूती प्रकृति देखने के लिए विशेष संरक्षित स्थानों की यात्रा करनी होगी, क्योंकि मनुष्य धरती का चेहरा पूरी तरह बदल चुका होगा।

इन संरक्षित स्थानों की सीमाएं निर्धारित करते समय हम मानो प्रकृति से कहते हैं – "इसके भीतर के प्रदेश की स्वामिनी हम आपको रहने देते हैं, लेकिन इस लकीर के बाहर की हर चीज़ हमारी है।"

मनुष्य लगातार प्रकृति का स्वामी बनता जा रहा है।

हमेशा से ऐसा न था।

हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वज प्रकृति के उसी प्रकार के दास थे, जैसे कि धरती पर रहनेवाले अन्य जानवर।

अपने पुरखों से मुलाक़ात

लाखों वर्ष पहले हमारे मौजूदा वनों और उपवनों की जगह दूसरे पेड़ों, जंतुओं और घासोंवाले दूसरे ही जंगल थे।

इन प्रागैतिहासिक वनों में भोज, वासच्छाय (लिंडन) और मेपल के पेड़ और लॉरेल (बे वृक्ष), मिर्टल (विलायती मेंहदी) और मैग्नोलिया के वृक्ष साथ-साथ ही उगा करते थे। शंबी के पेड़ों पर अंगूर की बेलें लिपटी होती थीं और बेद के पड़ोस में कपूर और अम्बर के पेड़ हुआ करते थे।

विशाल भीम वृक्षों के बराबर खड़े शाहबलूत के पेड़ बौने जैसे लगते थे।

अगर हम अपने मौजूदा जंगलों की तुलना मकानों से करें, तो ये प्रागैतिहासिक वन गगनचुंबी अट्टालिकाओं की तरह थे।

"अट्टालिका" की ऊपरी मंज़िलें प्रकाश और कोलाहल से परिपूर्ण थीं। वहां विशाल रंग-बिरंगे फूलों के बीच चटकीले रंग के परोंवाले पक्षी यहां-वहां उड़ा करते थे और उनकी चहचहाहट जंगल में गूंजा करती थी, जबकि वानर डाल से डाल पर छलांगें लगाते रहते थे।



देखो, वानरों का वह झुंड डालियों में इस तरह दौड़ा चला जा रहा है, मानो पुल पार कर रहा हो। मांएं चबाये हुए फलों से अपने नन्हे-मुन्नों के मुहों को भरते हुए उन्हें अपनी छाती से चिपटा लेती हैं। जो ज़रा बड़े हैं, वे अपनी मांओं की टांगों को दबोच लेते हैं।

वानरों की यह कौनसी नस्ल है? आज तुम्हें ये किसी भी चिड़ियाघर में नहीं मिलेंगे।

ये वही वानर थे, जिनसे मनुष्य, चिंपांज़ी और गोरिल्ला के सामान्य पूर्वजों का उद्भव हुआ था। हम अभी-अभी अपने प्रागैतिहासिक पूर्वजों से मिले हैं।

ये सभी जंगल की सबसे ऊपरी मंज़िल पर रहा करते थे। वहां, ज़मीन से खूब ऊंचाई पर वे डाल-डाल पर इस तरह चलते हुए कि जैसे वे पुल, छज्जे और गलियारे हों, एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक जाता करते थे।

जंगल ही उनका घर था। रात के समय वे पेड़ों की दुशाखों में अटके डालियों के बड़े-बड़े मचानों पर बसेरा लिया करते थे।

जंगल ही उनका क़िला था। ऊपरी मंज़िलों पर वे अपने सबसे भयंकर शत्रु – असिदंत व्याघ्र – के लंबे, छुरे जैसे पैने दांतों से छिपा करते थे।

जंगल ही उनका गोदाम था। यहां, सबसे ऊपरी शाखाओं में उनके भोजन –

फलों और गिरीफलों, जिन पर वे गुज़र करते थे – के भंडार थे।

लेकिन जंगल की छत पर रह पाने के लिए उनके लिए यह जानना जरूरी था कि डाल से डाल पर कैसे कूदें, पेड़ों के तनों पर कैसे तेज़ी के साथ चढ़ें-उतरें और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कैसे कूदें। उन्हें फल तोड़ने और गिरीफल फोड़ने में सक्षम होना ज़रूरी था। उनके लिए दक्ष उंगलियों, तेज़ आंखों और मज़बूत दांतों से लैस होना ज़रूरी था।

कितनी ही ज़ंजीरों ने हमारे पुरखों को जंगल से, और जंगल ही से नहीं बल्कि उसकी सबसे ऊपरी मंज़िलों से जकड़ रखा था। मनुष्य ने इन ज़ंजीरों को तोड़ा, तो कैसे? जंगल के प्राणियों में अपने पिंजरे को छोड़ने और अपने घर की सीमाओं के बाहर जाने का साहस कैसे आया?



हमारे नायक के दादा-परदादा और भाई-भतीजे

पुराने ज़माने में जब कोई लेखक किसी आदमी की आपबीती और जगबीती बताना शुरू करता था, तो वह आम तौर पर अपनी किताब के पहले कुछ अध्याय अपने नायक के परिवार और पुरखों के विस्तृत विवरण पर लगाता था।

कुछ ही पत्ते पढ़ने के बाद पाठक को पता चल जाता था कि जवानी में उसकी नानी कितने सुंदर कपड़े पहना करती थी और शादी के फ़ौरन पहले उसकी मां ने क्या सपना देखा था। इसके बाद संसार में नायक के आगमन, उसके पहले दांत, पहले शब्दों, पहले क़दम और पहली शरारतों का बड़ा लंबा वर्णन होता था। दस अध्यायों के बाद लड़का स्कूल में पहुंचता। दूसरे खंड के अंत में उसे प्रेम होता, तीसरे खंड में कितनी ही घटनाओं के बाद, वह अंत में अपनी प्रेमिका के साथ विवाह-सूत्र में बंधता और कहानी का अंत अनिवार्यतः एक उपसंहार के साथ होता, जिसमें वयोवृद्ध नायक और उसकी श्वेतकेशा पत्नी को अपने सेब जैसे लाल गालोंवाले पोते को अपना पहला डगमगाता क़दम रखते प्यार भरी आंखों से निहारते दिखाया जाता।

हम भी तुम्हें मनुष्य की जीवन-गाथा और कारनामों के बारे में बताना चाहते हैं। और, पुराने ज़माने के उपन्यासकारों के उदाहरण पर चलते हुए, हम भी तुम्हें अपने नायक के पिता-पितामहों के बारे में, उसके परिवार और नाते-रिश्तेदारों के बारे में, धरती पर उसके आगमन के बारे में, उसने चलना, बात करना, सोचना कैसे सीखा – इसके बारे में, उसके संघर्षों, उसके सुखों-दुखों, उसकी जयों-पराजयों के बारे में बताना चाहते हैं। लेकिन हम आरंभ में ही स्वीकार कर लेते हैं कि हम अपने को बड़ी मुश्किल में पा रहे हैं।

अपने नायक की "नानी" का, उसी वानर-नानी का, जिससे हमारी जाति का उद्भव हुआ है, वर्णन हम कैसे कर सकते हैं, जबकि उसे मरे लाखों वर्ष बीत चुके हैं? हमारे पास उसकी तसवीर भी नहीं है, क्योंकि हर कोई जानता है कि वानर तसवीरें नहीं बना सकते। अजायबघर में भी यह जानना मुश्किल होता कि वह देखने में कैसी लगती थी, क्योंकि जो भी कुछ बचा है, वह है अफ़्रीका, एशिया तथा यूरोप के विभिन्न भागों में प्राप्त कुछ हड्डियां और थोड़े से दांत।

लेकिन अपने नायक के "भाई-भतीजों" से परिचय प्राप्त करने की संभावना ज़्यादा अच्छी है।



जबकि मनुष्य अपने प्रागैतिहासिक अतीत के उष्णकटिबंधीय जंगलों को कभी का छोड़ चुका है और अब सही मानों में धरती पर जमकर खड़ा है, उसके निकटतम संबंधी – गोरिल्ला, चिंपांज़ी, गिब्बन और ओरंग-उटान – जंगली जानवर ही बने रहे हैं। लोगों को इन ग़रीब नातेदारों की याद दिलाया जाना हमेशा अच्छा नहीं लगता। कुछ तो इससे भी इनकार करने की कोशिश करते हैं कि ये दूर के नातेदार हैं भी। ऐसे भी लोग हैं, जो यह समझते हैं कि इसका इंगित करना भी पाप है कि मनुष्य और चिंपांज़ी की एक ही प्रागैतिहासिक नानी थी।

लेकिन सच को छिपाया नहीं जा सकता। हम इस किताब को ऐसे तथ्यों से

भर सकते थे, जो मनुष्य की वानरों के साथ नातेदारी को सिद्ध कर देते। लेकिन विषय की लंबी, गरमागरम बहस के बिना भी, जो कोई भी चिड़ियाघर में चिंपांज़ियों और ओरंग-उटानों को देखने में एक घंटा लगा देगा, वह मनुष्य और इन वानरों के पारिवारिक सादृश्य से चकित हो जायेगा।

हमारे नातेदार राफ़ेल और रोज़ा

कई वर्ष हुए, राफ़ेल और रोज़ा नामक दो चिंपांज़ियों को लेनिनग्राद के पास कोल्तुशी (अब पावलोवो) ग्राम में स्थित विख्यात रूसी वैज्ञानिक इवान पावलोव की प्रयोगशाला में लाया गया।

लोग अपने जंगलवासी नातेदारों के प्रति बहुत सहृदय नहीं होते और आम तौर पर उन्हें सीधे पिंजरों में डाल देते हैं। लेकिन इस बार अफ़्रीकी जंगल के इन अतिथियों का बड़ा सत्कार किया गया। उन्हें रहने के लिए एक अलग मकान दिया गया। उसमें एक शयनागार, एक भोजनकक्ष, एक खेलने का कमरा और एक गुसलखाना भी था। शयनागार में आरामदेह बिस्तर और छोटी मेज़ें थीं। भोजनकक्ष में मेज़ पर सफ़ेद कपड़ा बिछा था। अलमारी के खाने भोज्य पदार्थों से भरे थे।

इस आरामदेह घर में कोई भी चीज़ इस बात का आभास नहीं देती थी कि इसमें वानर निवास करनेवाले थे। खाना प्लेटों में परोसा जाता, खाना खाने के लिए हमेशा चम्मच होते। रात को बिस्तर बिछाये जाते और तकिये फुला दिये जाते। ठीक है कि कभी-कभी अतिथि शिष्टाचार न बरतने और फलों की तरकारी को सीधे प्लेटों से सुड़पने लगते, और रात में अपने सिर तकियों पर रखने के बजाय, कभी-कभी तकियों को सिर पर रख लेते।

तिस पर भी, रोज़ा और राफ़ेल अगर बिलकुल ही मनुष्यों की तरह नहीं, तो काफ़ी-कुछ उन्हीं जैसा आचरण करते थे।

मिसाल के तौर पर, रोज़ा अलमारी की चाभियों के गुच्छे का किसी भी अन्य गृहिणी जैसा ही इस्तेमाल कर लेती थी। आम तौर पर चाभियां चौकीदार की जेब में रहती थीं। रोज़ा पीछे से चुपके से उसके पास तक आ जाती और उन्हें उससे झपट लेती। पलक मारते वह अलमारी तक पहुंच जाती। फिर, एक कुरसी पर खड़ी होकर वह ताले में सही चाभी लगाती। कांच के पार वह ज़ायक़ेदार ख़ूबानियों के ऊपर रखे अंगूर के गुच्छे देख सकती थी। चाभी घुमाने के साथ ताला खुल जाता और रोज़ा के हाथ में अंगूर का एक गुच्छा आ जाता।

हमें राफ़ेल को नहीं भुला देना चाहिए। पढ़ाई के समय उसका क्या हुलिया होता था! उसके प्रशिक्षण-साधन ख़ूबानियां भरी एक बाल्टी और विभिन्न आकारों के सात ब्लाक थे। लेकिन ये ऐसे ब्लाक नहीं थे, जिनसे बच्चे खेलते हैं। राफ़ेल के ब्लाक कहीं बड़े थे – उनमें से सबसे छोटा पांवदान के बराबर था, जबकि सबसे बड़ा तिपाई जितना था। ख़ूबानियों की बाल्टी छत से लटकी रहती थी, और राफ़ेल की समस्या थी ख़ूबानियों तक पहुंचना और उन्हें खाना।

आरंभ में वह समस्या को हल न कर सका।

जंगल के अपने घर में उसे प्रायः मनपसंद फल को पाने के लिए काफ़ी ऊंचा चढ़ना पड़ता था। लेकिन यहां फल डाल पर तो था नहीं – वह अधर में लटका था। चढ़ने के लिए बस सात ब्लाक थे। लेकिन अगर वह सबसे बड़े ब्लाक के ऊपर भी चढ़ जाता, तो भी वह ख़ूबानियों तक नहीं पहुंच पाता था।



फलों तक पहुंचने की कोशिश में ब्लाकों की उलटा-पलटी करते हुए राफ़ेल ने एक खोज की – अगर वह ब्लाकों को एक-दूसरे के ऊपर रख देता है, तो इससे वह ख़ूबानियों के ज़्यादा पास पहुंच जाता है। थोड़ा-थोड़ा करके – पहले वह तीन, फिर चार और फिर पांच ब्लाकों का पिरामिड बनाने में सफल हो गया। यह कोई आसान काम न था, क्योंकि वह उन्हें मनमाने ढंग से एक-दूसरे पर न रख सकता था। वे एक विशेष क्रम में ही रखे जा सकते थे – सबसे पहले सबसे बड़ा, फिर उससे छोटा और फिर इसी प्रकार क्रमानुसार अन्य।

कितनी ही बार राफ़ेल ने बड़े ब्लाकों को छोटों पर चुनने की कोशिश की। तब सारा ही ढेर डगमगाने लगता और गिरने को हो जाता। लगता था कि अगले ही क्षण ऊपर राफ़ेल सहित सारा ही ढेर नीचे आ गिरेगा, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ, क्योंकि आख़िर वह था तो वानर ही और इसका मतलब हुआ कि वह चुस्त और फुर्तीला था।

आख़िर, समस्या हल हो ही गई। राफ़ेल ने सातों ब्लाकों को आकार के अनुसार जमा दिया, मानो वह उन पर पुती सातों संख्याएं पढ़ सकता था।

जब वह बाल्टी तक पहुंच गया, तो वह झोंका खाते पिरामिड के ऊपर शिखर ही पर बैठ गया और मेहनत से प्राप्त की ख़ूबानियों को मज़े ले-लेकर खाने लगा।

और कौनसा जानवर इस मानव-सुलभ तरीक़े पर चल सकता था? क्या हम किसी कुत्ते के पिरामिड बनाने की कल्पना कर सकते हैं? और तिस पर भी कुत्ता बड़ा चतुर जानवर है।

राफ़ेल को काम करते देखनेवाले सभी लोग मनुष्य से उसका सादृश्य देख हैरत में आ गये थे। वह ब्लाक उठाता, उसे अपने कंधे पर लादता और उसे एक हाथ से सहारा देता हुआ पिरामिड तक ले जाता। लेकिन अगर वह ग़लत आकार का ब्लाक़ होता, तो राफ़ेल उसे नीचे रख देता और उस पर बैठ जाता, मानो सोच में डूबा हुआ हो। कुछ क्षण के आराम के बाद वह अपनी ग़लती सुधारने के लिए फिर काम में लग जाता।

क्या चिंपांज़ी आदमी बन सकता है?

लेकिन सवाल है – क्या चिंपांज़ी को चलना, बोलना, सोचना और आदमी की तरह काम करना नहीं सिखाया जा सकता?

बहुत वर्ष हुए, विख्यात पशु-प्रशिक्षक व्लादीमिर दूरोव इसका स्वप्न देखा करते थे। उन्होंने अपने प्रिय चिंपांज़ी मीमुस को सिखाने में कई महीने लगाये। मीमुस बड़ा ही तेज़ शिष्य था – उसने चम्मच से खाना, नैपकिन का उपयोग करना, कुरसी पर बैठना, सूप को मेज़पोश पर गिराये बिना खाना और बर्फ़गाड़ी पर बैठकर ढाल के ऊपर से उतरना तक सीख लिया।



मगर वह इंसान कभी नहीं बन सकता था।

इसमें अचरज की कोई बात नहीं, क्योंकि आदमी और वानर के रास्ते लाखों वर्ष पहले अलग हो गये थे। मनुष्य के प्रागैतिहासिक पूर्वज पेड़ों से ज़मीन पर उतर आये, उन्होंने दो पैरों पर सीधे चलना सीख लिया और इस तरह अपने हाथों को काम के लिए आज़ाद कर दिया। लेकिन चिंपांज़ी के पूर्वज सदा पेड़ों पर ही रहे और पेड़ों के जीवन के और भी अधिक अनुकूलित हो गये।

यही कारण है कि चिंपांज़ी का बदन आदमी की तरह का नहीं है। उसके हाथ अलग तरह के हैं, उसके पैर अलग तरह के हैं, उसका मस्तिष्क अलग तरह का है, उसकी जीभ अलग तरह की है।

चिंपांज़ी के हाथ की तसवीर को ध्यान से देखो। यह आदमी के हाथ से ज़रा भी नहीं मिलता। चिंपांज़ी का अंगूठा उसकी कनिष्ठिका से छोटा होता है और दूसरी उंगलियों के साथ उसी कोण पर नहीं होता, जिस पर हमारा होता है। लेकिन अंगूठा हमारी उंगलियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण, उन पांच कामगरों की टोली में, जिसे हाथ कहते हैं, सबसे ज़्यादा ज़रूरी होता है। अंगूठा बाक़ी चार में से किसी भी एक उंगली के साथ या उन सबके साथ मिलकर काम कर सकता है। यही कारण है कि आदमी का हाथ जटिलतम औज़ारों का भी इतनी निपुणता के साथ उपयोग कर सकता है।

जब चिंपांज़ी पेड़ से फल तोड़ना चाहता है, तो वह आम तौर पर डाल को अपने हाथों से पकड़ता है और फल को पैर की उंगलियों से तोड़ता है। जब चिंपांज़ी ज़मीन पर चलता है, तो वह अपने हाथों की मुड़ी हुई उंगलियों पर टिकता है। इसका मतलब है कि वह अकसर अपने हाथों को पैरों की तरह और पैरों को हाथों की तरह इस्तेमाल करता है।

लेकिन जो पशु-प्रशिक्षक अपने चिंपांज़ियों को मनुष्य बनाना चाहते हैं, वे प्रायः भूल जाते हैं कि हाथों और पैरों के फ़र्क़ के अलावा दोनों के बीच एक और बहुत महत्वपूर्ण अंतर है। वे भूल जाते हैं कि चिंपांज़ी का मस्तिष्क मनुष्य के मस्तिष्क से बहुत छोटा और कहीं कम विकसित होता है।



इवान पावलोव ने मानव-मस्तिष्क के अध्ययन में कई वर्ष लगाये, और रोज़ा तथा राफ़ेल के आचरण में उनकी दिलचस्पी थी। उन्होंने उसका निकट से अध्ययन करने के लिए "वानर घर" में कई-कई घंटे बिताये। वे एकदम निरर्थकतापूर्ण आचरण करते थे। वे कोई बात करना शुरू करते, फिर भ्रांतचित हो जाते और उसके बारे में भूल जाते और किसी और चीज़ में दिलचस्पी लेने लगते।

मिसाल के तौर पर, राफ़ेल अपना पिरामिड बनाने में लगा होता और अत्यंत एकाग्रचित्त नज़र आता। अचानक उसकी निगाह किसी गेंद पर पड़ती, वह ब्लाकों के बारे में बिलकुल भूल जाता और अपने लंबे बाल भरे हाथ से गेंद को थपथपाने लगता। क्षण भर के बाद जब वह फ़र्श पर रेंगती किसी मक्खी को देखता, तो वह गेंद के बारे में भूल जाता।

एक बार इस हड़बड़ी को देखते हुए पावलोव ने कहा:

"उफ़, कैसी गड़बड़ है!"

हां, वानरों की गड़बड़ी भरी गतिविधियां उनके मस्तिष्कों की गड़बड़ी भरी कार्यविधि का वास्तविक प्रतिबिंब होती हैं, जो मानव-मस्तिष्क की व्यवस्थित और एकाग्रतापूर्ण कार्यविधि से एकदम भिन्न होती है! और इतने पर भी चिंपांज़ी काफ़ी समझदार है, जंगल के, यानी उस नन्ही दुनिया के, जिससे वह इतनी सारी अदृश्य ज़ंजीरों से बंधा हुआ है, जीवन के लिए भली भांति अनुकूलित है।

एक बार एक फ़िल्म-निर्माता उस मकान में आया, जिसमें रोज़ा और राफ़ेल रहते थे। वह उनके बारे में एक फ़िल्म बनाना चाहता था। फ़िल्म की पटकथा के अनुसार बंदरों को कुछ देर के लिए बाहर छोड़ दिया जाना था। बाहर छोड़े जाने के साथ ही वे सबसे पास के पेड़ पर जा चढ़े और उसकी डालियों पर मज़े में झूलने लगे। पेड़ पर उन्हें अपने आरामदेह मकान की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक लगा।

अफ़्रीका में चिंपांज़ी जंगल की सबसे ऊपरी मंज़िल पर रहता है। यह पेड़ पर अपना बसेरा बनाता है। अपने दुश्मनों से बचने के लिए यह पेड़ पर चढ़ जाता है। पेड़ों पर यह फल और गिरीफल पाता है, जो इसके भोजन हैं।

पेड़ों के जीवन का यह इतना अनुकूलित है कि पेड़ के खड़े तने पर यह समतल ज़मीन पर चलने की अपेक्षा ज़्यादा आसानी से चढ़-उतर सकता है। तुम्हें चिंपांज़ी ऐसी जगहों पर कभी नहीं मिलेगा, जहां जंगल नहीं हैं।

एक बार एक वैज्ञानिक यह देखने के लिए कि अपने प्राकृतिक पास-पड़ोस में चिंपांज़ी कैसे रहते हैं, अफ़्रीका में कैमरून गये।

उन्होंने कोई दर्जन भर चिंपांज़ी पकड़ लिये और उन्हें घर जैसा ही महसूस कराने के लिए अपने फ़ार्म के पास के जंगल में छोड़ दिया। मगर पहले उन्होंने एक अदृश्य पिंजरा बनवा दिया, जिससे वे भाग न सकें। अदृश्य पिंजरा दो साधारण औज़ारों – कुल्हाड़ी और आरे – की सहायता से बनाया गया था।

पहले लकड़हारों ने जंगल का एक छोटा-सा द्वीप छोड़कर उसके इर्द-गिर्द के सभी पेड़ों को काट दिया। वैज्ञानिक ने अपने वानरों को वृक्षों के इस छोटे-से द्वीप पर आज़ाद कर दिया।

उनकी योजना अच्छी सिद्ध हुई, क्योंकि वानर वनवासी जंतु हैं। इसका मतलब है कि अपनी आज़ाद इच्छा से वे कभी जंगल को नहीं छोड़ेंगे। वानर खुले मैदान में अपना घर नहीं बना सकता, जैसे कि सफ़ेद रीछ रेगिस्तान में अपना घर नहीं बना सकता। लेकिन अगर चिंपांज़ी जंगल को नहीं छोड़ सकता, तो उसका दूर का नातेदार – मनुष्य – उसे कैसे छोड़ पाया?

हमारा नायक चलना सीखता है

हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वज को अपने पिंजरे को तोड़ निकलने और जंगलों को छोड़ने के लिए आज़ाद होने और स्तेपियों और वृक्षहीन मैदानों में अपना घर बनाने में लाखों साल लग गये।

वृक्षवासी जंतु को उन ज़ंजीरों को तोड़ने के लिए, जिन्होंने उसे जंगल



से बांध रखा था, सबसे पहले पेड़ों से नीचे उतरना था और ज़मीन पर चलना सीखना था।

हमारे ज़माने तक में मानव के लिए चलना सीखना कोई आसान काम नहीं है। जिस किसी ने भी कोई नर्सरी देखी है, उसे मालूम होगा कि वहां "सरकने-वालों" का एक विशेष वर्ग होता है। इसमें वे बच्चे होते हैं, जो एक जगह पर पड़े भी नहीं रहना चाहते, लेकिन जो अभी चलना भी नहीं जानते। इन "सरकने-वालों" को "चलनेवाले" बनने में कई महीने के सख्त प्रयास की आवश्यकता होगी। ज़रा सोचो तो – उन्हें बिना किसी सहारे के, ज़मीन को अपने हाथों से छुए बिना, अडिग रहने के लिए कुरसियों या बेंचों को थामे बिना चलना सीखना है!

लेकिन बच्चे को अगर चलना सीखने में कई महीने लगते हैं, तो हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों को यह हुनर सीखने में हज़ारों ही साल लग गये।

सच है कि उस सुदूर अतीत में भी वे कुछ-कुछ समय के लिए पेड़ों के नीचे आया करते थे। शायद वे सदा ही अपनी उंगलियों की गांठों पर नहीं टिका करते थे, बल्कि अपने पिछले पैरों पर दौड़ते हुए दो-तीन क़दम चल लिया करते थे, जैसा कि चिंपांज़ी अकसर करते हैं।

फिर भी दो या तीन क़दम तो पचास या सौ क़दम नहीं हैं।

पैरों ने हाथों को काम के लिए कैसे आज़ाद किया

जब हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वज पेड़ों पर रहते थे, उन्होंने धीरे-धीरे अपने हाथों का पैरों से अलग कामों के लिए उपयोग करना सीख लिया। वे अपने हाथों का इस्तेमाल फल और गिरीफल तोड़ने और दुशाखे तनों में अपना घर (घोंसला) बनाने के लिए किया करते थे।

लेकिन जो हाथ गिरीफल पकड़ सकता था, वह डंडा या पत्थर भी पकड़ सकता था। और डंडा या पत्थर पकड़े हुए हाथ का मतलब है कि वही हाथ ज़्यादा लंबा और मज़बूत हो गया है।

पत्थर ऐसे गिरीफल को भी तोड़ सकता था, जिसे फोड़ना मुश्किल था। डंडा ज़मीन से किसी स्वादिष्ट मूल को उखाड़ सकता था।

और इसलिए प्रागैतिहासिक मनुष्य ने अपना भोजन जुटाने के लिए इन औज़ारों का अधिकाधिक उपयोग करना शुरू कर दिया। डंडे से खोदकर वह कंद और मूल निकाल सकता था। पेड़ों के पुराने ठूंठों को भारी पत्थरों से पीटकर वह भीतर कीड़े-मकोड़ों की इल्लियों और लार्वा तक पहुंच सकता था। लेकिन इसलिए कि वह अपने हाथों से काम कर सके, उसे उन्हें उनके दूसरे काम – चलने के काम – से मुक्त करना आवश्यक था। उसके हाथ जितने अधिक व्यस्त होते, उतना ही अधिक उसके पैरों को अकेले चलने की समस्या को हल करना पड़ता।

इस प्रकार, उसके हाथों ने उसके पैरों को चलने के लिए मजबूर कर दिया और उसके पैरों ने उसके हाथों को काम के लिए आज़ाद कर दिया।

धरती पर अब एक नया प्राणी अवतरित हुआ। वह अपने पिछले पैरों पर चलता था और अपने अगले अवयवों का उपयोग काम के लिए करता था।

सूरत-शक्ल में यह प्राणी अभी तक बहुत-कुछ जानवरों जैसा ही था। लेकिन अगर कहीं तुम उसे अपने डंडे या पत्थर को चलाते देख पाते, तो तुम तुरंत कह उठते कि यही जंतु मानव जाति का पहला प्राणी हो सकता है। निस्संदेह केवल मनुष्य ही औज़ारों का उपयोग करना जानता है।

धानीमूष या छछूंदर जब अपने बिल बनाते हैं, तो उनके पास काम करने के लिए केवल अपने पंजे ही होते हैं – उनके पास बेलचे नहीं होते। चूहा जब लकड़ी के टुकड़े को काटता और कुतरता है, तो वह ऐसा चाकू से नहीं, अपने दांतों से ही करता है। और कठफोड़वा जब पेड़ की छाल को ठोंगता है, तो यह वह छेनी से नहीं, अपनी चोंच से ही करता है।

हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों के न तो छेनी जैसी चोंचें थीं, न बेलचे जैसे पंजे और न ही छुरे जैसे तेज़ दांत।

लेकिन उनके पास जो था, वह तेज़-से-तेज़ दांतों और मज़बूत-से-मज़बूत चोंचों से ज़्यादा अच्छा था। उनके हाथ थे और वे अपने हाथों का उपयोग पत्थर के चाक़ू और लकड़ी के लंबे डंडे उठाने के लिए कर सकते थे।



हमारा नायक धरती पर उतरता है



जब ये सभी घटनाएं घट रही थीं तभी जलवायु भी धीरे-धीरे बदल रहा था। हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वज दिन वनों में रहते थे, उनमें रातें ठंडी होती जा रही थीं और सर्दियों में ज़्यादा ठंड पड़ने लगी थी। जलवायु यद्यपि अभी भी उष्ण था, मगर उसे अब बहुत गरम नहीं कहा जा सकता था।

पहाड़ों और पहाड़ियों की उत्तरी ढलानों पर सदाबहार ताड़, मैग्नोलिया और लॉरेल धीरे-धीरे बांज और लिंडन के पेड़ों को जगह देते जा रहे थे।

नदीतटीय निक्षेपों में आजकल भी बांज और लिंडन की पत्तियों के जीवाश्म मिलते हैं, जिन्हें लाखों वर्ष पहले बरसाती तूफ़ान नदियों तक ले आये थे।

दक्षिणी ढलानों और घाटियों में अंजीर के पेड़ और द्राक्ष लताएं ठंडी हवाओं से बच गईं। उष्णकटिबंधीय वनों की सीमांतक रेखा अधिकाधिक दक्षिण की तरफ़ हटती गई। इन वनों के सारे निवासी भी – हाथी और असिदंत व्याघ्र, जो अब विरल होता जा रहा था – दक्षिण की ओर खिसकते गये।

किसी ज़माने में जहां जंगलों की भरमार थी, वहां पेड़ छितरा गये, जिससे प्रकाशपूर्ण खाली जगहें बन गईं, जिनमें विशाल हिरन और गैंडे चरा करते थे। कुछ वानर जंगलों के साथ-साथ चले गये, कुछ जातियां मरकर खत्म हो गईं।

जंगल में अब अंगूर कम होते जा रहे थे, अंजीर के पेड़ों को पाना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा था। हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों के लिए जंगल में घूमना-फिरना अब अधिकाधिक मुश्किल होता जा रहा था, क्योंकि अब तक वह कम घना



हो गया था और उसके निवासी यदि अब पेड़ों के एक झुंड से दूसरे झुंड पर जाना चाहते, तो उन्हें ज़मीन पर होकर जाना पड़ता था। वृक्षवासी के लिए यह कोई आसान बात न थी, क्योंकि उसके लिए ज़मीन पर किसी अधिक तेज़ हिंसक जंतु का शिकार हो जाना एकदम संभव था।

लेकिन वे कुछ कर भी नहीं सकते थे। भूख ने उन्हें पेड़ों पर से उतरने के लिए विवश कर दिया।

हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों को ज़मीन पर अधिकाधिक उतरने के लिए, भोजन की तलाश में भटकने के लिए मजबूर होना पड़ा।

अपने परिचित पिंजरे को, जंगल की जिस दुनिया के लिए वे अनुकूलित थे, उसे छोड़ने का क्या मतलब था?

इसका मतलब यह था कि उन्होंने जंगल के कानूनों को तोड़ दिया, उन्होंने उन जंजीरों को तोड़ दिया, जो हर जंतु को प्रकृति में उसकी अपनी जगह पर बांधती हैं।

हम जानते हैं कि पशु और पक्षी बदलते हैं। प्रकृति में अपरिवर्तनीय कुछ भी नहीं है। लेकिन यह कोई आसान काम नहीं है। मज़बूत पंजोंवाले एक छोटे से वन्य पशु को हमारा आज का जाना-पहचाना घोड़ा बनने में लाखों साल लग गये। हर बाल-पशु बहुत-कुछ अपने माता-पिता जैसा ही होता है। मुश्किल से ही कोई फ़र्क़ होता है। एक नई नस्ल के विकसित होने में – ऐसी नस्ल, जो पहले की नस्ल से एकदम भिन्न थी – हज़ारों ही पीढ़ियां खप गईं।

और हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वज?

अगर वे अपनी आदतें और तरीक़े न बदल पाते, तो उन्हें वानरों के साथ-साथ दक्षिण की ओर जाना पड़ता। लेकिन वे वानरों से भिन्न थे, क्योंकि अब वे पत्थर और लकड़ी के बने दांतों और पंजों की सहायता से भोजन प्राप्त करना सीख गये थे। वे रस भरे दक्षिणी फलों के बिना काम चलाना सीख सकते थे, जो अब जंगलों में दुर्लभ होते जा रहे थे। उन्हें इस बात से परेशानी नहीं हुई कि जंगल कम घने होते जा रहे थे, क्योंकि वे ज़मीन पर चलना सीख हीं चुके थे और खुली, वृक्षहीन जगहों से डरते न थे। और अगर कोई दुश्मन उनके रास्ते में आ जाता, तो कपिमानवों का पूरा झुंड डंडों और पत्थरों से अपनी रक्षा करता।

जो कड़ा समय आ गया था, उसने कपि-मानवों को मौत के हवाले नहीं कर दिया या दक्षिणी जंगलो के साथ-साथ दूर दक्षिण में जाने के लिए मजबूर नहीं कर दिया। उसने बस कपि-मानव के पहले मानवकपि और फिर आदिम-मानव बनने के काल को निकट ला दिया।

और हमारे दूर के संबंधियों – वानरों – का क्या हुआ?

वे दक्षिणी वनों के साथ पीछे हटते गये और सदा के लिए वनवासी बने रहे। वस्तुतः, इस मामले में उनके सामने कोई चारा न था। वे विकास में कपि-मानवों के पीछे रहे थे और उन्होंने औज़ारों का उपयोग नहीं सीखा था। इसके बजाय, उनमें जो सबसे ज़्यादा फुर्तीले थे, उन्होंने डालों पर चढ़ना और उनसे कूदना पहले

से भी ज़्यादा अच्छी तरह सीख लिया। जो चढ़ने में कम निपुण थे और अपने को पेड़ों की फुनगियों के जीवन के लिए आसानी से अनुकूलित न कर सके, उनमें से केवल सबसे बड़े और शक्तिशाली वानर ही बच पाये। लेकिन वानर जितना भारी और बड़ा होता था, पेड़ों का जीवन उसे उतना ही मुश्किल लगता था। इसलिए इन बड़े वानरों को पेड़ों पर से ज़मीन पर आने के लिए मजबूर होना पड़ा। गोरिल्ला अभी तक जंगल की सबसे निचली मंज़िल पर ही रहता है। उसके हथियार न डंडे हैं और न पत्थर, बल्कि उसके शक्तिशाली जबड़ों से निकलनेवाले बड़े-बड़े दांत ही हैं।

इस प्रकार, आदिम-मानव और उसके दूरवर्ती संबंधी सदा-सदा के लिए अलग हो गये।

लुप्त कड़ी

मनुष्य ने तुरंत दो पैरों पर चलना नहीं सीख लिया। आरंभ में वह इधर-उधर लड़खड़ाता चलता था।

पहला कपि-मानव देखने में कैसा था?

धरती पर कहीं भी कपि-मानव जीता नहीं बचा है। लेकिन क्या उसकी हड्डियां कहीं नहीं मिल सकतीं?

अगर ये हड्डियां मिल जायें, तो ये इस बात का अंतिम प्रमाण प्रस्तुत कर देंगी कि मनुष्य वानरों से उत्पन्न हुआ है, क्योंकि कपि-मानव एक आदिम-मानव था, उस शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी जो वानरों से शुरू होती है और आधुनिक मानव के साथ ख़त्म होती है। तथापि यह महत्वपूर्ण कड़ी नदीतटीन निक्षेपों में, मिट्टी और रेत की परतों में बिना किसी सुराग़ के लुप्त हो गई है।



पुरातत्त्वविद जानते हैं कि धरती की खुदाई कैसे करनी चाहिए। फिर भी खुदाई शुरू करने के पहले उन्हें एक स्थल का – लुप्त कड़ी की खोज करने की जगह का – निर्णय करना होता था। किसी चीज़ के लिए दुनिया भर में तलाश करना कोई आसान काम नहीं है और आदिम-मानव की हड्डियों की तलाश भूसे के ढेर में सूई की तलाश से भी ज़्यादा मुश्किल है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में एक जर्मन प्राणिशास्त्री ए० हेक्केल ने पहले-पहल सुझाव दिया कि कपि-मानव (या जैसा कि वैज्ञानिक उसे कहपे हैं, पिथेकेंथ्रोपस) की हड्डियां कहीं दक्षिण एशिया में मिलेंगी। उन्होंने तो नक़शे पर ठीक वह जगह तक दिखा दी, जहां उनका ख़याल था कि वे बची रही होंगी। यह जगह थी सुंडा द्वीपसमूह।

ऐसे कई लोग थे, जो हेक्केल के मत को ठोस प्रमाणों से पुष्ट किया हुआ नहीं मानते थे। लेकिन हेक्केल के मत को भूला नहीं दिया गया। एक सज्जन को तो उसमें इतनी गहरी आस्था थी कि उन्होंने अपना काम ही छोड़ दिया और पिथेकेंथ्रोपस के संभावित अवशेषों की खोज के लिए सुंडा द्वीपसमूह के लिए कूंच कर दिया।

इन सज्जन का नाम था डॉ० यूजेन द्युबुआ और वह एमस्टरडैम विश्वविद्यालय में शरीरविज्ञान के प्राध्यापक थे।

विश्वविद्यालय में उनके कितने ही सहकर्मियों और प्रोफ़ेसरों ने आश्चर्य से अपने सिर हिलाये और एक राय से कहा कि कोई भी दुरुस्त होश-हवास वाला आदमी कभी ऐसे असंभव कार्य की चेष्टा नहीं करेगा। ये सभी बड़े प्रतिष्ठित लोग थे, और एकमात्र सफ़र जो वे किया करते थे, वे थे विश्वविद्यालय आते-जाते समय एमस्टरडैम की शांत सड़कों पर दैनिक भ्रमण।

अपनी साहसपूर्ण योजना को क्रियान्वित करने के लिए डॉ० द्युबुआ ने विश्वविद्यालय की अपनी नौकरी छोड़ दी, फ़ौज में भरती हो गये और सुमात्रा रवाना हो गये, जहां उन्हें एक फ़ौजी डाक्टर का काम करना था।

द्वीप पर पहुंच जाने के बाद उन्होंने अपना सारा खाली समय खोज पर लगाना शुरू कर दिया। उनके निदेशन में खुदाई पर लगे मज़दूरों ने मिट्टी के पहाड़ के पहाड़ लगा दिये। एक महीना बीता, दो बीते, तीन महीने बीत गये। लेकिन पिथेकेंथ्रोपस की हड्डी तो हड्डी, उससे मिलती-जुलती भी कोई चीज़ न मिली।

जब कोई आदमी अपनी खोई किसी चीज़ की तलाश करता है, तो उसे कम-से-कम यह मालूम होता है कि वह कहीं है और अगर वह उसकी जमकर तलाश करेगा, तो वह उसे मिल जायेगी। लेकिन द्युबुआ के मामले में यह बात नहीं थी। उन्हें केवल अनुमान था – मगर वह निश्चय के साथ नहीं कह सकते थे – कि ऐसे अवशेष सचमुच हैं। फिर भी उन्होंने डटकर खोज जारी रखी। एक साल बीता, फिर दो और तीन साल भी बीत गये, लेकिन "लुप्त कड़ी" कहीं भी न मिली।



उनकी जगह कोई और होता, तो आखिर सारी ही कल्पना को मूर्खता मानकर छोड़ देता, लेकिन द्युबुआ बीच में ही रुकनेवाले आदमी न थे।

जब उन्हें विश्वास हो गया कि कपि-मानव के अवशेष उन्हें सुमात्रा में नहीं मिलेंगे, तो उन्होंने अपनी खोज को जावा में जारी रखने का निश्चय किया।

और यहीं अंत में उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

द्युबुआ ने त्रिनिल गांव के निकट सोलो नदी के तट पर एक आदिम-मानव की खोज की। अवशेषों में एक ऊर्ध्वस्थि, दो दांत और एक खोपड़ी का ऊपरी भाग ही थे। बाद में आसपास अन्य ऊर्ध्वस्थियों के टुकड़े भी मिले।

अपने प्रागैतिहासिक पूर्वज के कपाल की ओर देखते हुए द्युबुआ ने यह कल्पना करने की कोशिश की कि वह देखने में कैसा लगता होगा। मानवकपि का माथा नीचा और चपटा था और उसकी आंखों के बीच मोटा हड्डीला पुल था। चेहरा मनुष्य की अपेक्षा वानर जैसा ही अधिक था। किंतु खोपड़ी के ऊपरी भाग के सूक्ष्म अध्ययन ने द्यूबुआ को विश्वास दिला दिया कि पिथेकेंथ्रोपस किसी भी पुरुषाभ वानर की अपेक्षा कहीं अधिक बुद्धिमान था – उसका मस्तिष्क उनके मस्तिष्कों से कहीं बड़ा था।

एक खोपड़ी का ऊपरी भाग, दो दांत और एक ऊर्ध्वस्थि, सच पूछो तो, किसी

ख़ास मतलब के नहीं। लेकिन इस पर भी, सावधानीपूर्ण अध्ययन द्वारा द्युबुआ मानवकपि के जीवन के कई तथ्यों की पुनर्कल्पना करने में सफल हो गये, जैसे ऊर्ध्वस्थि से पता चला कि वह अपनी मुड़ी हुई टांगों पर लड़खड़ाता चल सकता था।



द्युबुआ अपने पूर्वज की आसानी से कल्पना कर सके। वह मानो देख रहे थे कि वह जंगल के एक वृक्षहीन भाग से भदभदाता जा रहा है, उसका बदन दुहरा हुआ जा रहा है, घुटने झुके हुए हैं और उसकी लम्बी बांहें ज़मीन पर घिसट रही हैं। मोटे भ्रू-उभारों के नीचे आंखें ज़मीन पर टिकी हुई हैं – वह खाने योग्य किसी भी चीज़ को खोना नहीं चाहता।

वह अब वानर नहीं रहा था, लेकिन अभी वह मानव भी नहीं था। द्युबुआ ने अपने आदिम-मानवकपि को नाम दिया पिथेकेंथ्रोपस इरेक्टस अर्थात् पिथेकेंथ्रोपस-द्विपाद या ऋजु मानवकपि, क्योंकि वानरों की तुलना में वह निश्चय ही ऋजु – सीधे शरीरवाला – था।

सोचा जा सकता है कि द्युबुआ अपने अंतिम लक्ष्य पर पहुंच गये थे – रहस्यमय पिथेकेंथ्रोपस की खोज आखिर सफल हो ही गई! लेकिन इसके बाद ही उनकी ज़िंदगी के सबसे मुश्किल दिन और वर्ष आये। उन्होंने पाया कि धरती की गहरी परतों को खोदना मानविक पूर्वाग्रह को तोड़ने से कहीं आसान है।

यूजेन द्युबुआ की खोज को सभी ओर से क्रोध और उपहास का सामना करना पड़ा, क्योंकि बहुत-से लोग यह मानने को तैयार नहीं थे कि मनुष्य और वानरों का एक ही प्रागैतिहासिक पूर्वज था। ईसाई चर्च और उसके अनुयायियों ने कहा कि द्युबुआ को जो खोपड़ी मिली थी, वह गिब्बन की थी, जबकि ऊर्ध्वस्थि मनुष्य की ही थी। द्युबुआ के शत्रुओं को जावा-मानवकपि को वानर और मनुष्य के मिश्रण में पलटकर ही संतोष नहीं हुआ। उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि द्युबुआ ने जिन अस्थि-अवशेषों की खोज की है, वे बहुत नये हैं और थोड़े वर्षों से ही धरती में दबे रहे हैं, न कि उनके दावे के अनुसार लाखों वर्षों से। उन्होंने पिथेकेंथ्रोपस-इरेक्टस को फिर से दफ़ना देने, उसे मिट्टी से ढांक देने और यह दिखाने का हर संभव प्रयास किया कि अव्वल तो वह मिला ही नहीं है।

द्युबुआ ने अपनी खोज का साहसपूर्वक पक्षपोषण किया। और वे सभी उनके पक्ष में थे, जो यह अनुभव करते थे कि विज्ञान के लिए वह खोज कितनी महत्वपूर्ण है।

अपने विरोधियों से बहस करते हुए द्युबुआ ने सिद्ध कर दिया कि खोपड़ी गिब्बन की नहीं हो सकती थी, क्योंकि गिब्बन के ललाट-विवर नहीं होते, जबकि पिथेकेंथ्रोपस के ललाट-विवर थे।

कई वर्ष बीत गये, मगर पिथेकेंथ्रोपस-इरेक्टस अभी भी मानव-परिवार से बहिष्कृत ही रहा।

तभी, वैज्ञानिकों को अचानक एक नये मानवकपि के अवशेष मिले, जो जावा-मानव के बहुत समान था।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में चीन में बैपीन नगर में एक यूरोपीय वैज्ञानिक एक चीनी औषधविक्रेता के यहां जा पहुंचा। वहां जो अजीब-अजीब चीज़ें रखी हुई थीं,

3–633

उनमें जेनशेन् नामक औषधिक जड़, जो मानव आकृति से मिलती-जुलती होती है, तरह-तरह के तावीज़ और गंडे और जानवरों की हड्डियां और दांत भी थे। जानवरों के दांतों के संग्रह में उन्हें एक ऐसा दांत मिला, जो निश्चित रूप से किसी ज्ञात जंतु के दांतों से नहीं मिलता-जुलता था। फिर भी, वह बस मनुष्य के दांत से ही कुछ मेल खाता था।

वैज्ञानिक ने दांत खरीद लिया और उसे यूरोप के एक संग्रहालय को भेज दिया। इसे इस सतर्कतापूर्ण शीर्षक के अंतर्गत दर्ज किया गया था – "चीनी दांत"।

पच्चीस वर्ष से अधिक बीत गये। तब बैपीन के पास चोउ-कोउ-तिएन नामक गुफा में उसी प्रकार के दो और दांत मिले। और इसके बाद उन दांतों का मालिक भी मिल गया। उसका नाम रखा गया – साइननथ्रोपस (चीनी मानव)।

कोई पूरा कंकाल कभी नहीं मिला। नई खोजों में लगभग पचास दांत, तीन खोपड़ियां, ग्यारह जबड़े, एक ऊर्ध्वास्थि का खंड, एक कशेरुका, एक हंसली, एक कलाई और एक पैर का एक टुकड़ा थे।

इसका यह मतलब कदापि नहीं कि गुहावासी के तीन सिर और केवल एक टांग थी।

इसमें अजब कुछ भी नहीं है। सीधी-भी बात यह है कि चोउ-कोउ-तिएन गुफा में मानवकपियों का एक बड़ा दल रहा करता था। इस प्रागैतिहासिक काल के बाद जो लाखों साल बीते थे, उन के दौरान कई हड्डियां ग़ायब हो गईं। लेकिन जो टुकड़े मिले, वे आदिम-गुहावासियों की मुखाकृति का पुनर्निर्माण करने के लिए काफ़ी थे।

हमारा आदिम नायक देखने में कैसा था?

ईमानदारी की बात यह है कि वह कोई बहुत सुंदर न था।

अगर तुम्हारा उससे अचानक सामना हो जाता, तो तुम शायद डर से हकबका जाते, क्योंकि अपने चपटे माथे, अपने उभरे चेहरे और लंबी, बाल भरी बांहोंवाला यह आदिम-मानव अभी तक काफ़ी कुछ वानर जैसा ही था। इसके विपरीत, अगर तुम यह मान लेते कि वह वानर है, तो तुम्हें तुरंत अपनी राय बदलनी पड़ती, क्योंकि कोई भी वानर मनुष्य की तरह सीधा नहीं चलता है और किसी भी वानर का चेहरा मनुष्य से इतना नहीं मिलता है।

मानवकपि के पीछे-पीछे अगर तुम उसकी गुफा तक चले जाते, तो तुम्हारे सारे संदेह खत्म हो जाते।



देखो, अपनी टेढ़ी टांगों पर भदभदाता वह नदी के किनारे चला जा रहा है। अचानक वह रेत पर बैठ जाता है। पत्थर के एक बड़े टुकड़े में वह दिलचस्पी लेने लगता है। वह उसे उठा लेता है, उसे ग़ौर से देखता है और फिर उसे एक और पत्थर पर दे मारता है। फिर अपनी खोजी चीज़ को लिये-लिये वह उठकर आगे जाने लगता है। आखिर वह एक कगार पर आता है। वहां एक गुफा के मुंह के पास उसका कुल इकट्ठा हुआ है। वे लोग एक झबरीले, दढ़ियल बूढ़े के आसपास भीड़ लगाये हैं, जो एक एण (काला हिरन) की लाश को पत्थर के औज़ार से काट रहा है। औरतें कच्चे मांस को अपने हाथों से नोच रही हैं। बच्चे उसके टुकड़े मांग रहे हैं। गुफा में काफ़ी भीतर जलती आग से रोशनी आ रही है।

रहे-सहे संदेश भी खत्म हो गये – क्या दुनिया में कोई भी वानर ऐसा है, जो आग जला सकता है और पत्थर से औज़ार बना सकता है? लेकिन तुम पूछ सकते हो – हमें कैसे मालूम कि मानवकपि पत्थर और हड्डी से औज़ार बनाता था और आग का इस्तेमाल जानता था?

चोउ-कोउ-तिएन की गुफा ने इस प्रश्न का उत्तर प्रदान किया। जिन निक्षेपों ने इन आदिम-मानवों के अवशेष प्रदान किये, उनमें पत्थर के दो हज़ार से अधिक अनगढ़ औज़ार और मिट्टी से मिली राख की सात मीटर गहरी परत भी थी। इसका मतलब था कि मानवकपि इस गुफा में बहुत-बहुत वर्ष रहे थे और उनकी आगें दिन-रात जलती रहती थीं। जाहिरा तौर पर वे आग जलाना नहीं जानते थे, बल्कि उसे "चुन" ही सकते थे, जैसे कि वे खाने योग्य मूल और अपने औज़ारों के लिए पत्थर चुना करते थे।

आग जंगल में आग लगने के बाद मिल सकती थी। प्रागैतिहासिक मनुष्य कोई दहकता अंगारा उठा लेता और उसे होशियारी के साथ अपने निवास-स्थान ले आता। वहां, हवा और पानी से संरक्षित गुफा के भीतर, वह इस आग की अपनी सबसे बड़ी निधि की तरह रक्षा करता था।





मनुष्य नियमों को तोड़ता है

हमारे नायक ने डंडों और पत्थरों को काम में लाना सीख लिया। इससे वह अधिक शक्तिशाली और ज़्यादा आज़ाद हो गया। पास में अगर फलों या गिरीफलों के पेड़ न भी होते, तो अब उसे कोई चिंता न होती। भोजन की तलाश में वह जंगल की एक नन्ही दुनिया से दूसरी दुनिया में जाते हुए, लंबे अरसों तक बाहर खुले मैदानों में रहते हुए, सभी नियमों को तोड़ते हुए, जिस भोजन को खाने की उससे अपेक्षा न की जाती थी, उसी को खाते हुए अपने निवास-स्थान से अधिकाधिक दूर तक जा सकता था।

और इस तरह, आरंभ से ही मनुष्य प्रकृति के नियमों को तोड़ने लगा।

वृक्षवासी पेड़ों की फुनगियों से उतर आया और ज़मीन पर विचरने लगा। वह दो टांगों पर चलने के लिए हठधर्मीपूर्वक सीधा हो गया। मानो इतना ही काफ़ी नहीं था, अब वह प्रकृति के अज्ञात साधनों से अपना भोजन प्राप्त करके उन चीज़ों को भी खाने लगा, जो उसके खाने की नहीं थीं।



संसार में सभी जंतुओं और पौधों की अन्योन्याश्रितता है, क्योंकि वे "पोषण चक्रों" द्वारा जुड़े हुए हैं। जंगलों में गिलहरियां चीड़फलों को खाती हैं, जबकि गिलहरियों को कसिये खा जाते हैं। इस तरह हमारे सामने एक शृंखला आ जाती है: चीड़फल – गिलहरी – कसिया। लेकिन गिलहरियां केवल चीड़फल ही नहीं खातीं। वे खुमियां तथा अन्य गिरीफल भी खाती हैं। और गिलहरियों का शिकार करनेवाला जंतु अकेला कसिया ही नहीं है। गिलहरी का शिकार करनेवाले अन्य जानवर और पक्षी भी हैं – जैसे बाज़। इस तरह हमें एक शृंखला और मिल जाती है: खुमी और गिरीफल – गिलहरी – बाज़। जंगल के सभी निवासी इन शृंखलाओं की कड़ियां हैं।

हमारा नायक जंगल की अपनी दुनिया में एक "पोषण चक्र" की एक कड़ी था। वह फल और गिरीफल खाता था, जबकि असिदंत व्याघ्र उसे खा जाता था।

तभी, अचानक, हमारे नायक ने इन शृंखलाओं को तोड़ना शुरू कर दिया। वह उन चीज़ों को खाने लगा, जिन्हें उसने पहले कभी नहीं खाया था। उसने असिदंत व्याघ्र और उन अन्य जंगली जानवरों का शिकार बनने से इनकार कर दिया, जो लाखों वर्षों से उसके पूर्वजों को मारते चले आ रहे थे।

वह इतना बहादुर कैसे बन गया? ज़मीन पर उतरने की हिम्मत उसमें कैसे आई, जहां रक्तपिपासु जंगली जानवरों के पैने दांत उसकी बाट जोह रहे थे? यह तो ऐसी ही बात हुई कि जैसे कोई चिड़िया तब अपने पेड़ पर से नीचे फुदक आये, जब नीचे बिल्ली उसकी घात में बैठी हो।

आदमी का नवोत्पन्न साहस उसके हाथों से आया। अपने हाथ में उसने जो पत्थर ले रखा था और जिस डंडे का वह मूलों के खोदने में इस्तेमाल करता था, वे उसके हथियार थे। मनुष्य के पहले औज़ार उसके पहले हथियार बन गये।

और फिर, आदमी कभी जंगलों में अकेला नहीं भटका।

सारा का सारा मानव-समूह उस पर हमला करनेवाले किसी भी जानवर पर टूट पड़ता था और उसे अपने नये हथियारों से भगा देता था।

हमें आग के बारे में नहीं भूलना चाहिए। आग के सहारे मनुष्य भीषणतम पशु को डराकर भगा सकता था।

मानव के हाथों के छोड़े चिह्नों पर

प्रागैतिहासिक मानव जब आखिर उन ज़ंजीरों को तोड़ने में सफल हुआ, जिन्होंने उसे पेड़ से बांध रखा था, तो उसकी यात्रा का क्रम इस प्रकार रहा – पेड़ से ज़मीन, जंगल से नदी-घाटियां।

हमें कैसे मालूम कि वह नदी-घाटियों की तरफ़ चला?

ऐसे चिह्न हैं, जो हमें वहां ले जाते हैं।

लेकिन ये चिह्न सुरक्षित कैसे रहे हैं?

ये उस तरह के सामान्य चिह्न नहीं हैं, जिन्हें पदचिह्न कहते हैं। ये मानव के हाथों के छोड़े चिह्न हैं।

कोई सौ वर्ष हुए, फ्रांस में सोमे नदी की घाटी में मज़दूर रेत और बजरी के लिए खुदाई कर रहे थे।

बहुत-बहुत पहले, जब सोमे अल्पायु ही थी और अभी ज़मीन में अपना रास्ता काट ही रही थी, वह इतनी उद्दंड थी कि बड़ी-बड़ी शिलाओं को साथ बहा लाती थी। उसके साथ-साथ तेज़ी से बहती हुई नदी में ये शिलाएं एक दूसरे से टकराती और रगड़ खाती थीं और इस प्रक्रिया में गोल, चिकनी और छोटी होती जाती थीं। बाद में, जब नदी अपेक्षाकृत शांत और मंदवेग हो गई, उसने इन कंकरों को रेत और मिट्टी की परत से ढांक दिया।



मज़दूर लोग नीचे के कंकरों तक पहुंच पाने के लिए इसी रेत और मिट्टी को खोद रहे थे।

अचानक, उनका ध्यान अजीब-अजीब चीज़ों पर जाने लगा। कुछ कंकर चिकने और गोल नहीं थे। वे खुरदुरे थे और दो तरफ़ से तराशे हुए जैसे लगते थे। उन्हें इस शक्ल का किसने बनाया होगा? नदी ने निस्संदेह नहीं, जो पत्थरों को केवल गोल और चिकना ही बना सकती है।

इन विचित्र पत्थरों की तरफ़ जेक बुशे दे पेर्त नामक पुरासंग्रही का ध्यान आकृष्ट किया गया, जो पास ही रहते थे। बुशे दे पेर्त के पास सोमे घाटी की बजरी में प्राप्त रोचक वस्तुओं का एक बड़ा संग्रह था। इनमें मैमथ के सामने के दांत, गैंडे के सींग और गुहा-भालुओं की खोपड़ियां भी थीं। ये सभी दैत्याकार पशु कभी सोमे के तट पर पानी पीने के लिए आते थे, जैसे अब गायें और भेड़ें आती हैं।

लेकिन प्रागैतिहासिक मानव कहां था? बुशे दे पेर्त उसकी हड्डियों का कोई सुराग़ न ढूंढ पाये।

तभी उन्होंने रेत में मिले विचित्र चकमक देखे। उन्हें दो तरफ़ों पर किसने तराशा होगा? उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यह काम केवल मनुष्य के हाथों से ही किया जा सकता था।

धुनी पुरातत्वविद ने खोज की उत्साहपूर्वक परीक्षा की। ठीक है कि ये प्रागैतिहासिक मानव के जीवाश्म अवशेष नहीं थे। किंतु ये वे चिह्न थे, जो उसने छोड़े थे – उसके उद्यम के चिह्न। इसमें कोई शक नहीं हो सकता था – यह नदी का काम नहीं था, यह आदमी का काम था।



बुशे दे पेर्त ने अपनी खोजों के बारे में एक पुस्तक लिखी। उनकी कृति का साहस भरा नाम था 'जीव-जंतुओं की उत्पत्ति पर निबंध'।

और फिर लड़ाई शुरू हो गई। उन पर सभी तरफ़ से हमला किया गया, जैसे बाद में दयुबुआ पर किया गया था।

उस ज़माने के सबसे बड़े पुरातत्वविदों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि इस गंवार पुरासंग्रही को विज्ञान की ज़रा भी समझ नहीं है और उसके चकमक के "कुल्हाड़े" नक़ली हैं और उसकी किताब ग़ैरक़ानूनी कर दी जानी चाहिए, क्योंकि वह मनुष्य की उत्पत्ति के बारे में ईसाई चर्च की शिक्षा को चुनौती देती है।

लड़ाई पंद्रह साल तक चलती रही।

बुशे दे पेर्त धवलकेशी और वृद्ध हो गये, मगर उन्होंने मानव-जाति की घोर पुरातनता सिद्ध करनेवाले अपने विचारों के लिए लड़ना जारी रखा। अपनी पहली पुस्तक के प्रकाशन के कुछ ही बाद उन्होंने एक दूसरी और फिर तीसरी पुस्तक लिखी।

शक्तियां असमान थीं, मगर जीत बुशे दे पेर्त की ही हुई। सर्वप्रमुख ब्रिटिश भूवैज्ञानिक चार्ल्स लायेल तथा जोसेफ़ प्रेस्टविच ने बुशे दे पेर्त के मत का सार्वजनिक समर्थन किया। दोनों ही ने सोमे घाटी और खुदी हुई स्थलियों की यात्रा की। उन्होंने घंटों बुशे दे पेर्त के संग्रह को देखने में लगाये और लंबे अध्ययन के बाद घोषित किया कि उन्होंने जो औज़ार खोजे थे, वे सचमुच प्रागैतिहासिक मानव के औज़ार थे, जो उन भीमकाय हाथियों और गैंडों का समकालीन रहा था, जो अब फ़्रांस तथा यूरोप से लुप्त हो चुके थे।

लायेल की पुस्तक "मनुष्य की पुरातनता" (१८६३ में प्रकाशित) ने बुशे दे पेर्त के विरोधियों के सभी तर्कों का सफ़ाया कर दिया। तब उन सबने कहना शुरू किया कि बुशे दे पेर्त ने असल में कुछ भी नहीं खोजा था, क्योंकि प्रागैतिहासिक औज़ार पहले भी कई जगहों पर मिल चुके थे।

इस नये तर्क का लायेल ने यह पैना उत्तर दिया, "हर बार जब विज्ञान कोई महत्वपूर्ण खोज करता है, तो आवाज़ें उसे धर्मविरोधी घोषित कर देती हैं, यद्यपि बाद में यही आवाज़ें इस बात का दावा करती हैं कि वह तो अरसे से सभी की जानी हुई बात थी।"

बुशे दे पेर्त ने सोमे घाटी में जिस तरह के चकमक पाये थे, वैसे कई पत्थर अब संसार के विभिन्न भागों में मिल चुके हैं। उनके मिलने की सामान्य जगहें पुरानी नदियों की तलहटियों की वे खदानें हैं, जहां कंकरों और बजरी की खुदाई होती है।

इस प्रकार आधुनिक मानव का बेलचा भूमि में एक प्रागैतिहासिक युग के औज़ारों से टकराता है, जब आदिम-मानव यह सीख ही रहा था कि काम कैसे किया जाता है।

पत्थर के औज़ार का सबसे पुराना नमूना ऐसा चकमक पत्थर है, जिसे एक दूसरे चकमक से दो तरफ़ से छील दिया गया है। पास ही आम तौर पर पत्थर की वे छिपटियां होती हैं, जो तराश दी गई थीं।

पत्थर के ये औज़ार मनुष्य के हाथों के वे चिह्न हैं, जो हमें नदी-घाटियों और नदीतटीन बालू राशियों की तरफ़ ले जाते हैं। वहां, निक्षेपों और कछारों में, आदिम-मानव अपने बनावटी पत्थर के पंजों और दांतों के लिए सामग्री खोजा करता था।

यह काम आदमी का काम था। कोई पशु या पक्षी अपने भोजन की और अपना घोंसला बनाने के लिए निर्माण सामग्री की ही तलाश कर सकता है। लेकिन वह कभी ऐसी चीज़ों की तलाश में नहीं जायेगा, जिनसे वह अपने लिए अतिरिक्त पंजे या दांत बना सके।

ज़िंदा बेलचा और ज़िंदा पीपा

तुमने शायद पक्षियों, पशुओं और कीड़े-मकोड़ों की निर्माण-योग्यताओं के बारे में पढ़ा या सुना हो। हमें उनमें निपुण बढ़ई, राजमिस्त्री, बुनकर और दरज़ी तक होने की बात मालूम है। बीवर के तेज़ दांत बिलकुल लकड़हारे की तरह पेड़ को गिरा सकते हैं। इसके बाद बीवर गिरे हुए तनों और डालियों का उपयोग करके सचमुच के बांध बना देते हैं। इन बांधों के कारण नदी अपने किनारों के बाहर निकल आती है और बीवरों के मनपसंद ठहरे पानी के तालाब बना देती है।

और जंगल की सामान्य भूरी चींटियां, जो चीड़ की सूखी पत्तियों से अपनी बांबियां बनाती हैं? अगर हम किसी बांबी को डंडे से उखाड़ें, तो हम देखेंगे कि वह कितनी चतुरता से बनाया गया कई मंज़िला मकान है।

सवाल उठता है—क्या कभी वह दिन भी आयेगा जब चींटियां और बीवर आदमी की बराबरी कर सकें? क्या अब से दस लाख साल बाद चींटियों के अपने चींटिया-अखबार होंगे, वे अपने चींटिया-कारखानों में काम करेंगी, अपने चींटिया-हवाई जहाज़ों में उड़ेंगी और रेडियो पर चींटिया-संगीत सुनेंगी? निस्संदेह नहीं। और यह सब इसलिए कि आदमी और चींटियों में एक बहुत महत्वपूर्ण अंतर है।

वह अंतर क्या है?

क्या यह कि आदमी चींटी से बड़ा है?

नहीं।

क्या यह कि आदमी की केवल दो टांगें हैं, जबकि चींटी के छः टांगें होती-हैं?

नहीं।

हम किसी बहुत ही भिन्न बात की चर्चा कर रहे हैं।

सोचो कि आदमी किस तरह काम करता है। वह अपने कोरे हाथों या अपने दांतों का उपयोग नहीं करता। वह कुल्हाड़ी, बेलचे या हथौड़े का इस्तेमाल करता है। लेकिन तुम चाहे कितना ही क्यों न देखो, चींटियों की बांबी में तुम्हें चींटिया-कुल्हाड़ी या चींटिया-हथौड़ी नहीं मिलेगी।

जब चींटी किसी चीज़ को दो टुकड़ों में काटना चाहती है, तो वह उन ज़िंदा कतरनियों का उपयोग करती है, जो उसके सिर का अंग होती हैं। जब उसे खाई

खोदनी होती है, तो वह उन चार ज़िंदा बेलचों का इस्तेमाल करती है, जिन्हें वह सदा साथ रखती है। ये बेलचे उसकी छः में से चार टांगें हैं। अगली दो खुदाई करती हैं, पिछली दो मिट्टी को अलग उलीचती हैं, जबकि बीच की दो टांगों पर वह काम करते समय टिकती है।

चींटियों के ज़िंदा पीपे तक होते हैं। इन्हें कभी-कभी "चींटिया-गाय" कहते हैं। चींटियों की कुछ जातियां अपनी बांबियों में पूरी की पूरी गैलरियां इन ज़िंदा पीपों से भर लेती हैं। ज़मीन के नीचे के इन अंधेरे गोदामों में इन पीपों की क़तारें की क़तारें गैलरी की छत से लटकी रहती हैं। ये पीपे निश्चल होते हैं। अचानक कोई कामगार चींटी गोदाम में आती है। उसकी शृंगिकाएं पीपे का कई बार स्पर्श करती हैं, जिससे वह चैतन्य हो जाता है और चलने लगता है।

उसके एक सिर, एक पेट और टांगें होती हैं और असल में यह उसके विशाल फूले हुए उदर के ही कारण होता है कि वह पीपे जैसी नज़र आती है। उसके जबड़े खुल जाते हैं और शहद की एक बूंद उसके मुंह से निकल आती है। कामगार चींटी, जो अभी-अभी नाश्ते के लिए आई है, बूंद को चाट लेती है और फिर काम पर चली जाती है। और "चींटिया-गाय" फिर छत से लटकी-लटकी सो जाती है।

ये चींटी के "ज़िंदा" औज़ार हैं। वे हमारे औज़ारों की तरह कृत्रिम नहीं हैं, बल्कि प्राकृतिक औज़ार हैं, जिनसे वह कभी अलग नहीं हो सकती।

बीवर के औज़ार भी उसके अंग होते हैं। उसके पास पेड़ को काटने के लिए कुल्हाड़ी नहीं होती। वह अपने दांतों का उपयोग करता है। चींटियां और बीवर अपने औज़ार नहीं बनाते। वे उनके साथ पैदा होते हैं।

या, मिसाल के लिए, विषमचंचु को ही ले लो।

विषमचंचु जब खाता है, तो वह न छुरी का उपयोग करता है, न कांटे का। उसके खाने के बरतनों में बस एक चिमटी होती है, जिससे वह बड़ी सफ़ाई के साथ चीड़फलों को खोलता है और गिरियों को कुतर-कुतरकर निकाल लेता है। विषमचंचु कभी अपने बरतनों को अलग नहीं करता (सोते समय भी), महज इसलिए कि उसकी अपनी चोंच ही उसकी छुरी और कांटा दोनों ही होती है।

इस पक्षी की चोंच चीड़फल खोलने के लिए उतनी ही उपयुक्त है, जितना कि गिरीफल फोड़ने के लिए सरौता या डाट निकालने के लिए काग-पेंच।

अंतर बस यह है कि आदमी ने गिरीफलों के लिए सरौते का आविष्कार किया, जबकि विषमचंचु ने हज़ारों वर्षों के दौरन अपने को चीड़वनों के जीवन और चीड़-फलों से गिरियां निकालने के लिए अनुकूलित कर लिया। पहली नज़र में ऐसे औज़ारों पर ईर्ष्या हो सकती है – जो औज़ार अपना अंग हो, उसे हम कभी खो या रखकर भूल नहीं सकते। लेकिन अगर तुम इस पर विचार करो, तो तुम देखोगे कि ये औज़ार असल में इतने अच्छे नहीं हैं। उन्हें कभी सुधारा या बदला नहीं जा सकता।

बीवर के दांत जब उम्र बढ़ जाने के कारण भोथरे हो जाते हैं, तो वह सानगर के पास जाकर उन पर धार नहीं चढ़वा सकता। और चींटी ऐसी नई, सुधरी हुई टांग की मांग नहीं कर सकती, जो खुदाई तेज़ी से और गहरी करे।

हाथ या बेलचा

मान लो कि अन्य सभी जंतुओं की तरह आदमी के भी ज़िंदा औज़ार ही होते और लकड़ी, लोहे या इस्पात के बने कोई औज़ार न होते।

वह न किसी नये औज़ार की ईजाद कर सकता था, न जिस पुराने औज़ार के साथ वह पैदा हुआ था, उसे बदल ही सकता था। और अगर उसे बेलचे की ज़रूरत होती, तो उसे बेलचेनुमा हाथ को लिये-लिये ही पैदा होना पड़ता। हम बेशक इन सब बातों की कल्पना ही कर रहे हैं, क्योंकि ऐसा असल में कभी हो ही नहीं सकता। लेकिन मान लो कि कोई ऐसा विचित्र प्राणी पैदा हो ही जाये। स्वयं तो वह चाहे शानदार खुदाई करनेवाला हो, पर वह किसी और को इतनी अच्छी खुदाई करना नहीं सिखा पायेगा – बिलकुल ऐसे ही जैसे अच्छी निगाहवाला कोई आदमी अपनी आंखें किसी और को उधार नहीं दे सकता।

ऐसे प्राणी को ज़िंदगी भर अपना बेलचाई हाथ साथ लिये-लिये घूमना होगा, पर वह किसी भी अन्य प्रकार के काम के लिए उपयोगी न होगा। जब वह प्राणी मरेगा, तो उसके बेलचे का भी अंत हो जायेगा। यह जन्मजात खनक अपनी आगामी पीढ़ियों को अपना बेलचा तभी देकर जा पायेगा जब उसके पोते-परपोते उसके बेलचाई हाथ को वंशानुक्रम में ही ग्रहण करें।

फिर भी, यह पूर्णतः सत्य नहीं है। कोई ज़िंदा औज़ार भावी संततियों का जीवित अंग तभी बनता है, जब वह उनके काम का हो; अगर वह हानिकर हो, तो वह उनका जीवित अंग नहीं बनता।

अगर लोग छछूंदर की तरह ज़मीन के भीतर रहते, तो उन्हें निस्संदेह बेलचाई हाथों की ज़रूरत होती।



लेकिन ज़मीन के ऊपर रहनेवाले प्राणी के लिए ऐसा हाथ अनावश्यक सुख-साधन है।

किसी ज़िंदा और प्राकृतिक औज़ार की उत्पत्ति कितनी ही बातों पर निर्भर होती है। फिर भी, सौभाग्यवश, मनुष्य अपने विकास में दूसरे ही पथ पर चला। उसने इस बात की प्रतीक्षा नहीं की कि प्रकृति उसे बेलचाई हाथ प्रदान करे। उसने अपने लिए बेलचा खुद बना लिया। और केवल बेलचा ही नहीं, बल्कि छुरा और कुल्हाड़ा और कितने ही अन्य औज़ार भी।



मनुष्य ने अपने पूर्वजों से वंशानुक्रम में जिन दस हाथ की उंगलियों, दस पांव की उंगलियों और बत्तीस दांतों को प्राप्त किया, उनमें उसने हज़ारों ही अत्यंत भिन्न-भिन्न – लंबी और छोटी, पतली और मोटी, तेज़ और भोथरी, भुंकनेवाली, काटनेवाली और चोट करनेवाली – उंगलियों, दाढ़ों, दांतों, पंजों और मुट्ठियों को और जोड़ लिया है।

और इसने उसे शेष जंतु-जगत के साथ होड़ में इतना तेज़ बना दिया है कि दूसरों के लिए कभी भी उसकी बराबरी कर पाना असंभव हो गया है।

उद्यमी मनुष्य और उद्यमी नदी

जब आदिम-मानव धीरे-धीरे मनुष्य बन रहा था, तब वह पत्थर के अपने पंजे और दांत स्वयं नहीं बनाता था, बल्कि उन्हें उसी प्रकार इकट्ठा करता था जैसे हम खुमियां या बेरियां इकट्ठा करते हैं। नदियों के कछारों पर विचरते समय वह सावधानीपूर्वक उन नुकीले पत्थरों की तलाश करता, जिन्हें प्रकृति ने उसके लिए तराशा और चिकना किया था।

ये "पैदाइशी" तेज़ पत्थर आम तौर पर वहां मिल सकते थे, जहां किसी ज़माने में किसी भंवर ने पत्थरों के विराट ढेरों को एक-दूसरे से इस तरह ठोंकते हुए जैसे वे एक विशाल झुनझुने के हिस्से हों, नदी की तलहटी में पड़ी चट्टानों को इधर-उधर फेंका था। भंवर में किसी काम में जूझते समय नदी को अपने "श्रम" के परिणामों की ज़्यादा परवाह न थी। यही कारण है कि प्रकृति ने जिन हज़ारों पत्थरों पर काम किया, उनमें से बहुत कम ही मनुष्य के किसी उपयोग के थे।

कालांतर में वह पत्थरों को अपनी आवश्यकतानुसार गढ़ने लगा, वह अपने पहले पत्थर के औज़ार बनाने लगा।

और तब जो हुआ, मानव-जाति के इतिहास में वह अनेक बार होनेवाला था – मनुष्य ने किसी ऐसी चीज़ की जगह, जिसे उसने उसकी प्राकृतिक अवस्था में पाया था, अपनी बनाई किसी कृत्रिम वस्तु को दे दी। मनुष्य ने प्रकृति की विशाल वर्कशॉप के एक कोने में अपनी निजी वर्कशॉप स्थापित कर दी और वहां उसने चीज़ों को उत्पन्न किया, ऐसी चीज़ें, जो उसे प्रकृति में नहीं मिलती थीं।

यह पत्थर के औज़ारों की कहानी है, यही – हज़ारों साल बाद – धातु की कहानी है। प्रकृत धातु के बजाय, जिसे पाना कठिन था, मनुष्य ने कच्ची धातु से धातु को प्राप्त करना शुरू किया। और, हर बार जब उसने अपनी पाई हुई किसी चीज़ से लेकर किसी चीज़ को खुद बनाने तक की प्रगति की, उसने आज़ादी की तरफ़, प्रकृति के कड़े शासन से अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने की तरफ़ एक क़दम और बढ़ाया।

पहले मनुष्य उन सामग्रियों का निर्माण नहीं कर सकता था, जिनकी उसे अपने औज़ारों के लिए आवश्यकता थी। उसने उन चीज़ों को, जिन्हें वह पा सकता था, अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के प्रयास के साथ शुरूआत की।

इस प्रकार, वह कोई अच्छा पत्थर ढूंढ लेता और उसके सिरों को किसी और पत्थर से छीलकर उसे एक औज़ार में बदल लेता।

इससे तेज़ नोकवाला एक भारी औज़ार बन जाता, जिसे घन (प्रहारक) या एक तरह का कुल्हाड़ा कहते हैं। अलग होनेवाली छिपटियां भी कतरनियों, खुरचनियों और छेनियों के रूप में काम में ले आई जाती थीं।

धरती में काफ़ी गहराई पर मिले सबसे पुराने प्रागैतिहासिक औज़ार प्रकृत पत्थरों से इतने मिलते-जुलते हैं कि कभी-कभी यह कहना मुश्किल हो जाता है कि काम किया किसने है – मनुष्य ने, नदी ने, या महज़ गरम ताप से ठंडे ताप में परिवर्तन ने, जो वर्षा और पानी के साथ-साथ पत्थर को तड़का और तोड़ देता है।

तथापि, ऐसे भी औज़ार मिले हैं, जिनके बारे में कोई शक नहीं पैदा होता। प्राचीन नदियों के कछारों और तटों पर, जो अब मिट्टी और रेत की गहरी परतों



के नीचे दबे हुए हैं, वैज्ञानिकों ने प्रागैतिहासिक मानव की वास्तविक कार्यशालाओं को खोद निकाला है। इन खुदाइयों के दौरान तैयार प्रागैतिहासिक कुल्हाडियां और वे पत्थर भी मिले हैं, जो कुल्हाड़ियां बनने को थे।

रूस में ये कुल्हाड़ियां दक्षिणी प्रदेशों में, सुखूमी के पास के समुद्री कगारों में और क्रीमिया में किइक-कोबा गुफा में मिली हैं।

अगर हम चकमक की कुल्हाड़ी को ग़ौर से देखें, तो हम साफ़ देख सकते हैं कि चिपटियों को अलग करने और एक नुकीला सिरा बनाने के लिए उस पर चकमक के घन से कहां चोट की गई थी। हम उसके समतल और चिकना किये जाने के निशान भी देख सकते हैं।

प्रकृति कभी ऐसा काम नहीं कर सकती थी। केवल मनुष्य ही इसे कर सकता था।

इस बात को समझना कठिन नहीं है – प्रकृति में जो कुछ भी होता है, वह बड़े अव्यवस्थित ढंग से, बिना किसी योजना या लक्ष्य के होता है। नदी का भंवर बिना किसी बात या प्रयोजन के पत्थरों को एक-दूसरे पर पटकता रहता है। आदमी भी यही करता है, लेकिन वह ऐसा सोच-समझकर करता है, वह जो करता है, उसका उसके पास उचित कारण होता है। अपने पाये पत्थर को अपनी आवश्यकता के अनुरूप बनाने के सामान्य प्रारंभ से लेकर मनुष्य धीरे-धीरे प्रकृति को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए बदलने और फिर से बनाने लगा।

इसने उसे पशुओं से एक सीढ़ी और ऊपर उठा दिया, इसने उसे और ज़्यादा आज़ादी दे दी, क्योंकि अब उसने इसकी प्रतीक्षा करना बंद कर दिया कि प्रकृति उसे एक तेज़ पत्थर प्रदान करे।

अब वह अपने औज़ार ख़ुद बना सकता था।

मनुष्य की जीवनी का आरंभ

जीवनी का प्रारंभ आम तौर पर व्यक्ति की जन्मतिथि और जन्मस्थान के साथ होता है। मिसाल के लिए:

"इवान इवानोव का जन्म २३ नवंबर १८६७ को तंबोव नगर में हुआ था।"

यही जानकारी कभी-कभी ज़रा ज़्यादा नाटकीय शैली में भी दे दी जाती है। जैसे:

"नवंबर का महीना और १८६७ का साल था। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ऐसे ही एक दिन तंबोव नगर के वाह्यांचल में एक छोटे से घर में इवान इवानोव का जन्म हुआ, जिन्होंने आगे चलकर अपने परिवार और जन्मस्थान का नाम बढ़ाया।"

लेकिन यहां हम तीसरे अध्याय के बीच में आ चुके हैं, लेकिन हमने अभी तक इस बात का उल्लेख भी नहीं किया कि हमारा नायक कब और कहां पैदा हुआ था। हमने तो असल में अभी उसका असली नाम तक नहीं बताया है। किसी जगह हमने उसे "कपि-मानव" कहा, तो किसी जगह उसे "मानवकपि" कहा गया है। उसे "प्रागैतिहासिक मनुष्य" और "आदिम-मानव" और "हमारा वनवासी पूर्वज" तक कहा गया है।

हम नामों के इस प्रकट घोटाले को साफ़ करने की कोशिश करेंगे।

हम चाहें भी तो तुम्हें अपने नायक का असली नाम नहीं बता सकते, क्योंकि उसके अनेकों नाम हैं।

अगर तुम किसी भी जीवनी के पन्ने पलटो, तो तुम देखोगे कि नायक का नाम आदि से अंत तक कभी नहीं बदलता। पहले वह बालक था, फिर लड़कपन से गुज़रा और अंत में दाढ़ी-मूंछवाला आदमी बन गया, मगर उसका नाम वही रहा, जो शुरू में था। अगर उसका नाम इवान रखा गया था, तो वह अपने जीवन के अंत तक इवान ही रहेगा।

लेकिन जहां तक हमारे नायक की बात है, मामला ज़्यादा पेचीदा है।

वह खुद एक अध्याय से दूसरे अध्याय तक इतना बदल जाता है कि हमारे पास इसी के अनुसार उसका नाम बदलने के सिवाय और कोई चारा नहीं।

अगर हम प्रागैतिहासिक मनुष्य में से सबसे पुरातन – जो अभी तक काफ़ी कुछ वानर जैसा ही नज़र आता है – की चर्चा कर रहे हैं, तो उसका नाम है पिथेकैंथ्रोपस, साइननथ्रोपस और हाइडेलबेर्ग-मानव।

हाइडेलबेर्ग-मानव का जो अकेला निशान हमारे पास है, वह है जर्मनी में, हाइडेलबेर्ग नगर के पास मिला उसका जबड़ा।

तथापि, वह इस बात का पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करता है कि उसका मालिक मनुष्य था – उसके दांत इंसानी दांत हैं; उसके भेदक दांत निचले दांतों के ऊपर इस तरह चढ़े हुए नहीं हैं, जैसे कि वानर के चढ़े होते हैं।

लेकिन हाइडेलबेर्ग-मानव भी अभी सच्चा मनुष्य नहीं है। उसकी पश्चगामी ठोड़ी यह बात हमें बता देती है।

पिथेकैंथ्रोपस, साइननथ्रोपस, हाइडेलबेर्ग-मानव!

हमारे नायक के जीवन के एक ही काल, उसके विकास की एक ही अवस्था के लिए तीन बड़े-बड़े नाम!



लेकिन वह बिन-बदला नहीं रहा। वह अधिकाधिक आधुनिक मनुष्य जैसा होता जा रहा था। जैसे शिशु बालक और बालक नवयुवक हो जाता है, उसी प्रकार प्रागैतिहासिक मनुष्य निआंडरथाल-मानव हुआ, और निआंडरथाल-मानव क्रोमग्नन-मानव बना।

तो, हमारे नायक के कुछ नाम अभी भी बाक़ी हैं!

लेकिन हमें अपने से ही आगे नहीं निकल जाना चाहिए। इस अध्याय में उसे "पिथेकैंथ्रोपस – साइननथ्रोपस – हाइडेलबेर्ग-मानव" कहा गया है।

अपने दिन वह नदियों के किनारे उन चीज़ों की तलाश में भटकते बिताया करता था, जिन्हें वह अपने औज़ारों में बदल सकता था। वह सब्र के साथ चकमक के एक पत्थर से दूसरे पत्थर के टुकड़ों को छीलता उन भद्दी और बदशक्ल कुल्हाड़ियों को बनाता, जो वैज्ञानिकों को अभी तक प्राचीन नदियों के निक्षेपों में मिला करती हैं।

यही कारण है कि तुम्हें उसका नाम बतलाना इतना कठिन है।

तुम्हें यह बताना तो और भी कठिन है कि वह पैदा कब हुआ था, क्योंकि हम सीधे-सीधे यह नहीं कह सकते – "हमारा नायक फ़लां साल में पैदा हुआ था",



क्योंकि मनुष्य किसी एक वर्ष के भीतर मनुष्य नहीं बन गया था। उसे चलना सीखने और अपने भद्दे औज़ार बनाने में लाखों वर्ष लग गये। इसलिए, अगर कोई हमसे पूछे कि मनुष्य की आयु कितनी है, तो हम केवल यही जवाब दे सकते हैं – कोई दस लाख वर्ष।

और यह कहना तो बहुत मुश्किल है कि मनुष्य पैदा कहां हुआ था।

हमने यह पता लगाने की कोशिश की कि हमारे नायक की नानी कहां रहती थी – वही आदिम नानी वानर, जिसके वंशजों में आदमी, चिंपांज़ी और गोरिल्ला सम्मिलित हैं। वैज्ञानिक इस वानर को ड्रिओपिथेकस कहते हैं। जब हमने उसका पता ढूंढ़ना शुरू किया, तो हमें पता चला कि ड्रिओपिथेकस कितने ही पहले हो चुके हैं। कुछ पदचिह्न मध्य यूरोप की ओर ले जाते थे, कुछ पश्चिमी अफ़्रीका को, तो कुछ दक्षिण एशिया को।

जाननेवाले लोगों ने हमें बताया कि दक्षिण अफ़्रीका में कितनी ही दिलचस्प खोजें हुई हैं। वहां उन वानरों के अवशेष मिले हैं, जो अपने पिछले पैरों पर चलना जानते थे और जिन्होंने जंगलों में रहना छोड़ दिया था और खुले में रहते थे।

फिर हमें याद आया कि पिथेकेंथ्रोपस और साइननथ्रोपस के अवशेष एशिया में मिले थे, जबकि हाइडेलबेर्ग-जबड़ा यूरोप में मिला था। तो मनुष्य का जन्मस्थान कौनसा था? और हमने अनुभव किया कि यह निश्चय करना कठिन होगा कि मनुष्य कौनसे महाद्वीप पर पैदा हुआ था, किसी देश की बात तो और भी मुश्किल है।

हमने सोचा कि हम अपनी खोज का आरंभ हर ऐसी जगह को जानकर कर सकते हैं, जहां पत्थर के औज़ार मिले हैं। आखिर, आदमी सचमुच आदमी तभी बना, जब उसने खुद अपने औज़ार बनाना शुरू किये। शायद ये औज़ार हमें यह निश्चित करने में सहायता दें कि मनुष्य पृथ्वी पर कहां सबसे पहले प्रकट हुआ।

हमने दुनिया का नक़शा लिया और उस पर चकमक के कुल्हाड़े मिलने की हर जगह बना दी। जल्दी ही पूरा नक़शा बिंदुओं से भर गया। उनमें से अधिकांश यूरोप में थे, लेकिन कुछ बिंदु अफ़्रीका और एशिया में भी थे।

जवाब अब साफ़ था – मनुष्य पहले पुरानी दुनिया में ही – एक साथ कई अलग-अलग जगहों पर और किसी अकेली जगह नहीं – अवतरित हुआ था।

और यही बहुत करके हुआ भी, क्योंकि हम क्षण भर के लिए भी इसकी कल्पना नहीं कर सकते कि समस्त मानव-जाति "आदम वानर" और "हव्वा वानर" जैसे वानरों के किसी एक ही जोड़े से उत्पन्न हुई है। वानर का मनुष्य में रूपांतरण किसी एक ही प्रदेश में वानरों के एक ही झुंड के भीतर नहीं हुआ। यह कितने ही प्रदेशों में एक साथ हुआ, हर कहीं ऐसे वानर थे, जिन्होंने दो पैरों पर चलना और अपने हाथों का काम के लिए उपयोग करना सीख लिया था। और जैसे ही उन्होंने काम करना शुरू किया, एक नई शक्ति का जन्म हुआ, जिसने अंततः उन्हें मनुष्यों में परिणत कर दिया। यह शक्ति थी मानव-श्रम।

मनुष्य समय बनाता है

हर कोई जानता है कि खनिज लोहे और कोयले का खनन कैसे होता है और आग कैसे जलाई जाती है।

लेकिन समय कैसे बनाया जाता है?

बहुत कम ही लोग इसका उत्तर जानते हैं, चाहे मनुष्य ने समय का बनाना बहुत पहले सीख लिया था। जब उसने पहले-पहले औज़ार बनाना शुरू किया, उसकी ज़िंदगी किसी नये ही काम में लग गई, और यह वास्तविक, मानविक कार्य था – यह श्रम था। लेकिन श्रम समय लेता था। पत्थर का औज़ार गढ़ने के लिए मनुष्य को पहले अच्छा पत्थर ढूंढ़ना पड़ता था, क्योंकि हर पत्थर को कुल्हाड़ी में नहीं बदला जा सकता था।

औज़ारों के लिए सबसे अच्छा पत्थर चकमक था, जो सख़्त और भारी था। लेकिन चकमक के टुकड़े हर कहीं नीचे ही नहीं पड़े रहते थे, उन्हें ढूंढ़ना होता था। मनुष्य घंटों चकमक की तलाश में लगाता, और अकसर उसकी तलाश बेकार जाती। तब उसे कम सख़्त चकमक का और बलुआ पत्थर तथा चूना पत्थर जैसी मुलायम चीज़ों तक का उपयोग करना पड़ता।

आख़िर वह ठीक तरह का पत्थर ढूंढ़ लेता। फिर भी वह कोरा पत्थर ही होता था, उसको पत्थर के एक घन से तोड़ना और गढ़ना ज़रूरी होता था। इसमें भी समय लगता था। आदमी की उंगलियां तब इतनी तेज़ और निपुण नहीं थीं जैसी कि वे अब हैं, वे काम करना सीख ही रही थीं। यही कारण था कि अपने भद्दे कुल्हाड़े बनाने में भी उसे इतना अधिक समय लगाना पड़ता था, जितना आजकल इस्पात के कुल्हाड़े के लिए नहीं लगता है।

लेकिन इस काम के लिए आवश्यक समय वह कहां से लाता?

प्रागैतिहासिक मानव के पास बहुत कम फ़ालतू समय था। उसके पास आज के व्यस्त से व्यस्त आदमी से भी कम समय था। सुबह से शाम तक वह जंगलों और वृक्षहीन स्थलों में अपने और अपने बच्चों के लिए भोजन बटोरता घूमा करता था, और खाने योग्य हर चीज़ सीधे उनके मुंह में पहुंच जाती थी। सोने पर न लगा सारा समय खाना इकट्ठा करने और खाने में लग जाता था, क्योंकि प्रागैतिहासिक मनुष्य जो भोजन करता था, वह बहुत पोषक न था और उसे उसकी बड़ी मात्रा की आवश्यकता होती थी।



सोचो तो कि अगर उसके भोजन में बस बेरियां, गिरीफल, घोंघे, चूहे, हरी टहनियां, मूल, कीड़े-मकोड़ों की इल्लियां और ऐसी ही और अल्लम-गल्लम चीज़ें होती हों, तो उसे कितना खाना पड़ता होगा!

मनुष्यों के झुंड तब जंगलों में उसी प्रकार चरा करते थे जैसे अब हिरनों के झुंड जगह-जगह घास और काई चरते और चबाते रहते हैं। लेकिन अगर मनुष्य को अपना सारा दिन भोजन तलाश करने और चबाने में ही लगाना पड़ता, तो वह काम कब कर सकता था?

और तब उसने पता लगाया कि काम में एक अद्भुत गुण है – वह केवल उसके समय को ले ही नहीं लेता था, यह उसे अधिक समय देता भी था।

सचमुच, अगर तुम किसी ऐसे काम को चार घंटे में कर लो, जिसमें किसी

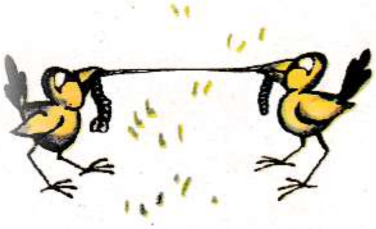


और को आठ घंटे लगते हैं, तो तुमने चार घंटे बचा लिये। अगर तुम कोई ऐसा औज़ार ईजाद कर लो, जो तुम्हारा काम जितनी तेज़ी से तुम उसे पहले करते थे, उससे दुगनी तेज़ी से कर दे, तो तुमने वह आधा समय बचा लिया, जो आम तौर पर तुम्हें उसे करने में लग जाता।

प्रागैतिहासिक मनुष्य ने यह खोज कर ली।

चकमक को तेज़ करने में उसे कई-कई घंटे लग जाते थे। लेकिन तब वह इस तेज़ औज़ार को पेड़ की छाल के नीचे से इल्लियां निकालने में इस्तेमाल कर सकता था।

चकमक से डंडे को नुकीला करने में उसे बहुत देर लगती थी। लेकिन फिर उसके लिए इस नुकीले डंडे का उपयोग सुस्वादु मूलों को खोद उखाड़ने या छोटे जानवरों को मारने में करना बहुत आसान था।



इसने प्रागैतिहासिक मनुष्य का अपने और अपने बच्चों के लिए भोजन इकट्ठा करने का काम बहुत आसान और तेज़ कर दिया और काम के लिए उसे ज़्यादा समय दे दिया। अपने खाली समय में वह औज़ारों को गढ़कर उन्हें लगातार ज़्यादा तेज़ और अच्छा बनाता जाता था। लेकिन चूंकि हर नये औज़ार का मतलब था ज़्यादा भोजन, इसलिए इसका मतलब अंत में ज़्यादा समय का बचना भी था।

शिकार ही आदमी को सबसे अधिक खाली समय प्रदान करता था। गोश्त चूंकि बहुत शक्तिप्रद था, इसलिए गोश्त खाने में लगाया गया आधा घंटा उसकी दिन भर की भूख को शांत कर देता था। लेकिन आरंभ में लोगों को गोश्त बहुत कम मिलता था। बड़े जानवर को डंडे या पत्थर से मारना बहुत मुश्किल था, और चूहे से बहुत मांस मिलता न था।

मनुष्य अभी असली शिकारी नहीं बना था। वह बिनाई करनेवाला ही था।

बिनाई की ज़िंदगी

आज के ज़माने में बिनाई करनेवाला बनना बहुत आसान है। तुममें से अधिकतर जंगलों में बेरियों और खुमियों की चुनाई कर चुके हो। काई से झांकती भूरी खुमी या घास से झांकती लाल खुमी को ढूंढ़ना कितना मज़ेदार होता है। काई में खूब गहरे हाथ डालकर खुमी के मज़बूत तने को पकड़ने और फिर उसे सावधानी से खींचने में कितना आनंद आता है!

लेकिन क्षण भर के लिए कल्पना करो कि खुमी या बेरियां चुनना ही तुम्हारा मुख्य काम है। तुम्हारे खयाल से क्या इसी से तुम्हारा पेट भर जाया करेगा? तुम जब खुमी चुनने जाते हो, तो कभी-कभी तुम्हारा झोला पूरा भरा होता है, बल्कि कुछ खुमियां तो तुम्हारी टोपी में भी भरी होती हैं। लेकिन कभी-कभी जंगलों में सारा दिन बिताने के बाद जब तुम हारे-थके लौटते हो, तो तुम्हारे झोले में एक मुड़ी-तुड़ी खुमी के अलावा और कुछ दिखाने को नहीं होता।

हमारी एक दसवर्षीया सहेली जब-जब खुमियां चुनने जाती, वह शेखी बघारती हुई कहती:

"मैं पूरी सौ बढ़िया खुमियां लेकर आऊंगी!"

लेकिन आम तौर पर वह खाली हाथ ही लौटती। घर पर उसके खाने के लिए कुछ और न होता, तो वह भूखों ही मर जाती।

प्रागैतिहासिक काल में बिनाई पर जीनेवाले मनुष्य की ज़िंदगी कहीं कठिन थी। अगर वह भूखों नहीं मरा, तो वह महज़ इसलिए कि उसे जो कुछ भी मिल जाता, उसके खाने से उसे कोई परहेज़ न था और वह अपने दिन भोजन की तलाश में ही बिताता था। यद्यपि वह पेड़ों पर रहनेवाले अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और स्वतंत्र हो गया था, फिर भी उसकी हालत खासी पतली ही थी। दरअसल, वह बस एक अधभूखा प्राणी ही था, और कुछ नहीं।

और इसी बीच, एक भयानक आपदा दुनिया की सूरत ही बदलने जा रही थी।





आपदा सिर पर आई

किन्हीं कारणों से, जो अभी तक समझ में नहीं आ सके हैं, उत्तरी हिमावरण स्थानच्युत हो गये और दक्षिण की ओर खिसकने लगे। बर्फ़ की बड़ी-बड़ी नदियां ढलानों को रौंदती हुई, पहाड़ियों की चोटियों को काटती हुई, चट्टानों को तोड़ती और चूर-चूर करती हुई और टूटी हुई चट्टानों के बड़े-बड़े अंबारों को बहाती हुई पहाड़ों और मैदानों पर प्रवाहित होने लगीं। हिमनदियों के मुखों पर पिघलती बर्फ़ ने तूफ़ानी नदियों को जन्म दिया, जिन्होंने पृथ्वी पर नदियों की तलहटियां बनाते हुए गहरी खाइयां खोद दीं।

उत्तर से बर्फ़ विजेताओं की एक बड़ी सेना की तरह आगे बढ़ी। रास्ते में इसमें पर्वत शिखरों और घाटियों से आती हिमनदियां भी सम्मिलित हो गईं।

सोवियत संघ तथा पड़ोसी देशों के मैदानों में पाये जानेवाले गोलाश्मों में हम भिन्न-भिन्न हिमनदियों के चिह्न देख सकते हैं। कभी-कभी कारेलिया के चीड़वनों में तुम्हारे सामने अचानक एक विशाल काई चढ़ा गोलाश्म आ जाता है। यह यहां पहुंचा, तो कैसे? इसे यहां कोई हिमनदी छोड़ गई थी।

उत्तरी हिमनदियां दक्षिण की तरफ़ पहले भी आई थीं, लेकिन पहले कभी वे इतनी दूर दक्षिण तक नहीं धंस आई थीं। रूस में हिमनदियां वोल्गोग्राद और द्नेप्रोपेत्रोव्स्क नगरों तक पहुंच गई थीं। पश्चिमी यूरोप में वे जर्मनी के पर्वतीय प्रदेशों तक पहुंच गई थीं और ब्रिटिश द्वीपसमूह के अधिकांश पर छा गई थीं। उत्तरी अमरीका में वे बड़ी झीलों से भी नीचे तक आ गई थीं।



हिमनदियां धीमी गति से आगे बढ़ती रहीं और प्रागैतिहासिक मनुष्य धरती पर जिन जगहों पर रह रहा था, वहां तक उनकी ठंड पहुंचने में काफ़ी समय लग गया। तथापि, समुद्र के प्राणियों ने ही बर्फ़ानी झोंके को सबसे पहले अनुभव किया।

तटवर्ती प्रदेश अभी तक गरम ही थे। जंगल लॉरेल और मैग्नोलिया के वृक्षों से भरे हुए थे। मैदानों की ऊंची घास में भीमकाय दक्षिणी हाथी और गैंडे विचरा करते थे। लेकिन समुद्रों में पानी लगातार ठंडा होता जा रहा था। धाराएं उत्तरी हिमनदियों की ठंड और कभी-कभी प्लावी हिमखंडों को भी समुद्र में से होकर बहनेवाली नदियों ही की तरह साथ बहाती जाती थीं।

सागरतटीय कगार हमें गरम समुद्रों के ठंडे होने की कहानी बताते हैं। एक ऐसे समय, जब ऊष्माप्रेमी पशु और पौधे अभी तक भूमि पर निवास कर रहे थे, समुद्रों की आबादी बदलने लगी थी। अगर हम उस काल के जीवाश्म-निक्षेपों का अध्ययन करें, तो हमें मोलस्क प्राणियों के कवच मिलेंगे, जो केवल ठंडे पानी में ही रह सकते हैं।

जंगलों की लड़ाई

हिमनदियों के आगमन को धरती पर भी अनुभव किया जाने लगा।

और इसमें अचरज की बात क्या है, स्वयं आर्कटिक अपनी जगह से डिग गया था और अब धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ता चला आ रहा था! इसने उत्तर के तुंद्रा और चीड़वनों को भी डांवांडोल कर दिया और उन्हें भी दक्षिण की तरफ़ ढकेल दिया।

तुंद्रा ने तैगा पर खुले युद्ध की घोषणा कर दी। तैगा को पीछे हटना पड़ा और इसलिए वह पत्रधारी वनों पर छाने लगा।

जंगलों का महायुद्ध शुरू हो चुका था।

जंगल अब भी एक-दूसरे से जूझ रहे हैं। देवदार और एस्प जानी दुश्मन हैं। एस्प को छाया से चिढ़ है, जबकि देवदार को इससे कोई परहेज़ नहीं।

अगर देवदार वन में तुम्हारी निगाह एस्प वृक्षों पर पड़े, तो तुम देखोगे कि वे नन्हे अंकुर जितने ही हैं – छायादार देवदार उन्हें बढ़ने ही नहीं देते। लेकिन जब लकड़हारे देवदार को काट डालते हैं, तो तेज़ धूप में एस्प फिर जी उठते हैं और तेज़ी के साथ बढ़ने लगते हैं।

फिर सब कुछ बदलने लगता है – देवदार की जड़ों के पास जो छायाप्रेमी काई उग आती थी, वह मुरझाकर मर जाती है। जो देवदार इतने छोटे थे कि काटे नहीं जा सकते थे, उषाकालीन तुषार से वे पीले पड़ जाते हैं। जब उनके पिता – विशाल देवदार – जीवित थे, तो उनकी हरी बांहों के साये के नीचे नन्हे देवदार मज़े में रहते थे। लेकिन जब वे खुले में अकेले रह गये, तो वे पीले पड़ गये और उन्होंने बढ़ना बंद कर दिया।

अब एस्प विजयी हो गये। पहले, उन्हें धूप के वे टुकड़े ही मिल पाते थे, जिन्हें उनके शत्रु देवदार अपनी टहनियों से गुज़रने देते थे। अब तो, जब देवदार काट दिये गये, एस्प जंगल के राजा बन गये।

कुछ ही वर्षों में, जहां पहले देवदार का स्याह जंगल था, वहां हमें एस्प का चमकदार जंगल नज़र आता है।



लेकिन समय गुज़रता जाता है। और समय बड़ा कर्मी है। धीरे-धीरे, और इस तरह कि आरंभ में एकदम नज़र में आता ही नहीं, वह इस वन्य भवन का पुनर्निर्माण कर देता है। एस्प ऊंचे और ऊंचे होते चले जाते हैं और उनकी घनी फुनगियां लगातार पास आती चली जाती हैं। उनके तनों पर पड़नेवाली छाया, जो पहले मामूली-सी और चलती-फिरती थी, घनी और गहरी हो जाती है। एस्प देवदार के साथ अपनी लड़ाई जीतते हैं, लेकिन उनकी विजय ही उनकी मृत्यु का कारण बनती है।

अपनी छाया से कभी कोई आदमी नहीं मरता। फिर भी पेड़ के जीवन में ऐसा अकसर होता है। शाखदार एस्पों के नीचे छोटे और अशक्त नन्हे देवदार होते हैं। समयांतर में ये नन्हे शत्रु फिर जी उठते हैं। एस्प की गिरी हुई पत्तियों की मोटी चादर नीचे ज़मीन को गरम रखती है और जल्दी ही वह नन्हे देवदार के पत्रगुच्छों से भी ढक जाती है। बीस वर्षों में देवदार की चोटियां एस्पों की चोटियों तक पहुंच जाती हैं। जंगल हवादार, प्रकाशपूर्ण और मिला-जुला हो जाता है। एस्पों का हलका

हरा रंग देवदारों की काही नुकीली चोटियों से गुंथता जाता है। देवदार ऊंचे और ऊंचे होते चले जाते हैं और कुछ समय के बाद उनकी मोटी हरी सूइयां एस्पों पर छाया डालना शुरू कर देती है।

एस्पों का काल आ जाता है। देवदार की छाया में वे मुरझाने लगते हैं। देवदार जंगल के स्वामी बन जाते हैं। वे अपना पूर्व बल फिर प्राप्त कर लेते हैं।

आदमी और उसके कुल्हाड़े जब उनके जीवन में हस्तक्षेप करते हैं, तो जंगल इस तरह आपस में जूझते हैं।

लेकिन जब हिम-युग की सर्दी ने उनके जीवन में हस्तक्षेप किया, तो जंगलों की लड़ाई और भी प्रचंड हो गई।

ठंड ने ऊष्माप्रिय पेड़ों को मार दिया और उत्तर के जंगलों के लिए रास्ता खोल दिया। चीड़, देवदार और भुर्ज ने बांज और लिंडन के खिलाफ़ जंग का ऐलान कर दिया। बांज और लिंडन को पीछे हटना पड़ा, और इसमें उन्होंने सदाबहार पेड़ों में से बच रहे अंतिम पेड़ों – लॉरेल, मैग्नोलिया और अंजीर – को धकेल बाहर किया।

लाड़ में पले, ऊष्माप्रिय पेड़ सभी तरह की हवाओं और ठंड के लिए खुली, आश्रयहीन जगहों में ज़िंदा न रह सके और इसलिए विजेताओं के लिए जगह खाली करते हुए वे मर गये।

पहाड़ों में ही उन्हें अकेला आश्रय मिला। वहां हर संरक्षित घाटी में ऊष्माप्रिय पेड़ छिपे रहे। लेकिन फिर पर्वतीय चोटियों से और हिमनदियों ने उतरना शुरू कर दिया और वे अपने साथ-साथ पहाड़ी देवदारों और भुर्जों को ले आईं, जो उन पर छा गये।

जंगलों की यह लड़ाई हज़ारों साल चली। और पराजित सेना के अंतिम दस्ते, ऊष्माप्रेमी पेड़, लगातार दक्षिण की तरफ़ हटते चले गये।

लेकिन जब जंगल आक्रमणकारियों के खिलाफ़ लड़ाई में खेत रहे, तो उन जानवरों का क्या हुआ जो जंगलों में रहते थे?

आधुनिक समय में जब कोई जंगल आग से नष्ट हो जाता है, या काट दिया जाता है, तो उसके कुछ निवासी उसी के साथ खत्म हो जाते हैं, जबकि अन्य बच निकलते हैं। जब कोई देवदार वन काटा जाता है, तो उसके स्वाभाविक निवासी – विषमचंचु, स्वर्णचूड़ तथा अन्य पशु-ग़ायब हो जाते हैं।

छायादार देवदार वन में उनके घरों की जगह एक नये एस्प वन ने ले ली है। नये घर में अन्य पक्षियों और अन्य पशुओं ने बसेरा ले लिया है।

कई वर्षों के बाद, जब देवदार एस्पों को फिर परास्त कर देते हैं, तो नया देवदार वन खाली नहीं होता – वह फिर विषमचंचुओं, स्वर्णचूड़ों और उनके मित्रों से भर जाता है।

जंगल का मरण और पुनर्जन्म पेड़ों और जंतुओं के अनिश्चित संग्रह के रूप में नहीं, वरन एक एकीकृत, सूत्रबद्ध विश्व की तरह होता है।

हिमयुग में जो हुआ, वह भी यही था। जब उष्णकटिबंधीय वन लुप्त हुए, तो जंतु-जगत भी अदृश्य हो गया। भीमकाय हाथी ग़ायब हो गये, गैंडे और हिप्पोपोटैमस (दरियाई घोड़े) दक्षिण की ओर चले गये, और प्रागैतिहासिक मानव का सबसे बड़ा शत्रु – असिदंत व्याघ्र – अंततः समाप्त हो गया।

कितने ही छोटे जंतु और पक्षी भी मर गये या दक्षिण की ओर भाग गये।

और कुछ हो ही नहीं सकता था। हर जंतु अपनी नन्ही दुनिया से, अपने जंगल से बंधा होता है। जब यह वन-विश्व नष्ट होने लगा, तो इसने अपने कितने ही निवासियों को नष्ट कर दिया।

जब पेड़, झाड़ियां और ऊंची घासें सूख गईं, तो जो जंतु उनके नीचे छिपे रहते थे और उनसे पोषण पाते थे, उन्होंने अपने आपको बिना भोजन और आश्रय के पाया। लेकिन जब ये शांत शाकभक्षी जानवर मर गये, तो अन्य जंतु भी – वे मांसभक्षी जानवर, जो उन्हें खाया करते थे – भूखों मर गये।

"पोषण-चक्रों" में एक साथ बंधे पशु और पेड़-पौधे अपने जंगल के मरने पर सभी मर गये।

यह पुराने ज़माने जैसी ही बात थी कि जब जहाज़ डूबते थे, तो चप्पू चलानेवाले ग़ुलाम भी साथ ही डूब जाया करते थे, क्योंकि वे अपने चप्पुओं के साथ सांकलों से बंधे होते थे।

किसी न किसी प्रकार बच पाने के लिए जानवर के लिए अपनी ज़ंजीरों को तोड़ना आवश्यक था – जिस भोजन का वह आदी था, उसे उससे दूसरे प्रकार का भोजन जुटाना आरंभ करना था, उसे अपने पंजे और दांत बदलने थे और अपने को ठंड से बचाने के लिए लंबे बाल या समूर उगाना था। दूसरे शब्दों में, स्वयं जंतु को ही बदलना था।



हम जानते हैं कि पशु के लिए बदलना कितना कठिन है। घोड़े के इतिहास की और उसे हमारे परिचित सुम के रूप में पांव में एक ही उंगलीवाला जानवर बनने में कितने लाख वर्ष लगे, इसकी याद करो।

दक्षिणी जंतु के लिए उत्तरी वन में जीवित बच पाना बहुत कठिन था।

और मानो यही काफ़ी न हो, उत्तरी जंगलों के झबरे निवासी भी उनके साथ-साथ दक्षिण की ओर आने लगे। ये रोएंदार गैंडे, मैमथ, गुफावासी शेर और गुफावासी रीछ थे, जो सब-के-सब उत्तरी जंगलों में मज़े से रहते थे।

उनकी मोटी, बाल भरी चमड़ी ही उनकी सबसे बड़ी निधि थी। ठंड मैमथ और रोएंदार गैंडे का कुछ भी न बिगाड़ सकती थी, उनके गरम, झबरी खाल थी, लेकिन दक्षिणी हाथी, गैंडे और हिप्पोपोटैमस की बात बिलकुल उलटी थी।

कुछ उत्तरी पशुओं ने सरदी से बचने का एक अलग तरीक़ा निकाल लिया – वे गुफाओं में छिप गये।

उत्तरी पशुओं को नये जंगल में भोजन ढूंढ़ने में बहुत मेहनत न करनी पड़ती थी, क्योंकि यह उनका अपना वन था, यह उनकी अपनी दुनिया थी।

नष्ट हुए वनों के पशुओं को अब उत्तरी वनों के नये स्वामियों के साथ लड़ना पड़ा।

क्या अब भी यह समझाने की ज़रूरत है कि उनमें से इतने कम क्यों बच पाये?

लेकिन प्रागैतिहासिक मनुष्य? उसका क्या हुआ?

प्रागैतिहासिक मानव प्रकटतः बचनेवालों में ही था, क्योंकि, अगर वह भी खेत रहता, तो तुम यह पुस्तक न पढ़ते होते।

जो लोग गरम देशों में रहते थे, उन्हें जीने के लिए ठंड के खिलाफ़ लड़ना नहीं पड़ा, यद्यपि वहां भी जलवायु ठंडा हो गया था।

लेकिन उन मनुष्यों की हालत ज़्यादा खराब थी, जिन्होंने बढ़ती हिमनदियों के पूरे प्रकोप को झेला।

हर साल वे एक नई ही सर्दी का सामना करते। यह सर्दी भयानक थी। वे कांपते और ठंड से जमे जाते और अपने को और अपने बच्चों को गरम रखने के लिए वे एक साथ सटते जाते।

भूख, भयानक पाला और जंगली जानवर मानो उन्हें पूरी तरह ख़त्म करने पर ही तुले हुए थे।

अगर इन प्रारंभिक मनुष्यों को इस बात का ज्ञान होता कि उनके आसपास सभी जगह क्या हो रहा है, तो वे शायद यह मान लेते कि संसार का अंत आ गया है।



दुनिया का अंत

संसार के ख़ात्मे की कितनी ही बार भविष्यवाणी की जा चुकी है।

मध्ययुग में आकाश में अपनी लाल-लाल दुम छोड़ता कोई पुच्छल तारा गुज़र जाता तो लोग अपने पर सलीब का निशान बनाते और कहते:

"दुनिया का अंत निकट आ गया है।"

ताऊन की महामारी, जिसे "काली मारी" कहते थे, जब पूरे-के-पूरे शहरों और गांवों को खत्म कर देती और क़ब्रिस्तानों को भर देती, तो लोग कहते:

"दुनिया का अंत निकट आ गया है।"

लड़ाई और भुखमरी के मुसीबत भरे समयों पर अंधविश्वासी लोग घबराकर फुसफुसाते:

"दुनिया का अंत निकट आ गया है।"

लेकिन दुनिया फिर भी ख़त्म हुई नहीं।

अब हम जानते हैं कि आकाश में पुच्छल तारे के नज़र आने का लोगों के भविष्य से कोई सरोकार नहीं है। पुच्छल तारा सूर्य के चारों ओर अपने पथ पर



चला जा रहा है और उसे इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं है कि पृथ्वी पर अंधविश्वासी लोग उसे क्या समझते हैं।

हम यह भी जानते हैं कि भूख और महामारियों और लड़ाइयों तक का यह मतलब नहीं कि दुनिया का अंत निकट आ गया है। मुख्य बात विपदा का कारण जानना है। अगर कारण पता हो, तो आपदा पर पार पाना आसान हो जाता है।



लेकिन दुनिया के अंत की भविष्यवाणी केवल अज्ञानी और मूर्ख लोग ही नहीं करते। ऐसे वैज्ञानिक भी हैं, जो संसार और मानव-जाति के अंत की भविष्यवाणी करते हैं। उदाहरण के लिए, उनमें से कुछ कहते हैं कि मानव-जाति अंततः ईंधन की कमी से ख़त्म हो जायेगी। वे इसे यह कहकर सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि कोयले के भंडार लगातार क्षीण होते जा रहे हैं, जंगल उजड़ रहे हैं और पेट्रोलियम इतना कम है कि अगली कुछ सदियों से ज़्यादा वह नहीं चल सकेगा। जब धरती पर ईंधन नहीं रहेगा, कारख़ानों में मशीनें रुक जायेंगी, रेलगाड़ियां चलना बंद कर देंगी, सड़कों और घरों में बत्तियां बुझ जायेंगी। उनका कहना है कि अधिकांश लोग सर्दी और भूख से मर जायेंगे, और जो बच रहेंगे, वे फिर जंगली बर्बर मनुष्य बन जायेंगे।

ऐसा भविष्य तो सचमुच भयानक है!

लेकिन क्या यही सच है?

पृथ्वी के गर्भ में ईंधन के विराट भंडार हैं। कितने ही नये पेट्रोलियम और कोयला-क्षेत्र मिल रहे हैं और भी मिलेंगे।

जंगल केवल काटे ही नहीं जाते, हर साल नये लगाये भी जाते हैं।

लेकिन ईंधन के भंडार अगर किसी दिन ख़त्म भी हो जायें, तो क्या इससे हमारी जानी-पहचानी दुनिया सचमुच ख़त्म हो जायेगी?

नहीं, वह ख़त्म नहीं होगी।

क्योंकि ईंधन ही धरती पर प्रकाश और ऊर्जा का अकेला स्रोत नहीं है। ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य है। हमें कभी क्षण भर के लिए भी इस बात पर संदेह नहीं करना चाहिए कि हमारे ईंधन के भंडारों का अंत होते-होते मनुष्य सूर्य की ऊर्जा से रात के समय सड़कों पर और घरों में प्रकाश करना, रेलगाड़ियों और मशीनों को चलाना – यहां तक कि खाना पकाना भी सीख लेंगे। पहले प्रायोगिक सौर बिजलीघर और पहले सौर पाकगृह अस्तित्व में आ भी चुके हैं।

"ठहरो ज़रा," दुनिया को दफ़नाने की जिन्हें जल्दी है, वे कहते हैं, "आख़िर सूरज भी कभी ठंडा हो ही जायेगा। यह इतना गरम और तेजस्वी नहीं है, जितने कि कुछ नये सितारे हैं। लाखों-करोड़ों वर्ष बीत जायेंगे, सूर्य का ताप गिर जायेगा और धरती ठंडी हो जायेगी।

"बड़ी-बड़ी हिमनदियां मनुष्य की बनाई कमज़ोर इमारतों को दुनिया के चेहरे पर से मिटा देंगी। उष्णकटिबंधीय देशों में बर्फ़ानी रीछ घूमा करेंगे। तब लोग ज़िंदा हरगिज़ नहीं बच पायेंगे।"

इसमें कोई शक नहीं, अगर कोई नया हिमयुग आ गया, तो ज़िंदगी बड़ी मुश्किल हो जायेगी। लेकिन प्रागैतिहासिक मानव तक इतनी बर्फ़ में ज़िंदा बच गया था! तो फिर भविष्य के लोग (जिनकी सेवा में आज की अपेक्षा कहीं उन्नत विज्ञान होगा) बर्फ़ में क्यों मर जायेंगे?

हम तो आज यह भविष्यवाणी तक कर सकते हैं कि वे सर्दी पर पार पाने के लिए क्या-क्या करेंगे। वे सूर्य की ऊर्जा की अनुपूर्ति के लिए पारमाण्विक ऊर्जा का उपयोग करेंगे।

और पदार्थ के नाभिकों में जितनी पारमाण्विक ऊर्जा है, उसकी कभी इति नहीं होगी। अकेली समस्या उसे निरापद ढंग से मुक्त करने की है।

लेकिन बस, अब हमें अति सुदूर भविष्य को छोड़ देना चाहिए और सुदूर अतीत की तरफ़, प्रागैतिहासिक मानव के पास लौट आना चाहिए।

दुनिया का आरंभ

अगर मनुष्य ने अपने को प्रकृत वन से बांधनेवाली ज़ंजीरों को न तोड़ा होता, तो जंगल की दुनिया के नाश के साथ उसका भी ख़ात्मा हो जाता।

लेकिन दुनिया ख़त्म नहीं हो रही थी, वह बस, बदल भर रही थी। पुरानी दुनिया का अंत हो रहा था और एक नई दुनिया का आरंभ हो रहा था।

इस नई, बदली हुई दुनिया में ज़िंदा बच पाने के लिए आदमी को ख़ुद बदलना पड़ा। वह जिस भोजन को खाने का अभ्यस्त था, वह ग़ायब हो गया; उसे नये और अलग तरह के खाने को प्राप्त करना सीखना पड़ा। चीड़ और देवदार के फल उसके दांतों के लिए बहुत कड़े थे और दक्षिणी वनों के नरम और रसभरे फलों से एकदम भिन्न थे।



गरम दिन ठंडे हो गये। सूरज जैसे धरती को भूल ही गया और लोगों को उसके गरम और तेज़ प्रकाश के बिना रहना सीखना पड़ा।

उन्हें भरसक जल्दी बदलना था!

सभी जीवित प्राणियों में अकेला प्रागैतिहासिक मानव ही जल्दी बदलने योग्य था।

अब तक उसने अपने आपको इस तरह बदलना सीख लिया था कि जिस तरह कोई और जंतु नहीं बदल सकता था।

मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु असिदंत व्याघ्र अचानक एक लंबी, बालदार खाल नहीं चढ़ा सकता था, लेकिन मनुष्य ऐसा कर सकता था—इसके लिए उसे बस, एक भालू को मारना और उसकी खाल उतारना भर था।

असिदंत व्याघ्र आग नहीं जला सकता था, मगर आदमी जला सकता था, क्योंकि वह आग के उपयोग से परिचित हो चुका था।

प्रागैतिहासिक मानव इतनी प्रगति कर चुका था कि अपने को बदल सकता था और प्रकृति को सुधार सकता था।

और यद्यपि तब से कई हजार वर्ष बीत चुके हैं, हम आज भी देख सकते हैं कि प्रागैतिहासिक मानव ने प्रकृति में क्या परिवर्तन किया और वह स्वयं किस तरह बदला।

पत्थर के पृष्ठोंवाली पोथी

हमारे पैरों के नीचे की पृथ्वी एक विशाल ग्रंथ की तरह है।

पृथ्वी की पपड़ी की हर परत, निक्षेपों की हर परत इस ग्रंथ का एक-एक पृष्ठ है।

हम इन पृष्ठों के सबसे ऊपरी और अंतिम पृष्ठ पर रहते हैं। सबसे पहले पृष्ठ महासागरों की तली को छूते हैं, वे समुद्र की तली और महाद्वीपों के आधार के नीचे बहुत गहराई पर हैं।

आधुनिक मनुष्य इन पृष्ठों तक, इस पोथी के प्रारंभिक अध्यायों तक अभी नहीं पहुंच पाया है। हम केवल अनुमान ही कर सकते हैं कि वहां क्या लिखा हुआ है।

लेकिन पृष्ठ ऊपरी सिरे के जितने पास हैं, हमारे लिए इस पुस्तक को पढ़ना उतना ही सरल है।

लावा की उष्ण धाराओं से झुलसे और विकृत हुए कुछ पृष्ठ हमें बताते हैं कि पर्वतमालाएं क्योंकर पृथ्वी की सतह पर उभरीं। अन्य पृष्ठ हमें यह बताते हैं कि धरती की पपड़ी महासागरों को उनके तटों से धकेलती और फिर वापस लाती हुई किस प्रकार उठी और गिरी।

कुछ पृष्ठों की परतें ऐसी सफ़ेद हैं जैसे समुद्री शंख – जिनसे वे सचमुच बनी हैं। कुछ पृष्ठ कोयले जैसे काले हैं।

और ये सचमुच कोयले के ही बने हैं। इसकी काली राशि हमें उन विशाल वनों की कहानी बताती है, जो कभी धरती पर छाये हुए थे।

किसी पुस्तक में चित्रों की ही भांति, जहां-तहां हमें किसी पत्ती का छापा या किसी पशु का कंकाल मिल जाता है, जो उस झुरमुट में रहा करता था, जो बाद में कोयला बन गया।

और इस तरह एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ पर जाते हुए हम पृथ्वी के पूरे इतिहास को पढ़ सकते हैं। और किताब के बिलकुल ऊपरी छोर पर एकदम अंतिम पृष्ठों में ही हम अंत में एक नये नायक – मनुष्य – तक आते हैं। शुरू में तो ऐसा लग सकता है कि वह इस विशाल ग्रंथ का मुख्य पात्र है ही नहीं, क्योंकि भीमकाय प्रागैतिहासिक हाथी या गैंडे के सामने वह अत्यंत क्षुद्र लगता है। लेकिन जैसे-जैसे हम आगे पढ़ते जाते हैं, हम देखते हैं कि हमारा नया नायक साहस प्राप्त करता जाता है और पहले स्थान पर आ जाता है।

फिर ऐसा समय आता है, जब मनुष्य पुस्तक का केवल मुख्य पात्र ही नहीं, उसका एक लेखक भी बन जाता है।

देखो, यहां, एक नदीतटीन कगार में, हिमयुग के निक्षेपों में, हम एक सुस्पष्ट बनी काली रेखा पाते हैं।

यह काली लकीर काठकोयले ने बनाई थी। काठकोयले की एक परत भला रेत और मिट्टी के बीच अचानक कहां से आ गई? शायद यह जंगल की आग से आई हो?

लेकिन जंगल की आग जली लकड़ी भरा एक बड़ा क्षेत्र छोड़ती है, जबकि काठकोयले की यह रेखा बहुत ही छोटी है। काठकोयले की इतनी छोटी परत खुले में जले अलाव से ही बन सकती थी।

और केवल आदमी ही अलाव जला सकता था।

इसके अलावा, आग के पास ही हम कार्यरत मनुष्य के हाथों के अन्य चिह्न भी पाते हैं — चकमक पत्थर के औज़ार और शिकार में मारे गये जानवरों की टूटी हुई हड्डियां।

आग और शिकार ही दो चीज़ें थीं, जिनसे प्रागैतिहासिक मानव ने हिम के आक्रमण का उत्तर दिया।

मनुष्य जंगल को छोड़ता है



उत्तर के निष्ठुर वनों में प्रागैतिहासिक मनुष्य को मुश्किल से ही कोई भोजन मिलता था। और इसलिए उसने जंगलों में ऐसे शिकार की खोज में भटकना शुरू किया, जो किसी एक जगह इस तरह नहीं पड़ा रहता था कि कोई आये और उसे उठा ले, वरन जो भाग जाता था, छिप जाता था और सामना करता था।

गरम देशों तक में मनुष्य अपने भोजन में मांस को अधिकाधिक शामिल करता गया।

मांस अधिक पुष्टिकर था, मांस मानव को अधिक शक्ति देता था और काम के लिए अधिक समय रहने देता था। और मनुष्य का वर्धनशील मस्तिष्क अधिक पोषक आहार का तक़ाज़ा करता था।

मनुष्य के औज़ार जितने सुधरते गये, शिकार उसके लिए उतना ही अधिक महत्वपूर्ण होता गया।

अगर दक्षिण में शिकार के बिना काम चल सकता था, तो उत्तर में उसके बिना बच पाना असंभव था।

मनुष्य अब छोटे-छोटे जंतुओं से अपनी भूख नहीं बुझा सकता था। उसे बड़े शिकार की ज़रूरत थी। गहरी हिमराशियां, बर्फ़ीली आंधियां और ठंड उत्तरी वनों में शिकार को कठिन बना देती थीं। और इसका मतलब था कि मनुष्य को मांस का भंडार रखना पड़ता था।

प्रागैतिहासिक मानव किस प्रकार के पशुओं का शिकार करता था?

जंगल में तब अनेक बड़े-बड़े पशु रहा करते थे। खुली जगहों में हिरन चरा करते थे। जंगली सूअर जंगल में ज़मीन खोदा करते थे। लेकिन मैदानों में कहीं अधिक बड़े पशु थे। जंगली, झबरे घोड़ों के झुंड के झुंड विराट खुले मैदानों में चरा करते थे। गाय-बैल जैसे कूबड़वाले बाइसन नामक जानवरों के झुंड धरती को कंपित करते तेज़ चाल से दौड़ते चले जाते थे। बड़े-

बड़े बालोंवाले भीमकाय मैमथ चलते-फिरते पहाड़ों की तरह धीरे-धीरे चले जाते थे।

जहां तक प्रागैतिहासिक मानव का सवाल था, उसके लिए यह सब जाता हुआ, बचकर भागता हुआ मांस था, उसे पीछा करने के लिए उकसानेवाला लालच था।

और इसलिए अपने शिकार की खोज में प्रागैतिहासिक मानव ने अपने पैतृक वनों को छोड़ दिया।

मनुष्य के छोटे-छोटे गिरोह मैदानों में अधिकाधिक दूर जाने का साहस करने लगे। हमें उनके अलावों और शिकार के पड़ावों के चिह्न जंगलों से बहुत दूर-दूर ऐसी जगहों में मिलते हैं, जहां बिनाई करनेवाला मनुष्य न पहले कभी रहा था, और न ही रह सकता था।

शब्द को सही तरीक़े से पढ़ो

शिकार में मारे गये जानवरों की हड्डियां प्रागैतिहासिक मानव के पड़ावों पर अब तक मिल सकती हैं। इनमें घोड़ों की पीली पड़ी पसलियां, बैलों की सींगदार खोपड़ियां और जंगली सूअरों के वक्र दांत भी हैं। कभी-कभी हड्डियों के बड़े-बड़े अंबार मिलते हैं, जिसका मतलब सिर्फ़ यह हो सकता है कि मनुष्य लंबे अरसे तक एक ही जगह पर रुका रहा था।

सबसे दिलचस्प बात यह है कि बाइसनों, जंगली सूअरों और घोड़ों की हड्डियों में वैज्ञानिकों को कभी-कभी मैमथों की विशाल हड्डियां भी मिल जाती हैं – बड़ी-बड़ी खोपड़ियां, लंबे, वक्र बाहरी दांत, कद्दूकश जैसे भीतरी दांत और बड़ी-बड़ी टांगें, जिन्हें देहों से काट लिया गया था।

ऐसे भीमकाय जानवर को मारने के लिए सचमुच बड़ी ताक़त और हिम्मत चाहिए थी। लेकिन इसकी देह को टुकड़ों में काटने और फिर उन्हें पड़ाव तक घसीट ले जाने के लिए और भी ज़्यादा ताक़त चाहिए थी।

हर टांग लगभग एक-एक टन की थी और खोपड़ी तो इतनी बड़ी थी कि आदमी उसमें आसानी से समा सकता था।

विशेष हाथीमार बंदूक़ों से लैस आज के शिकारी भी मैमथ को मारना आसान नहीं पायेंगे। लेकिन प्रागैतिहासिक मानव के पास कोई बंदूक़ न थी। उसके पास तो बस चकमक का चाक़ू और चकमक का दोहरे फलवाला भाला ही था।

जो हज़ारों साल बिनाई करनेवाले मनुष्य को शिकारी से अलग करते हैं, उनके दौरान चकमक के औज़ार बदलकर ज़्यादा अच्छे और अलग-अलग तरह के हो गये।

प्रागैतिहासिक मनुष्य चकमक का चाक़ू या फल इस तरह बनाता था। पहले वह पत्थर की ऊपरी परत तोड़ लेता था। इसके बाद वह उभारों को बराबर करता था और परत को चिपटियों में तोड़ लेता था। अंत में वह इन चिपटियों से अपनी ज़रूरत के काटनेवाले औज़ार बना लेता था।

चकमक जैसी अनुपयुक्त और दुसाध्य चीज़ से चाक़ू बना पाने के लिए बहुत समय और बड़ी निपुणता दरकार थी। यही कारण है कि प्रागैतिहासिक मानव अपने बनाये चकमक के औज़ार का उपयोग करने के बाद उसे फेंक नहीं देता था, वरन उसे बहुत संभालकर रखता था और जब भी वह भोथरा हो जाता था, उसे तेज़ करता था। मनुष्य अपने औज़ारों को इसलिए मूल्यवान समझता था कि वह खुद अपने श्रम और समय की क़दर करता था।

लेकिन वह कुछ भी क्यों न करता, उसका पत्थर पत्थर ही रहता। मैमथ जैसे पशु से सामना होने पर चकमक के दोहरे फलवाला भाला एक बेकार हथियार हो जाता। मैमथ की मोटी चमड़ी उसे इस्पात की चादर की तरह बचाकर रखती थी।

फिर भी प्रागैतिहासिक मनुष्य मैमथों को मारता ही था। इसका प्रमाण हमें विभिन्न पड़ावों पर मिली मैमथ की खोपड़ियों और बाहरी दांतों से मिलता है।

आदिम-मानव किस प्रकार मैमथ पर हमला करता था? इसे वही समझ सकता है, जो "आदमी" शब्द का मतलब समझता है, "आदमी" से मतलब "आदमी" नहीं, बल्कि "लोग"। औज़ार बनाना, शिकार करना, आग जलाना, आश्रयस्थल बनाना और ज़मीन को जोतना सीखने के लिए एक अकेले आदमी ने नहीं, बल्कि लोगों ने अपने हाथ और दिमाग़ एक साथ लगाये। अकेले आदमी ने नहीं, बल्कि पूरे मानव समाज ने करोड़ों लोगों के श्रम से संस्कृति और विज्ञान का निर्माण किया।

एक आदमी अकेला सदा जंगली जानवर ही बना रहता।

मानव समाज के भीतर श्रम ने जानवर को मनुष्य में परिणत कर दिया।

ऐसी किताबें हैं, जिनमें प्रागैतिहासिक शिकारी को एक प्रारंभिक रॉबिंसन के रूप में चित्रित किया गया है, जिसने कड़ी मेहनत करते-करते अंत में स्वयं बड़ी प्रगति कर ली।

लेकिन अगर प्रागैतिहासिक मनुष्य ऐसा ही साधु होता और अगर सबसे प्रारंभिक मनुष्य बड़े-बड़े गिरोहों में नहीं, परिवारों में रहते, तो वे कभी लोग नहीं बन सकते थे और मानव संस्कृति का कभी निर्माण नहीं कर सकते थे।

और रॉबिंसन क्रूसो का हाल भी वैसा नहीं था, जैसा डेनियल डेफ़ो ने उसे दिखाया है। डेफ़ो ने अपनी पुस्तक एक जहाज़ी की सच्ची जीवन-गाथा के आधार पर लिखी थी, जिसने एक जहाज़ पर बग़ावत भड़काई थी। उसे महासागर के बीच एक छोटे-से निर्जन टापू पर मरने के लिए छोड़ दिया गया था। कई वर्षों के बाद कुछ समुद्री यात्री उस टापू पर आये और उन्हें यह आदमी बिलकुल जंगली जैसा मिला। बूढ़ा मल्लाह बोलना तक लगभग भूल चुका था और मनुष्य की अपेक्षा जंगली जानवर जैसा ही अधिक लगता था। अगर आधुनिक मनुष्य भी अकेलेपन में आदमी बने रह पाना आसान नहीं पाता, तो प्रागैतिहासिक मनुष्य का तो कहना ही क्या!

जिस अकेली चीज़ ने उन्हें लोग बनाया, वह यह थी कि वे साथ-





साथ रहते थे, साथ-साथ शिकार करते थे और साथ-साथ अपने औज़ार बनाते थे।

पूरा-का-पूरा मानव यूथ मैमथ को घेरने में भाग लेता था। एक नहीं, बल्कि दर्जनों दोहरे फलवाले भाले उसकी बाल भरी बग़लों पर फेंके जाते थे। अनेक पैरों और अनेक हाथोंवाले एक प्राणी की तरह मानव यूथ जानवर का पीछा करता था। केवल दर्जनों हाथों को ही नहीं, बल्कि दर्जनों दिमाग़ों को भी साथ-साथ काम करना होता था।

मैमथ मनुष्यों से कई गुना बड़ा और शक्तिशाली था, मगर लोग उससे ज़्यादा चतुर थे।

मैमथ इतना विशालकाय था कि आदमी को आसानी से कुचलकर मार सकता था। लेकिन प्रागैतिहासिक मनुष्य ने उसके भार का ही उसके ख़िलाफ़ उपयोग किया और उस दैत्य को जीत लिया, जिसके चलते समय धरती थर्राया करती थी।

मैमथ को घेर लेने के बाद शिकारी लोग सूखी घास में आग लगा देते थे। जानवर आग से आतंकित हो जाता था, उसकी झबरी खाल झुलसने और धुआं देने लगती थी और वह भागने लगता था। आग उसका पीछा करती और बिलकुल शिकारियों की चतुर योजना के अनुसार आग उसे सीधे एक दलदल की तरफ़ भगा देती थी। दलदल में वह धंसने लगता। दलदल से एक-एक पैर को खींचने की कोशिश करते हुए वह बेतरह चिंघाड़ता। पर इससे वह और भी गहरा धंसता चला जाता।

और तब शिकारी उसका खात्मा करने के लिए उस पर टूट पड़ते।

मैमथ को घेरना और मारना कोई आसान काम न था। लेकिन इससे भी मुश्किल उसे पड़ाव तक घसीटकर लाना था, जो आम तौर पर नदी के ऊंचे सूखे तट पर होता था। नदी लोगों को पीने का पानी देती थी, जबकि उसके कगारों और तटों से लोगों को पत्थर मिलता था – उनके सभी औज़ारों की मुख्य सामग्री।

अब उन्हें मैमथ को दलदल से नदी के ऊंचे किनारे पर ले जाना होता था।

यहां भी दो नहीं, बल्कि दर्जनों हाथ जुट जाते थे। लोग अपने तेज़ फलवाले चकमकों को उपयोग बड़े सब्र के साथ मैमथ की मोटी चमड़ी, सख़्त नसों और विशाल पेशियों को काटने और अलग करने के लिए करते। ज़्यादा अनुभववाले बूढ़े शिकारी नौजवान शिकारियों को दिखाते कि खोपड़ी और टांगों को कहां देह से अलग करना चाहिए। आख़िर, देह के टुकड़ों-टुकड़ों में कट जाने के बाद लंबी चढ़ाई शुरू होती।

काम को तेज़ी से चलाने के लिए एक तरह की धुन निकालते हुए वे कोई बड़ी बालदार टांग या ज़मीन से रगड़ खाती सूंड सहित सिर को घर घसीटकर लाने के लिए बड़े-बड़े दलों में बंट जाते।

आख़िर थकान से निढाल वे पड़ाव पहुंच ही जाते। फिर क्या आनंद मनाया जाता था! वे जानते थे कि मैमथ एक असली दावत है – एक ऐसी

दावत, जिसका वे इतने लंबे समय से इंतज़ार कर रहे थी। वे जानते थे कि मैमथ का मतलब है कई – बहुत सारे – दिनों के लिए भोजन का भंडार।

प्रतियोगिता का अंत

अन्य पशुओं के साथ मनुष्य की प्रतियोगिता ख़ात्मे पर आ गई थी – सभी पशुओं में से सबसे बड़े को जीतकर वह विजय रेखा पर पहुंचनेवाला सबसे पहला था।

धरती पर लोगों की संख्या तेज़ी से बढ़ने लगी। हर सहस्राब्दी और हर शताब्दी के साथ धरती पर अधिकाधिक मनुष्य होते गये, यहां तक कि अंत में, दुनिया के हर भाग में ही मनुष्य रहने लगे।

मानव जाति के साथ जो हुआ वह अन्य पशुओं में से किसी के भी साथ कभी नहीं हो सकता था।

मिसाल के लिए, क्या ख़रगोश आदमियों जितने बहुसंख्यक हो सकते हैं?

निस्संदेह नहीं। क्योंकि जैसे ही ख़रगोशों की संख्या में बड़ी वृद्धि होती, भेड़ियों की संख्या में भी बहुत बढ़ती हो जाती और भेड़िये इस बात को सुनिश्चित कर लेते कि आसपास बहुत ख़रगोश न बच रहें।



इसलिए जंगली जानवरों की संख्या बेहिसाब बढ़ती नहीं जा सकती। एक सीमा ऐसी है, जिसे पार करना उनके लिए बहुत कठिन है।

मनुष्य कभी का उन सीमांतों और परिसीमनों से निकल चुका है, जो प्रकृति ने उस जैसे जंतुओं के लिए स्थापित की थीं। जब वह औज़ार बनाना सीख चुका, तो वह ऐसे खाद्य खाने लगा, जो उसने पहले कभी नहीं खाये थे, और इस प्रकार उसने प्रकृति को अपने प्रति अधिक उदार होने के लिए विवश किया। उन जगहों में, जहां पहले एक ही मानव यूथ भोजन पाने की जुगत करता था, जल्दी ही दो या तीन मानव यूथों का रह पाना संभव हो गया।

और फिर, जब उसने बड़े पशुओं का शिकार करना शुरू किया, तो उसने सीमांतों को और भी दूर धकेल दिया।

अब मनुष्य के लिए दिन भर खाने के पौधों की तलाश करते रहने की आवश्यकता नहीं रही। बाइसन, घोड़े और मैमथ उसके लिए उसकी चराई का काम कर दिया करते थे। इन चौपायों के झुंड स्तेपियों में ढेरों घास खाते विचरण करते थे। दिन-प्रतिदिन, वर्ष-प्रतिवर्ष वे टनों घास को सेरों मांस में परिणत करते हुए वज़न में बढ़ते चले जाते थे। और जब आदमी किसी बाइसन या मैमथ को मारता, तो वह शक्ति तथा ऊर्जा के एक ऐसे भंडार का स्वामी बन जाता, जो कई वर्षों के दौरान बना था।

शक्ति के इन भंडारों की उसे बड़ी ज़रूरत थी, क्योंकि आंधी या बर्फ़ीले तूफ़ान या कड़ी ठंड में वह शिकार पर नहीं जा सकता था। वह समय बीत चुका था जब सर्दी-गरमी दोनों में मौसम ख़ुशगवार रहता था।

फिर भी एक परिवर्तन दूसरा परिवर्तन लाया।

अगर आदमी भोजन का भंडार रखने लगा, तो इसका यह मतलब था कि उसे एक ही जगह पर ज़्यादा समय तक रहना पड़ता था। आखिर, वह कोई मैमथ की लाश लादे-लादे तो घूम नहीं सकता था!

जमकर रहने के उसके पास और भी कारण थे। पुराने ज़माने में हर पेड़ रात भर के लिए उसका बसेरा बनकर उसे जंगली जानवरों से बचाता रहता था। अब वह इन जानवरों से इतना नहीं डरता था। लेकिन उसका एक नया शत्रु आ गया था – जाड़ा।

मनुष्य को अपने को ठंड और बर्फ़ीली आंधियों से बचाने के लिए एक विश्वसनीय आश्रय की आवश्यकता थी।

मनुष्य अपनी दुनिया बनाता है

आखिर वह समय आ गया जब मनुष्य ने अपने चारों तरफ़ की बड़ी ठंडी दुनिया के बीचोंबीच खुद अपनी नन्ही और गरम दुनिया बनाना शुरू कर दिया। कहीं किसी गुफा के मुंह पर या किसी खड़ी चट्टान के बाहर निकले छोर के नीचे उसने वर्षा, बर्फ़ और हवा को बाहर रखने के लिए टहनियों का और पशुओं की खाल का आकाश बनाया। अपनी नन्ही-सी दुनिया के बीच में उसने एक सूरज जलाया, जो रात में चमकता था और सर्दियों में उसे गरमाता था।

कुछ प्रागैतिहासिक शिकारियों के पड़ावों की स्थलियों पर अभी तक डेरों की बल्लियों के गड्ढों के चिह्न है। बल्लियों के घेरे के केंद्र में झुलसे हुए पत्थर हैं, जो कभी प्रागैतिहासिक मानव के कृत्रिम सूर्य, चूल्हे को घेरे हुए थे।

डेरे की दीवारें कभी की धूल बन चुकी हैं, लेकिन हम बिलकुल ठीक तरह से जानते हैं कि वे कहां खड़ी थीं। नन्ही दुनिया के भीतर की ज़मीन की पूरी ही सतह हमें उन मनुष्यों की कहानी बताती है, जिन्होंने उसका निर्माण किया था।

चकमक के चाक़ू और खुरचनियां, चकमक के टुकड़े और छिपटियां, जानवरों की टूटी हुई हड्डियां, कोयला और चूल्हे की राख – ये सब रेत और मिट्टी के साथ मिलकर एक ऐसे मिश्रण में मिली हुई हैं, जो तुम्हें प्रकृति में कभी नहीं मिलेगा।

जैसे ही हम कबके विलुप्त डेरों की अदृश्य दीवारों के बाहर कुछ क़दम रखते हैं, हमें मानव उद्यम की याद दिलानेवाली हर चीज़ ग़ायब हो जाती है। अब ज़मीन में दबे औज़ार नहीं हैं, चूल्हे से निकले कोयले और राख नहीं है, जानवरों की टूटी हुई हड्डियां नहीं हैं।

इस तरह मनुष्य द्वारा निर्मित एक दूसरे ही प्रकार की प्रकृति एक अदृश्य रेखा द्वारा अपने आसपास की हर चीज़ से अलग है।

कार्यरत मानव के हाथों के चिह्नों की खोज में जमीन को खोदते हुए, चकमक के चाकुओं और खुरचनियों की जांच करते हुए और हज़ारों साल से ठंडे पड़े किसी चूल्हे के कोयलों को अलग करते हुए हम इस बात को एकदम स्पष्टतापूर्वक देख लेते हैं कि पुरानी दुनिया का अंत मानव-जाति का अंत नहीं था, क्योंकि मनुष्य ने अपने लिए एक विशेष छोटी-सी दुनिया का निर्माण कर लिया था।





अतीत की पहली यात्रा

बाइसन और मैमथ के शिकारियों के पड़ावों में पाये जानेवाले औज़ारों में चकमक के दो औज़ार सबसे ज़्यादा मिलते हैं – एक बड़ा और आकार में तिकोना है, उसे दो तरफ़ से तेज किया गया है ; दूसरा – तेज किनारोंवाला और अर्ध-गोलाकार।

इन औजारों में से प्रत्येक प्रकटतः विशिष्ट कामों के लिए बनाया गया था, अन्यथा उनकी सूरत-शक्ल में इतना अंतर न होता।

हम यह कैसे जान सकते हैं कि इनमें से प्रत्येक किस-किस काम के लिए था? औज़ारों को देखने के बाद, औज़ारों की जांच करने के बाद हम इसका कुछ अनुमान कर सकते हैं।

फिर भी, सबसे अच्छा यही रहता कि हम पाषाण युग में वापस चले जाते और देखते कि प्रागैतिहासिक मानव अपने पत्थर के औज़ारों से किस तरह काम किया करते थे।

उपन्यासों में हमें अकसर इस तरह का वाक्य मिल जाया करता है – "चलिये, दस वर्ष पीछे आ जायें।" ऐसी पुस्तक के लेखक के लिए यह बायें हाथ का खेल होता है, क्योंकि वह जब और जहां चाहे, लौट सकता है। अपने पात्रों के बारे में भी वह हर तरह की कहानी गढ़ सकता है।

लेकिन अपनी अत्यंत यथार्थतापूर्ण कहानी में हम क्या करें? हमें यहां कुछ भी गढ़ने का अधिकार नहीं है। फिर, जब पीछे की तरफ़ जाते हैं, तो हमें एक-दो नहीं, दसियों हज़ार साल पीछे जाना पड़ता है!

फिर भी, हम पाषाण युग में जा सकते हैं।

अगर तुम ऐसा करना चाहो, तो तुम्हें ऐसी लंबी यात्रा के लिए ज़रूरी सारा साज़-सामान जुटाना होगा। सबसे पहले तो तुम्हारे पास किरमिच का तंबू होना चाहिए, जो तह करने पर पीठ पर लादने के थैले में आ सके। इसके अलावा तंबू की बल्लियां, रस्सियों को बांधने के खूंटे और खूंटों को गाड़ने के लिए एक छोटा हथौड़ा भी होना चाहिए। तुम्हें ढेरों और चीज़ों की भी ज़रूरत होगी – धूप से अपने सिर को बचाने के लिए एक टोप, एक पतीला, एक स्टोव, एक मग, एक छुरी, एक चम्मच और एक कांटा, एक क़ुतुबनुमा और एक नक़्शा। जब तुम अपना सारा सामान बांध चुको और अपनी बंदूक़ ले लो (क्योंकि पाषाण युग में भोजन के लिए शिकार किये बिना नहीं जिया जा सकता), तो जाओ, और समुद्री जहाज़ का एक टिकट खरीद लो।



मगर टिकट बेचनेवाले से यह न कहना कि तुम पाषाण युग जा रहे हो। अगर तुमने ऐसा किया, तो हो सकता है कि वह समझ ले कि तुम पगला गये हो और डाक्टर को बुला भेजे, और तुम जहाज़ पर नहीं, बल्कि पागलखाने में पहुंच जाओ।

तुम्हारे टिकट पर यह नहीं लिखा होगा – "पाषाण युग की वापसी यात्रा"।



तुम्हारा टिकट एकदम सामान्य होगा, जिस पर तुम्हारे गंतव्य स्थान की जगह "मेलबोर्न" लिखा होगा।

टिकट जेब में आते ही तुम आस्ट्रेलिया जानेवाले जहाज़ पर सवार हो सकते हो। कुछ ही सप्ताह में तुम मेलबोर्न पहुंच जाओगे।

बात यह है कि धरती पर अभी तक ऐसी जगहें हैं, जहां लोग पत्थर के औज़ारों से काम करते हैं। इसका मतलब है कि दूरत्व की यात्रा काल की यात्रा का स्थान ले सकती है। वैज्ञानिक जब यह जानना चाहते हैं कि सुदूर अतीत में लोग किस तरह रहा करते थे, तो वे यही करते हैं।

आस्ट्रेलिया में ऐसे आदिवासी हैं, जो अभी तक पत्थर के औज़ारों का इस्तेमाल करते हैं। हम यह जानने के लिए कि वे इन औज़ारों का किस प्रकार उपयोग करते हैं, इन्हीं लोगों के पास जा रहे हैं।

जगह-जगह कांटेदार झाड़ियों से भरे सूखे और निर्जन स्तेपी को पार करके हम आस्ट्रेलियाई शिकारियों के पड़ावों पर पहुंचेंगे। नदी के किनारे पेड़ों के झुरमुट के नीचे हम उनके छाल और डालियों के बने डेरों के पास पहुंच जाएंगे।

डेरों के पास बच्चे धमा-चौकड़ी मचा रहे हैं, जबकि पास ही जमीन पर पालथी मारे बैठे पुरुष-औरतें काम कर रहे हैं। झबरे केशों और लंबी दाढ़ीवाला एक बूढ़ा शिकार में मारे कंगारू की खाल उतार रहा है। बूढ़ा चकमक के एक तिकोने छुरे का इस्तेमाल कर रहा है। अरे, यह तो चकमक का बिलकुल वैसा ही बड़ा औज़ार है, जिसके बारे में जानने के लिए हम इस लंबी यात्रा पर निकले हैं!

पास ही एक औरत चकमक के लंबे और पतले टुकड़े से कपड़ों के लिए खाल काट रही है। और फिर हम एक जानी-पहचानी चीज़ को देखते हैं: ठीक ऐसी ही लंबी और पतली छुरियां यूरोप में प्राचीन शिकारियों के पड़ावों में भी मिली हैं।

ठीक है, आस्ट्रेलिया के आदिवासी प्रागैतिहासिक लोग नहीं हैं। हज़ारों ही पीढ़ियां उन्हें उनके प्रागैतिहासिक पूर्वजों से अलग करती हैं। उनके पत्थर के औज़ार अतीत के एक सामान्य अवशेष हैं। लेकिन अतीत के ये अवशेष हमारी कितनी ही पहेलियों को हल कर सकते हैं। आस्ट्रेलियाई आदिवासियों को काम करते देखते हुए हमारे ध्यान में यह बात आती है कि चकमक का बड़ा तिकोना टुकड़ा आदमी का औज़ार है, शिकारी का औज़ार है, जिससे वह फंदे में पड़े हुए या घायल जानवर को मारता है, उसे चीरता है और उसकी खाल उतारता है।

औज़ारों में श्रम के विभाजन का मतलब है कि पाषाण युग के शिकारियों के समय से लेकर लोगों में भी श्रम का विभाजन था।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, अलग-अलग प्रकार के कामों की जटिलता बढ़ती चली गई। उन सबको करने के लिए कुछ लोगों को एक प्रकार का काम करना पड़ता, तो औरों को और प्रकार का। जब पुरुष शिकार पर गये हुए होते, तो औरतें चूल्हों के पास खाली न बैठा करतीं। वे नये डेरे बनातीं, जानवरों की खालों से पोशाकें काटतीं, खाने योग्य मूल इकट्ठा करतीं और खाने के भंडार बनातीं।

लेकिन श्रम का एक और भी विभाजन था – बूढ़े और तरुण लोगों के श्रम का।

हज़ार-वर्षीय स्कूल

हर काम को करने का कौशल होना चाहिए, और यह आसमान से नहीं टपकता। जानकारी, ज्ञान ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें औरों से प्राप्त किया जाता है।

अगर हर बढ़ई को कुल्हाड़े, आरे और रंदे की ईजाद करने और फिर उनका उपयोग कैसे हो, इसका पता लगाने के साथ शुरूआत करनी पड़ती, तो दुनिया में एक भी बढ़ई न होता।

अगर, भूगोल पढ़ने के लिए हममें से प्रत्येक को पहले दुनिया का चक्कर लगाना पड़े, अमरीका को फिर खोजना पड़े, अफ़्रीका का अनुसंधान करना पड़े, एवरेस्ट पर चढ़ना पड़े, हर अंतरीप और स्थलडमरूमध्य को जाकर गिनना पड़े, तो हम चाहे हज़ार साल जी लें, तो भी सबके लिए काफ़ी समय हमारे पास नहीं होगा।

हम जितना आगे बढ़ते जाते हैं, हमें उतना ही अधिक सीखना पड़ता है। हर नई पीढ़ी को अपने से पहली पीढ़ी से लगातार अधिक मात्रा में ज्ञान, सूचना और आविष्कार प्राप्त होते हैं।

दस साल हम प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय में लगा देते हैं। भविष्य में, लोगों को इससे भी ज्यादा पढ़ना पड़ेगा, क्योंकि हर वर्ष विज्ञान के हर क्षेत्र में नई खोजें लेकर आता है। और विज्ञानों की संख्या भी बढ़ती ही जाती है। पहले एक भौतिकी ही थी। अब भू-भौतिकी और ज्योति-भौतिकी भी हैं। पहले केवल रसायन था। अब भू-रसायन, जीव-रसायन और कृषि-रसायन भी हैं। नवीन ज्ञान के दबाव से विज्ञान इस तरह बढ़ते, खंडित होते और गुणित होते हैं, मानो वे सजीव कोशिकाएं हों।

क़ुदरती तौर पर पाषाण युग में कोई भी विज्ञान न था। मानव-जाति का अनुभव संग्रहीत होना शुरू ही हो रहा था। मनुष्य के उद्यम आज की तरह जटिल न थे। यही कारण था कि किसी व्यक्ति को अपनी शिक्षा पूरी करने में अधिक समय न लगता था। फिर भी, ऐसी भी चीज़ें थीं, जो उसे भी सीखनी पड़ती थीं।

उसे जानवर का पता लगाने और उसकी खाल उतारने, डेरा बनाने, चकमक का चाक़ू बनाने के लिए ज्ञान और निपुणता की आवश्यकता थी।

और ज्ञान आता कहां से है?

मनुष्य किसी भी निपुणता को लेकर नहीं पैदा होता। वह उसे प्राप्त करता है। इससे यह पता चलता है कि मनुष्य जंतु-जगत को कितना पीछे छोड़ आया है।

जानवर अपने सभी ज़िंदा औज़ारों और उनके उपयोग के ज्ञान को अपने माता-पिता से वंशानुक्रम में प्राप्त करता है, बिलकुल वैसे ही, जैसे वह अपनी चमड़ी के रंग या बदन की आकृति को प्राप्त करता है। सूअर को यह नहीं सीखना पड़ता कि ज़मीन को कैसे उखाड़े, क्योंकि वह विशेषकर इसी काम के लिए एक मज़बूत थूथनी को लिये पैदा होता है। मूषक को यह नहीं सीखना पड़ता कि लकड़ी को कैसे काटे, क्योंकि उसके पैने कुतरनेवाले दांत अपने-आप उग आते हैं। यही कारण है कि पशुओं की न वर्कशॉपें होती हैं, न मदरसे।

अंडे से अभी-अभी निकला बत्तख का नन्हा-सा चूज़ा तुरंत ही मक्खियों और पानी के कीड़ों को पकड़ने लगता है, यद्यपि उसे कभी किसी ने यह सिखाया नहीं



है। कोयल के बच्चे अजनबी घोंसलों में अपने असली मां-बाप की निगरानी के बिना बड़े होते हैं। लेकिन शरद के आते ही वे अपने-आप चल पड़ते हैं और अपना अफ़्रीका का रास्ता ढूंढ़ लेते हैं, यद्यपि किसी ने उन्हें पहले कभी यह रास्ता नहीं दिखाया है।

जानवर अपने माता-पिता से बेशक बहुत-कुछ सीखते हैं। लेकिन मदरसे से मिलती-जुलती भी किसी चीज़ का कोई सवाल नहीं उठ सकता।

लेकिन मनुष्य के प्रसंग में बात ही दूसरी है।

मनुष्य अपने औज़ार आप बनाता है, क्योंकि वह उन्हें लिये-लिये पैदा नहीं होता।

इसका मतलब है कि वह इन औज़ारों के उपयोग या अपनी निपुणताओं को अपने माता-पिता से वंशानुक्रम में नहीं प्राप्त करता, वरन अपने बड़ों या शिक्षकों से उन्हें सीखता है।

लोग अगर व्याकरण या गणित का ज्ञान लिये-लिये पैदा होते, तो हर आलसी छात्र को इससे बड़ी खुशी होती। फिर स्कूलों की कोई ज़रूरत न रहती। लेकिन इससे उसे सचमुच अधिक लाभ न होता। अगर स्कूल न होंगे, तो लोग नया कुछ भी न सीख पायेंगे। मनुष्य की सभी क्षमताएं और ज्ञान एक ही स्तर पर रहेंगे, जैसे, मिसाल के लिए, किसी गिलहरी की क्षमताएं।

मानव-जाति के सौभाग्य से, लोग जन्मजात क्षमताएं लिये-लिये पैदा नहीं होते। वे पढ़ते और सीखते हैं, और हर पीढ़ी मानव-अनुभव के सामान्य भंडार में कुछ अपना योगदान करती है। यह अनुभव लगातार बढ़ता रहता है। मानव-जाति अज्ञात की सीमाओं को अधिकाधिक दूर हटाती चली जाती है।



हज़ार-साला स्कूल ने, मानव-उद्यम के शिक्षालय ने मनुष्य को वह बनाया है, जो वह आज है। इसने उसे उसके विज्ञान, इंजीनियरी और कला का दान दिया है, इसने उसे उसकी सांस्कृतिक थाती प्रदान की है।

मनुष्य ने हज़ार-साला स्कूल में पहले-पहल पाषाण युग में प्रवेश किया। बूढ़े, अनुभवी शिकारी तरुणों को शिकार की कठिन कला सिखाया करते थे – जानवर को उसके पदचिह्नों से कैसे पहचाना जाये, जानवर को डराकर भगाये बिना उसके पास कैसे पहुंचा जाये।

आजकल का शिकार भी बड़ी निपुणता की अपेक्षा करता है। फिर भी, आज शिकारी बनना उस समय की अपेक्षा बहुत आसान है, चाहे इसलिए ही कि शिकारी को अब अपने हथियार नहीं बनाने पड़ते। पाषाण युग में शिकारी अपनी गदाएं और चाक़ू और अपने दोहरे फलोंवाले भालों के लिए फल अपने-आप बनाया करते थे। इसमें पुराना शिकारी अपने क़बीले के कमउम्र छोकरों को काफ़ी-कुछ सिखा सकता था।

औरतों के कामों के लिए दूसरी ही तरह की निपुणताओं की आवश्यकता थी। आखिर औरतें गृहिणी, वास्तुकार, लकड़हारिन और दर्जिन – सभी एक साथ हुआ करती थीं।

हर क़बीले में बूढ़े, अनुभवी स्त्री-पुरुष हुआ करते थे, जो अपने लंबे जीवन

में अर्जित ज्ञान और अनुभव को अपने क़बीले के बड़ी उम्र के लड़के-लड़कियों को प्रदान कर दिया करते थे।



लेकिन निपुणता और अनुभव दूसरे को कैसे सौंपा जाता है ?

जो तुम जानते हो, उसे दूसरों को दिखा और समझाकर।

मनुष्य को इसके लिए भाषा की जरूरत हुई।

जानवर को अपने बच्चों को यह नहीं सिखाना पड़ता कि वे अपने ज़िंदा औज़ारों–अपने पंजों और दांतों–का उपयोग कैसे करें। यही कारण है कि पशुओं के लिए बोलना जानना ज़रूरी नहीं है।

लेकिन प्रागैतिहासिक मानव के लिए बोलना ज़रूरी था।

उसे उन कामों के लिए भाषा की आवश्यकता थी, जो औरों के साथ मिलकर किये जाने थे। लोगों को पुरानी पीढ़ी का अनुभव और निपुणताएं नई पीढ़ी को देने के लिए शब्दों की ज़रूरत थी।

पाषाण युग के प्रागैतिहासिक लोग एक-दूसरे से कैसे बात किया करते थे ?

अतीत की दूसरी यात्रा

चलो, एक बार फिर अतीत में चलें, लेकिन इस बार हम यह पहले से ज़्यादा आसानी से करने की कोशिश करेंगे।

दूर देशों को जाने के लिए कभी-कभी तुम्हारे लिए जहाज़ में बैठकर यात्रा करना ज़रूरी नहीं होता, तुम घर के बाहर निकले बिना भी ऐसा कर सकते हो।

रेडियो की घुंडी को घुमाकर तुम अपने कमरे से पैर भी निकाले बिना देश के किसी भी भाग को पहुंच सकते हो। अगर तुम्हारे पास टेलीविज़न हो, तो तुम मीलों दूर के लोगों को केवल सुन ही नहीं, देख भी सकते हो। रेडियो और टेलीविज़न ने बड़ी दूरियों पर पार पाने में हमारी सहायता की है।

लेकिन उन लोगों को हम कैसे देख और सुन सकते हैं, जो हमसे बहुत-बहुत वर्षों की दूरी पर हैं ?

क्या कोई ऐसा भी साधन है, जो हमें काल की यात्रा पर ले जा सके, जैसे रेडियो या टेलीविज़न हमें दिशा की यात्रा पर ले जाते हैं ?

हां, है – सिनेमा।

परदे पर हम सारी दुनिया को देख सकते हैं, और सिर्फ़ आज की ही दुनिया नहीं, बल्कि कुछ पहले की दुनिया भी।

अभी हम लाल चौक में आर्कटिक अभियान के सूरमाओं की वापसी के स्वागत का नज़्ज़ारा देख रहे हैं। फिर हम एक विशाल सफ़ेद गुब्बारे को ऊपर उठता देखते हैं, जो धरती के एक नये उपग्रह जैसा दिखाई देता है। यह समतापमंडल का अनुसंधान करनेवाला गुब्बारा है।

फिर भी, सिने कैमरा एक ऐसे जहाज़ की तरह है, जो हमें अतीत में अपने आविष्कार के साल से ज़्यादा पीछे नहीं ले जा सकता। और सिने कैमरा काफ़ी हाल की ईजाद है।

पहली "बोलती" फ़िल्में १९२७ में ही आई थीं।



अगर हम काल में पीछे की तरफ़ की अपनी यात्रा जारी रखें, तो हमें एक जहाज़ से दूसरे जहाज़ पर सवार होना पड़ेगा और जहाज़ उत्तरोत्तर ख़राब ही होते जायेंगे – भाप के जहाज़ से पालवाला जहाज़ और पालवाले जहाज से मामूली डोंगी।

अब हम मूक फ़िल्म का परदा ले लेते हैं। हम अतीत को देख सकते हैं, मगर अब उसे सुन नहीं सकते।

फिर फ़ोनोग्राफ़ आता है। हम एक आवाज़ सुन सकते हैं, मगर यह नहीं देख सकते कि कौन बोल रहा है, यद्यपि उसकी आवाज़ में ज़िंदा बोली की सभी धुनें हैं।

और फिर हमारे जहाज़ हमें उन तटों के आगे नहीं ले जा सकते, जिनसे वे खुद पानी में उतारे गये थे।

कोई फ़िल्म हमें वह नहीं दिखा सकती, जो १८६५ के पहले हुआ था।

और कोई फ़ोनोग्राफ़ १८७७ के पहले बोले गये शब्द फिर नहीं सुना सकता, जिस साल वह पहले-पहल ईजाद किया गया था।

आवाज़ें क्षीण हो जाती हैं और पुस्तकों की नीरस, बराबर-बराबर छपी लाइनों में केवल अक्षरों के रूप में रह जाती हैं।

पुराने फ़ैशन के छविचित्रों और डेग्यूर्रिओटाइपों (प्रारंभिक फ़ोटो चित्रों) में बस निश्चल मुस्कानें और निगाहें ही देखने को मिलती हैं।

किसी पुराने पारिवारिक एलबम को उठाकर देखो। हरे मख़मली आवरण और कांसे के कब्ज़ों के नीचे तुम कितनी ही पीढ़ियों की ज़िंदगी देख लोगे।

एक मोटे काग़ज़ पर हम उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक में छोटी-छोटी लड़कियां जैसी पोशाक पहनती थीं, वैसी ही पोशाक पहने एक बालिका का धूमिल चित्र देखते हैं। वह एक अलंकृत उद्यान की बाड़ पर – जैसी तुम फ़ोटोग्राफ़रों के स्टूडियो में ही देख सकते हो – टिकी खड़ी है।

उसके बाद, उसी पन्ने पर सफ़ेद गाउन पहने दुलहन मोटे, गंजे दूल्हा के साथ खड़ी है। उंगली में बड़ी अंगूठीवाला उसका हाथ संगमर्मर के अधकटे खंभे पर टिका है। दूल्हा अपनी दुलहन से कम-से-कम तीस साल बड़ा लगता है, जिसकी आंखें बिलकुल पहले चित्र की बालिका जैसी ही भोली और भयग्रस्त हैं।



और यह रहा उसका चालीस या पचास साल बाद का चित्र। तुम उसे मुश्किल से ही पहचान पाओगे। सिर पर बंधे काले लैस के रूमाल के नीचे उसका माथा झुर्रियों से भरा हुआ है, उसकी आंखें आज्ञापेक्षी और थकी हुई हैं, उसके गाल पिचके हुए हैं। तसवीर के पीछे स्टूडियो का निशान है – कैमरा पकड़े एक देवदूत। और देवदूत के ऊपर बुढ़ापे से कांपते हाथ में लिखी एक पंक्ति है – "अपनी प्यारी पोती को उसकी स्नेहालु दादी की ओर से।"

एलबम के एक ही पृष्ठ पर, एक व्यक्ति की पूरी जीवनी है।

चित्र जितने पुराने हैं, पात्रों की मुद्राओं या अभिव्यंजनाओं को वे उतना ही कम पकड़ पाते हैं। आज हम दौड़ते घोड़े की सवारी या पानी में ग़ोता मारते तैराक का चित्र आसानी से ले सकते हैं। लेकिन प्रारंभिक फ़ोटोग्राफ़र के पास शिकंजेदार एक विशेष कुरसी होती थी, जिससे वह चित्र खिंचवानेवाले के सिर और कंधों को जकड़ दिया करता था, ताकि वह ज़रा भी न हिल-डुल सके। फिर अचरज की

क्या बात है कि चित्रों में ये लोग अकड़े हुए और अजीब-अजीब नज़र आते हैं और ज़रा भी स्वाभाविक नहीं लगते।

लेकिन १८३८ के पहले कोई फ़ोटो नहीं लिया गया था। जैसे-जैसे हम अपना सफ़र जारी रखते हैं, हमें अधिकाधिक अतीत के दूसरे साक्षियों पर ही पूरी तरह आश्रित होना पड़ता है, यद्यपि वे कैमरा जैसे यथार्थ या वस्तुनिष्ठ नहीं हैं।

अतीत का कल्पना-चित्र बनाने के लिए हमें साक्षियों की उस गवाही की तुलना करनी होगी, जिसे कला-प्रदर्शनगृहों, अभिलेखागारों और पुस्तकालयों में संरक्षित रखा गया है।

तब सैकड़ों साल यों ही गुज़र जायेंगे, जैसे राजमार्ग पर मील के पत्थरों पर लिखी संख्याएं निकल जाती हैं।

१४४० के साल पर आकर हमें फिर बदली करनी पड़ेगी। इसके पहले छपी हुई किताबें नहीं थीं। छापे के साफ़ काले अक्षरों की जगह प्राचीन लिपिकार की आड़ी-तिरछी लिपि ले लेती है।

उसकी पर की क़लम चर्मपत्र पर धीरे-धीरे चलती है और हम उसके पीछे-पीछे क़दम-ब-क़दम, अक्षर-अक्षर करके अतीत की तरफ़ चलते चले जाते हैं।



चर्मपत्र की पुस्तकों से श्रीपत्र पेपाइरस पर लिखे लेखों और उनसे मंदिरों की पत्थरों की दीवारों पर खुदे शिलालेखों पर जाते-जाते हमारी यात्रा हमें अधिकाधिक पीछे की तरफ़ लेती जाती है।

अतीत के लोगों से हमें मिलनेवाली लिखाई अधिकाधिक विचित्र और रहस्यमय होती जाती है।

आखिर, लिखाई भी ग़ायब हो जाती है और अतीत की आवाज़ें ख़ामोश हो जाती हैं।

अब क्या हो?

तब हम मिट्टी में मनुष्य के चिह्नों की तलाश करते हैं, हम बिसरे हुए समाधि-स्थलों को खोदते हैं, प्राचीन औज़ारों, पुराने आश्रयस्थलों के पत्थरों, कभी के ठंडे पड़े चूल्हों के कोयलों की जांच करते हैं।

अतीत के ये सभी अवशेष हमें बताते हैं कि आदमी कैसे रहता और काम करता था।

लेकिन क्या वे हमें यह भी बता सकते हैं कि मनुष्य कैसे बोलता और सोचता था?

बिन-बोली बोली

गुफाओं के भीतर या प्रागैतिहासिक शिकारियों के शिविरस्थलों पर वैज्ञानिकों को अकसर स्वयं प्रागैतिहासिक लोग, या यह कहो कि उनके अवशेष, मिले हैं।

१६२४ में सोवियत पुरातत्त्वविदों को सिंफ़ेरोपोल के निकट किइक-कोबा गुफा में एक आदिम-मानव के अवशेष मिले। कंकाल गुफा में खुदे एक चौकोर गढ़े में दफ़न था। पास ही, निकटवर्ती चट्टानों से सुरक्षित, उन्हें एक बारहसिंघे के अवशेष और चकमक के कुछ औज़ार भी मिले।

पाषाण युग का ऐसा ही एक और शिविरस्थल उज़्बेकिस्तान में तेशिक ताश गुफा में मिला था।

प्रागैतिहासिक शिकारी एक पहाड़ी दर्रे के ढाल पर रहते थे और संभवतः उनके पैर बहुत सधे हुए थे, क्योंकि उनका मुख्य शिकार पहाड़ी बकरी थी, जो एक ऐसा जानवर है जिसे पकड़ना और मारना बहुत मुश्किल है।

कोई आठ साल के एक बच्चे की खोपड़ी और हड्डियां उसी गुफा में चकमक के औज़ारों और जानवरों की हड्डियों के साथ मिली थीं।

प्राचीन पाषाण युग के मनुष्यों के अवशेष रूस में ही नहीं, बल्कि कई अन्य देशों में भी मिले हैं। वस्तुतः, अमरीका को छोड़कर वे हर महाद्वीप पर मिले हैं।



चूंकि ऐसी पहली खोज जर्मनी के राइन प्रांत की निआंडर घाटी में हुई थी, पुरातत्वविदों ने इनको निआंडरथाल-मानव का नाम दिया है।

अपने नायक को हम अब निआंडरथाल-मानव कहेंगे। हमने उसे एक नया नाम दे दिया है, क्योंकि उसे उसके पूर्वज पिथेकेंथ्रोपस से जो लाखों वर्ष अलग करते हैं, उनमें वह एकदम बदल गया है।

उसकी कमर ज़्यादा सीधी है, उसके हाथ अधिक दक्ष हैं, उसका चेहरा मनुष्य से ज़्यादा मिलता है।

लेखक लोग आम तौर पर अपने नायक के रंगरूप को बड़ी कल्पना और बड़े विस्तार के साथ बताते हैं। मिसाल के लिए, वे ऐसी-ऐसी अभिव्यक्तियों का उपयोग करते हैं – "उसकी दमकती आंखें", "उसकी दर्पीली सीधी नाक", "भौंरे जैसे काले बाल"। लेकिन उसके मस्तिष्क के आकार की बात कोई भी नहीं करता।

हमारी बात दूसरी है। हमारे नायक के मस्तिष्क का आकार हमारे लिए सर्वाधिक महत्त्व का है और इसमें हमारी दिलचस्पी उसकी आंखों के भाव या बालों के रंग से कहीं ज़्यादा है।

निआंडरथाल-मानव की खोपड़ी की सावधानीपूर्वक माप करने के बाद हमें यह कहते ख़ुशी होती है कि उसका मस्तिष्क पिथेकेंथ्रोपस के मस्तिष्क से बड़ा है।

तो देखा तुमने, काम में लगे हज़ारों वर्ष बेकार नहीं गये। उन्होंने सारे ही आदमी को बदल दिया, लेकिन उन्होंने उसके हाथों और सिर को उसके किसी भी अन्य अंग की अपेक्षा अधिक बदला, क्योंकि उसके हाथों को काम करना पड़ता था और उसके मस्तिष्क को उन्हें निदेशित करना होता था।

जब प्रागैतिहासिक मानव चकमक के कुल्हाड़े से जूझते हुए चकमक को कोई नया रूप देने की कोशिश कर रहा था, वह धीरे-धीरे स्वयं अपने को और ख़ुद अपनी उंगलियों को भी बदलता जा रहा था, जो ज़्यादा फ़ुर्तीली और ज़्यादा दक्ष होती जा रही थीं, वह अपने मस्तिष्क को भी बदलता जा रहा था, जो अधिकाधिक जटिल होता जा रहा था।

निआंडरथाल-मानव पर एक निगाह भर डालने से तुम्हें पता चल जायेगा कि वह वानर नहीं है।

फिर भी, वह वानर से कितना मिलता-जुलता है!

उसका नीचा माथा उसकी आंखों के ऊपर आगे को निकला हुआ है। उसके दांत तिरछे हैं और उसके मुंह से बाहर निकले हुए हैं।

निआंडरथाल-मानव का माथा और ठोड़ी दो लक्षण हैं, जो उसे हमसे इतना भिन्न बनाते हैं। उसका माथा पीछे की तरफ़ जाता है और ठोड़ी लगभग है ही नहीं।

एक ऐसी खोपड़ी में, जिसमें मुश्किल से ही कोई माथा है, जो मस्तिष्क है, उसमें आधुनिक मनुष्य के मस्तिष्क के कुछ भाग हैं ही नहीं। कटी हुई ठोड़ीवाला निचला जबड़ा अभी मनुष्यों की बोली के लिए अनुकूलित नहीं हुआ है।

ऐसे माथे और ऐसी ठोड़ीवाला आदमी न हमारी तरह सोच सकता था और न बोल सकता था।

फिर भी, प्रागैतिहासिक मानव को बोलना पड़ता ही था। मिल-जुलकर किया गया काम बोली की अपेक्षा करता था, क्योंकि जब कई लोग किसी काम को एक साथ करते होते हैं, तो उन्हें उसके बारे में आपस में सहमत होना पड़ता है। आदमी तब तक इंतज़ार नहीं कर सकता था जब तक उसका माथा विकसित और उसका जबड़ा ज़्यादा बड़ा न हो जाये, क्योंकि तब उसे हज़ारों वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ती।



लेकिन वह औरों के साथ बात कैसे करता था?

वह जो कुछ कहना चाहता था, उसे कहने के लिए अपने सारे शरीर का उपयोग करके वह बात करने की भरसक कोशिश करता था। अभी तक उसके बोलने का कोई विशेष अंग न था, और इसलिए वह अपने चेहरे की पेशियों, अपने कंधों और पैरों और सबसे अधिक अपने हाथों का उपयोग करता था।

तुमने कभी कुत्ते से बात करने की कोशिश की है? कुत्ता जब अपने मालिक को कुछ समझाना चाहता है, तो वह उसकी आंखों में देखता है, अपनी थूथनी चुभाता है, अपने पंजे उसकी गोद में रखता है, अपनी दुम हिलाता है, उत्कंठा के मारे पसरता और जंभाइयां लेता है। वह शब्दों का उपयोग नहीं कर सकता और इसलिए उसे अपना अभिप्राय व्यक्त करने के लिए अपनी सारी देह का – नाक के सिरे से लेकर दुम के छोर तक – उपयोग करना पड़ता है।

प्रागैतिहासिक मानव भी नहीं जानता था कि शब्दों को कैसे कहे। लेकिन उसके हाथ थे, और वे उसकी अपनी बात समझाने में सहायता करते थे। वह काम के लिए अपने हाथों का उपयोग करता था, मगर उसे अपने काम के लिए भाषा की भी आवश्यकता थी।

यह कहने के बजाय कि "इसे काटो", प्रागैतिहासिक मानव हवा को अपने हाथों से काटा करता था; यह कहने के बजाय कि "इसे मुझे दो", वह अपना हाथ आगे फैला दिया करता था; यह कहने के बजाय कि "यहां आओ", वह अपना हाथ अपनी तरफ़ हिलाया करता था। अपने हाथों की सहायता के लिए वह अपनी आवाज़ का उपयोग करता था – दूसरे आदमी का ध्यान आकर्षित करने और उसे अपने हाथों के इशारे देखने के लिए मजबूर करने के लिए वह गरजता था या गुर्राता था या चिल्लाता था।

लेकिन हमें यह कैसे मालूम?

ज़मीन में हमें जो हर टूटा हुआ चकमक का औज़ार मिलता है, वह अतीत का एक-एक टुकड़ा है। लेकिन इशारों के टूटे टुकड़े हम कहां पा सकते हैं? हम उन हाथों के इशारों को कैसे पुनर्निर्मित कर सकते हैं, जो कभी के धूल बन चुके हैं?

बोलते हाथ

ज़्यादा दिन नहीं हुए, एक अमरीकी आदिवासी लेनिनग्राद आया था। वह निमेपू (जिसका मतलब है "छिदी हुई नाकवाले") क़बीले का था। जेम्स फ़ेनीमोर कूपर ने टोमहाक से लैस जिन अमरीकी आदिवासियों की इतनी चर्चा की है, उनसे वह ज़रा भी नहीं मिलता था।

अमरीकी आगंतुक मकासिन (हिरन की खाल के जूते) नहीं पहने था और न उसके सिर पर परों का शिरोभूषण ही था। वह सूट पहने था और अंग्रेज़ी और अपने क़बीले की भाषा – दोनों ही फर्राटे से बोलता था।

लेकिन इन दोनों भाषाओं के साथ-साथ वह एक तीसरी भाषा भी जानता था – एक ऐसी भाषा, जो अमरीकी आदिवासियों में हज़ारों वर्षों से बची रही है।

यह दुनिया की सबसे सरल भाषा है। अगर तुमने इसका अध्ययन करने का निश्चय किया, तो तुम्हें क्रियारूप और शब्दरूप नहीं सीखने पड़ेंगे, उसमें क्रियारूप, कृदंत या क्रियाविशेषण कुछ भी नहीं हैं, जो हममें से कितनों ही के लिए सिरदर्द हैं। सही उच्चारण बायें हाथ का खेल होगा, क्योंकि तुम्हें किसी भी चीज़ का उच्चारण करना ही नहीं पड़ेगा!

आगंतुक जो तीसरी भाषा बोलता था, वह शब्दों की भाषा थी ही नहीं, वह इशारों की भाषा थी।

इस भाषा का शब्दकोश शायद कुछ ऐसा होगा।

इशारों की बोली के शब्दकोश का एक पृष्ठ

कमान – एक हाथ एक काल्पनिक धनुष पकड़े है, जबकि दूसरा काल्पनिक प्रत्यंचा को खींच रहा है।

विगवैम (तंबू) – आपस में जुड़ी उंगलियां एक तंबू बनाती हैं।

गोरा आदमी – टोप का किनारा दर्शाने के लिए माथे के ऊपर लाया हाथ।

भेड़िया – दो उंगलियां निकला हाथ, जिनसे दो कान बन जाते हैं।

खरगोश – ऊपर की ही तरह दो उंगलियां निकला हाथ और उसके साथ गोल पीठ दर्शाने के लिए गोलाकार इशारा।

मछली – एक साथ जुड़ी हुई उंगलियां और तैरती हुई मछली का अनुकरण करने के लिए सर्पाकार गति में हिलता हाथ – मछली की पूंछ दायें से बायें जा रही है।

मेंढक – कूदने की मुद्रा में पांचों उंगलियों के छोर शरीर पर एक साथ आते हैं और आगे फुदक जाते हैं।

बादल – बादल दर्शाने के लिए सिर के ऊपर दो मुट्ठियां।

बर्फ़ – सिर के ऊपर वही दो मुट्ठियां, लेकिन उंगलियां धीरे-धीरे खुलकर हिम-कणों की तरह तैरती नीचे आती हैं।

वर्षा – ऊपर की ही तरह सिर के ऊपर दो मुट्ठियां, लेकिन उंगलियां तेज़ी से खुलती हैं और नीचे लाई जाती हैं।

तारा – दो उंगलियां, जो सिर से काफ़ी ऊपर तारे का टिमटिमाना दिखलाने के लिए एक साथ आती हैं और फिर अलग हो जाती हैं।

इस भाषा में हर शब्द हवा में हाथों से बनाया गया एक-एक चित्र है।

जैसे सबसे पुरानी लिखाई में शब्द अक्षरों से नहीं, बल्कि चित्रों से बनते थे संभवतः इसी प्रकार सबसे पुराने इशारे भी चित्र-शब्द ही होते थे।

ठीक है, अमरीकी आदिवासी क़बीलों की इशारों की भाषा प्रागैतिहासिक मानव की भाषा नहीं थी। आधुनिक अमरीकी क़बीलों की इशारों की भाषा में कितने ही ऐसे शब्द हैं, जो किसी भी प्रागैतिहासिक भाषा में कभी नहीं मिल सकते थे। कुछ हाल के "चित्रशब्द" ये हैं:

मोटरकार – दो पहियों को दर्शाने के लिए हाथों से दो घेरे दिखाना और फिर काल्पनिक स्टीयरिंग ह्वील को एक बार घुमाना।

रेलगाड़ी – पहिये दिखलाने के लिए हाथों से दो घेरे, और फिर हाथ और बांह से इंजन से निकलती भाप दिखलाने के लिए लहरदार इशारा।

ये सबसे नये इशारे हैं। लेकिन हमें इशारों की भाषा के शब्दकोश में ऐसे इशारे भी मिलते हैं, जो बहुत करके हम तक प्रागैतिहासिक काल से ही आये हैं।

आग – अलाव से उठता धुआं दिखलाने के लिए हाथ और बांह की ऊपर की तरफ़ लहरदार हरकत।

काम – हवा को काटता हाथ।

कौन जानता है, संभवतः प्रागैतिहासिक लोग जब "काम करो!" कहना चाहते थे, तो हवा को अपने हाथ से काटते ही थे।



हमारी अपनी इशारों की भाषा

हमने अपनी एक निजी इशारों की भाषा को सुरक्षित रखा है।

जब हम "हां" कहना चाहते हैं, तो हम हमेशा इस शब्द को नहीं कहते। अकसर, हम बस सिर हिला देते हैं।

जब हम कहना चाहते हैं "वहां", तो हम कभी-कभी अपनी तर्जनी उस ओर उठा देते हैं।

जब हम किसी का अभिवादन करते हैं, तो हम झुक जाते हैं। हम अपना सिर हिलाते हैं, अपने कंधे मचकाते हैं, अपने कंधे उठाते और हाथों को फैलाते हैं, हम त्यौरी चढ़ाते हैं, होंठ काटते हैं, किसी की तरफ़ उंगली उठाते हैं, मेज़ को थपथपाते हैं, अपने पैर पटकते हैं, अपने हाथ हिलाते और मसोसते हैं, सिर को हाथों में थामते हैं, दिल को अपने हाथ लगाते हैं, अपने हाथ



पसारते हैं, मिलाने के लिए अपना हाथ पेश करते हैं और विदा होते समय चुंबन के इशारे करते हैं।

यह एक पूरी बातचीत है, जिसमें एक भी शब्द नहीं बोला गया है।

और यह "बिना बोली की भाषा", यह इशारों की बोली खत्म नहीं होना चाहती। ठीक है कि इसमें कुछ अच्छाइयां भी हैं। कभी-कभी एक इशारा एक लंबी वक्तृता से ज़्यादा कह सकता है। एक अच्छा अभिनेता खामोश रह सकता है, मगर आध घंटे के भीतर उसकी भौंहें, आंखें और होंठ हमसे सौ से ज़्यादा शब्द कह चुके होंगे।

फिर भी, अपनी बोलचाल में इशारों की भाषा के उपयोग को शिष्टतापूर्ण नहीं समझा जाता।

अगर किसी बात को तुम शब्दों में आसानी से कह सकते हो, तो उसे अपने हाथों या पैरों के उपयोग से कहने की क्या तुक है! आखिर, हम कोई प्रागैतिहासिक लोग तो हैं नहीं। पैर पटकना, आदमी की तरफ़ इशारा करना या जीभ निकालना ऐसी आदतें हैं, जिन्हें भूल जाना ही अच्छा।

फिर भी, ऐसे मौक़े आते ही हैं, जब हमें मूक भाषा की ज़रूरत पड़ती है।

क्या तुमने कभी दो जहाज़ों को आपस में झंडों के इशारों से "बात करते" देखा है? हवा, लहरों और कभी-कभी गोलाबारी तक की आवाज़ के ऊपर अपनी बात पहुंचाने के लिए आदमी को कितनी ज़ोरदार आवाज़ की ज़रूरत होगी! ऐसे अवसरों पर हमारे कान काम देना बंद कर देते हैं और हमें अपनी आंखों का सहारा लेना पड़ता है।

तुम संभवतः इशारों की भाषा का अकसर इस्तेमाल करते हो। कक्षा में जब तुम अध्यापक का ध्यान खींचना चाहते हो, तो तुम अपना हाथ उठा देते हो। और यह ठीक भी है। तीस या चालीस बच्चों के एक साथ बोलने की बात भी सोच सकते हो क्या?

इस तरह हम देखते हैं कि इशारों की भाषा में अच्छाइयां भी हैं, क्योंकि यह इतने हज़ारों साल बची रही है और अभी तक लोगों के लिए आवश्यक है।

बोली इशारों की भाषा पर विजयी हो गई है, लेकिन पूरी तरह से नहीं। अब विजित विजेता की चेरी हो गई है। यही कारण है कि इशारों की भाषा अब भी कुछ जातियों में नौकरों, अधीनस्थ लोगों और नीचे समझे जानेवालों की भाषा के रूप में ही क़ायम है।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के पहले काकेशिया के आर्मीनियाई गांवों की औरतें अपने पति के अलावा और किसी पुरुष से बात नहीं कर सकती थीं। अगर स्त्री किसी और आदमी से कुछ कहना चाहती, तो उसे इशारों की भाषा का इस्तेमाल करना पड़ता।

शाम, ईरान तथा दुनिया के कितने ही अन्य प्रदेशों में इशारों की बोलियां मौजूद थीं।

मिसाल के तौर पर, ईरान के शाह के महल में नौकरों-चाकरों के लिए बस इशारों की भाषा का ही उपयोग करने की पाबंदी थी। वे शब्दों का प्रयोग तब ही

कर सकते थे कि जब वे अपने बराबरवालों से बात कर रहे हों। ये अभागे लोग सही माने में "वाक् स्वतंत्रता" से वंचित थे।

इसी तरह वर्तमान समय में भी हमें कब के तिरोहित हुए अतीत के अवशेष मिल जाते हैं।

मनुष्य अपने मस्तिष्क का अर्जन करता है

जंगल में हर जानवर उन हज़ारों ही संकेतों को सुनता और देखता रहता है, जो सभी ओर से उसे तक पहुंचते रहते हैं। कोई डाल तड़कती है – यह कोई दुश्मन हो सकता है – और जानवर भागने या अपनी रक्षा करने के लिए तैयार हो जाता है।

बिजली गिरती है, हवा पत्तियों को डालियों से उड़ाती जंगल को चीरती चली जाती है – जानवर आनेवाले तूफ़ान से बचने के लिए अपने घोंसलों या बिलों में छिप जाते हैं।

जब सड़ती हुई पत्तियों और खुमियों की गंध के साथ मिलती हुई शिकार की गंध नम ज़मीन पर होकर बहती आती है, तो जानवर गंध पर चलता है और अपने शिकार को पकड़ लेता है।

हर सरसराहट, हर गंध, घास में हर पदचिह्न, हर चीख़ या सिसकार कुछ-न-कुछ मतलब रखती है और तुरंत ध्यान देने का तक़ाज़ा करती है।

प्रागैतिहासिक मनुष्य भी बाहरी दुनिया के संकेतों को सुना करता था। फिर भी, उसने जल्दी ही एक भिन्न प्रकार के संकेतों को समझना भी सीख लिया। ये वे संकेत थे, जो उसके यूथ के लोग उसे भेजते थे।

मिसाल के तौर पर, अगर प्रागैतिहासिक शिकारी को जंगल में बारहसिंघे के पदचिह्न मिलते, तो वह अपने पीछे के और शिकारियों को संकेत करने के लिए अपना हाथ हिलाता। उन्होंने जानवर को नहीं देखा था, मगर उसके संकेत उन्हें चौकन्ना कर देते। वे अपने हथियारों को और मज़बूती से पकड़ लेते थे मानों उन्होंने बारहसिंघे के बड़े-बड़े सींगों और हिलते हुए कानों को सचमुच देख लिया हो।

जानवर के पदचिह्न एक संकेत थे।

पदचिह्नों के बारे में औरों को बताने के लिए शिकारी के हाथ का सहसा उठना संकेत के बारे में संकेत था।

हर बार जब कोई शिकारी ज़मीन पर पदचिह्न देखता या झाड़ियों में से जानवर के खिसकने की सरसराहट सुनता, वह इस संकेत के बारे में दूसरे शिकारियों को संकेत भेजता।



इस तरीक़े से प्रकृति द्वारा मनुष्य को दिये गये संकेतों के अलावा बोली भी एक और संकेत बन गई, एक ऐसा संकेत, जिससे कुल के सदस्य एक-दूसरे को संकेत कर सकते थे।

अपनी एक कृति में इवान पावलोव ने मनुष्य की बोली को "संकेत के बारे में संकेत" कहा है।

आरंभ में ये संकेत मात्र चीखें तथा इशारे थे। ये व्यक्ति के नेत्रों तथा कानों द्वारा ग्रहण किये जाते थे और एक केंद्रीय टेलीफ़ोन स्टेशन की ही तरह उसके मस्तिष्क को भेज दिये जाते थे। जब मस्तिष्क "किसी संकेत के बारे में संकेत" ग्रहण करता – "एक जानवर आ रहा है" – वह तुरंत आदेश दे देता – हाथो, अपना दोहरे फलों-वाला भाला कसकर पकड़ लो; आंखों, झाड़ियों पर सावधानी से आंख जमाये रखो; कानो, हर सरसराहट और हर आवाज़ को सुनो! जानवर अभी आंख और कान की पहुंच के बाहर ही था, लेकिन शिकारी उसके लिए ही तैयार था।

इशारे और चीत्कार जितने अधिक होते, जितने अधिक "संकेतों के बारे में संकेत" मस्तिष्क में पहुंचते, "केंद्रीय स्टेशन" के लिए, जो मनुष्य की खोपड़ी के पालि-क्षेत्र में स्थित है, उतना ही अधिक काम होता। इसका मतलब है कि "केंद्रीय स्टेशन" को बढ़ते रहना पड़ा। मस्तिष्क में लगातार नई-नई कोशिकाएं बनती गईं और उनके संयोजन अधिकाधिक जटिल होते गये। स्वयं मस्तिष्क भी बड़ा होता गया।

निआंडरथाल-मानव का मस्तिष्क पिथेकैंथ्रोपस के मस्तिष्क से ४०० से ५०० घन सेंटीमीटर ज़्यादा बड़ा था। जैसे-जैसे उसका मस्तिष्क विकसित होता गया, प्रागैतिहासिक मानव विचार करना सीखता गया।

जब वह कोई ऐसा संकेत देखता या सुनता, जिसका मतलब "सूरज" था, तो वह सूरज की ही बात सोचता, चाहे उस समय आधी रात ही क्यों न हो।

जब उसे जाकर भाला लाने का संकेत दिया जाता, तो वह भाले की ही सोचता, यद्यपि उस समय वह कहीं नजर नहीं आता था।

मिल-जुलकर किये जानेवाले काम ने मनुष्य को बोलना सिखाया, और जब उसने बोलना सीख लिया, तो उसने विचार करना, सोचना भी सीख लिया।

आदमी को अपना मस्तिष्क प्रकृति से भेंट में नहीं मिला। उसने इसे अपने हाथों के श्रम की बदौलत अर्जित किया।

जीभ और हाथों ने जगह कैसे बदली

अभी जबकि औज़ार बहुत कम थे, जबकि प्रागैतिहासिक मानव का अनुभव अभी तक बहुत ही सीमित था, दूसरों को अपने हुनर सिखाने के लिए सरलतम इशारे काफ़ी थे।

लेकिन मानव-उद्यम जितना जटिल होता गया, इशारे भी उतने ही जटिल होते गये। हर वस्तु के लिए एक विशेष संकेत होना चाहिए था और संकेत को वस्तु का सही-सही वर्णन देना था। तभी चित्र-संकेत अस्तित्व में आये। प्रागैतिहासिक मानव हवा में पशुओं, औज़ारों, पेड़ों तथा अन्य वस्तुओं के चित्र बनाता था।

उदाहरण के लिए, अगर वह साही का वर्णन करना चाहता, तो केवल हवा में साही का चित्र ही नहीं बनाता था, वह निमिष मात्र के लिए स्वयं साही बन जाता था। वह औरों को दिखाता कि साही कैसे मिट्टी को खोदती और उसे अपने पंजों से अलग फेंकती है, कैसे उसके कांटे खड़े हो जाते हैं।

इस कहानी को मूक अभिनय द्वारा बताने के लिए प्रागैतिहासिक मनुष्य के लिए अत्यंत सूक्ष्मदर्शी होना आवश्यक था, जो हमारे ज़माने में कोई सच्चा कलाकार ही हो सकता है।

जब तुम कहते हो, "मैंने पानी पिया," तो जिस व्यक्ति से तुम कह रहे हो, वह तुम्हारे शब्दों से यह नहीं बता सकता कि तुमने पानी गिलास से पिया या बोतल से या चुल्लू से।

जो आदमी अपनी बात को इशारों की भाषा से समझाना अभी नहीं भूला है, वह इसी बात को और तरीक़े से कहेगा।

वह अपने हाथ को चुल्लू जैसा बनाकर अपने मुंह तक लायेगा और काल्पनिक पानी को आतुरतापूर्वक सुड़प लेगा। उसे देखनेवाले अनुभव कर लेंगे कि पानी कितना सुस्वादु ठंडा और स्फूर्तिदायक है।

हम "पकड़ो" या "शिकार करो" कहते हैं। मगर प्रागैतिहासिक मनुष्य शिकार के पूरे दृश्य का ही अभिनय करता था।

इशारों की भाषा कभी बड़ी अर्थपूर्ण होती है, लेकिन कभी यह बड़ी अपर्याप्त रह जाती है।

वह अर्थपूर्ण थी, क्योंकि वह किसी घटना या वस्तु को बड़ी विशदतापूर्वक चित्रित करती थी। लेकिन वह अत्यंत सीमित भी थी।

इशारों की भाषा में तुम अपनी बाईं आंख या दाईं आंख इंगित कर सकते थे, मगर केवल "आंख" कहना बहुत मुश्किल था।

तुम किसी वस्तु का सही-सही वर्णन करने के लिए इशारों का उपयोग कर सकते थे, लेकिन किसी अमूर्त्त विचार को कोई इशारे व्यक्त नहीं कर सकते थे।

इशारों की भाषा में और भी खामियां थीं। तुम इशारों की भाषा में रात में कुछ भी नहीं कह सकते, क्योंकि अंधेरे में तुम अपने हाथों को चाहे कैसे ही क्यों न हिलाओ, कोई भी नहीं देखेगा कि तुम क्या कर रहे हो। और दिन के उजाले में भी लोग इशारों की भाषा में सदा ही एक-दूसरे को नहीं समझ पाते थे।

स्तेपी के लोग एक-दूसरे से आसानी से इशारों की भाषा में बात कर सकते थे, लेकिन जंगल में, जब शिकारी एक-दूसरे से घनी झाड़ियों से अलग होते थे, ऐसा करना असंभव था।

तब जाकर लोगों को अपनी बात समझाने के लिए ध्वनियों की आवश्यकता पड़ी थी।

आरंभ में, प्रागैतिहासिक मनुष्य की जीभ और गला बड़े बेक़ाबू थे। एक ध्वनि दूसरी से बहुत भिन्न नहीं होती थी। अलग-अलग ध्वनियां गुर्राहट, चीख या चिचियाहट जैसी लगती थीं। आदमी को अंततः अपनी जीभ से साफ़-साफ़ ध्वनियां निकाल पाने में बहुत लंबा समय लग गया।

पहले जीभ सिर्फ़ हाथों की सहायता करती थी। लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य बोलना सीखता गया, वैसे-वैसे जीभ को ही प्राथमिकता मिलती गई।





ध्वनियों की भाषा, जो पहले हाथों की भाषा की सहायिका थी, वह अब मुख्य और इशारों की भाषा गौण हो गई।

जीभ की गतियां सभी इशारों में सबसे अधिक अगोचर थी, लेकिन उनकी सबसे बड़ी अच्छाई यह थी कि उन्हें सुना जा सकता था।

शुरू में ध्वनियों की भाषा इशारों की भाषा से बहुत मिलती-जुलती थी। वह हर वस्तु और हर हरकत का जैसे एक चित्र थी।

ईव क़बीले के लोग सिर्फ़ "चलना" ही नहीं कहते। वे कहते हैं – 'ज़ो दज़े-दज़े' – बंधे क़दमों से चलना; 'ज़ो बोहो-बोहो' – भारी चाल से चलना, जैसे मोटे आदमी चलते हैं; 'ज़ो बुला-बुला' – तेज़ी से झपटना; 'ज़ो पिआ-पिआ' – छोटे क़दमों से चलना; 'ज़ो गोवु-गोवु' – कुछ लंगड़ाते हुए और सिर आगे झुकाकर चलना।

इनमें से प्रत्येक शब्दावली एक-एक ध्वनि-चित्र है, जो व्यक्ति की चाल के हर विवरण का वर्णन करती है। इनमें बंधा क़दम, दुबले आदमी का बंधा क़दम, अपने घुटने मोड़े बिना अकड़कर चलनेवाले आदमी का बंधा क़दम, सब आ जाते हैं। जितनी ही तरह की चालें हैं, उतनी ही शब्दावलियां हैं।

इस प्रकार संकेत-चित्र की जगह अंततः ध्वनि-चित्र ने ले ली।

इस तरह प्रागैतिहासिक मानव ने पहले इशारों और फिर शब्दों के ज़रिये बोलना सीखा।

नदी और उसके स्रोत

अतीत की अपनी यात्राओं के दौरान हमने क्या खोजा है?

जैसे नदी में ऊपर की तरफ़ जाता अन्वेषक उसका स्रोत खोज निकालता है; उसी प्रकार हम भी उस नन्ही-सी धारा पर आ गये हैं, जिसने मानविक अनुभव की विशाल सरिता को जन्म दिया है।

यहां, नदी के स्रोत पर, हमने मानव समाज, भाषा और चिंतन के प्रारंभ की भी खोज की।

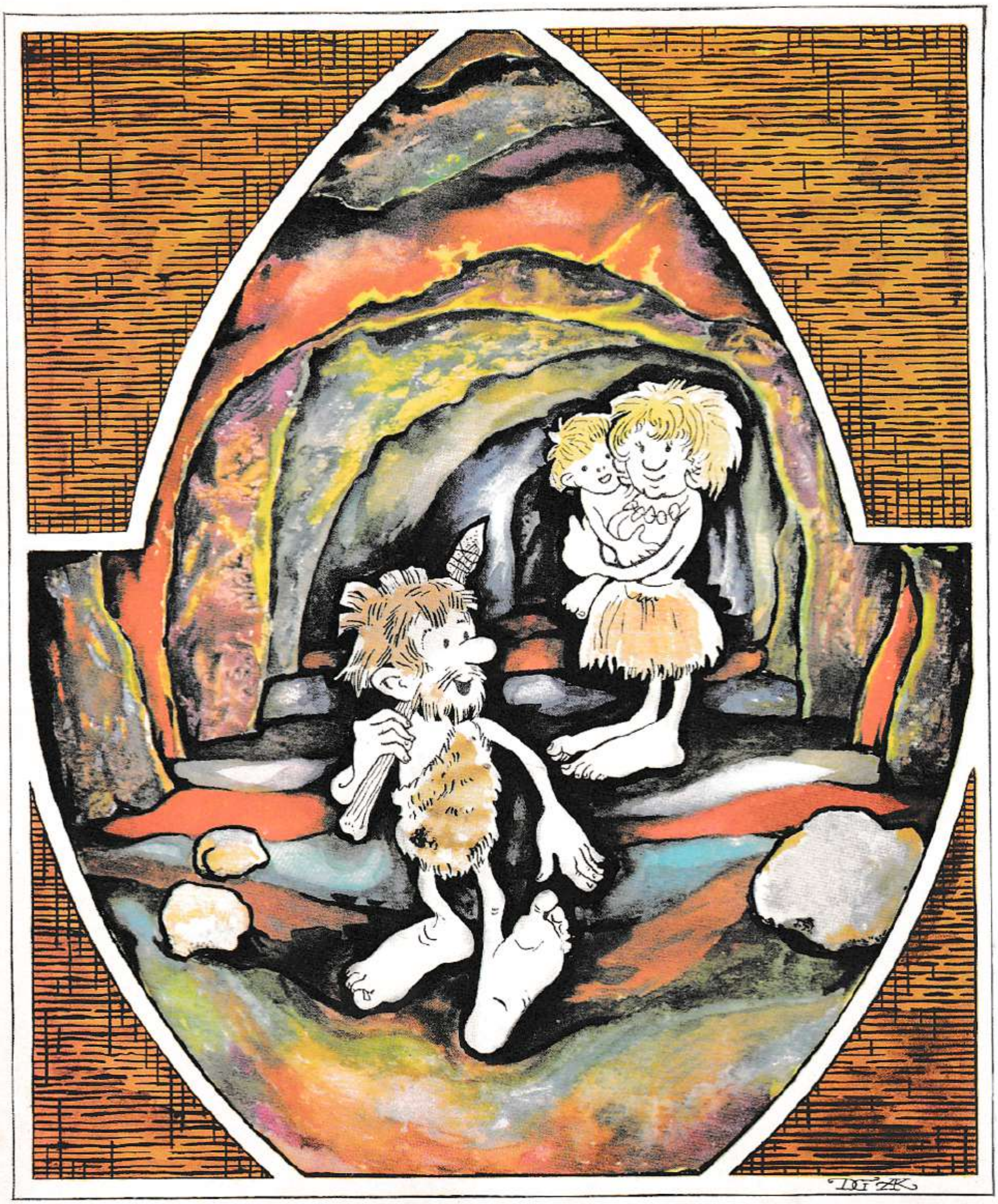
जैसे हर नई सहायक नदी के मिलने के साथ नदी गहरी होती जाती है, उसी प्रकार मानविक अनुभव की नदी भी लगातार गहरी और चौड़ी होती जाती है। क्योंकि हर नई पीढ़ी अपना पूरा संचित अनुभव इसमें जोड़ती चली जाती है।

पीढ़ियों के बाद पीढ़ियां अतीत में लीन होती चली गईं। मनुष्य और क़बीले बिना निशान छोड़े अदृश्य हो गये, शहर और गांव सदा-सदा के लिए लुप्त हो जाते हुए चूर-चूर होकर धूल में मिल गये। लगता था कि संसार में ऐसा कुछ नहीं है जो काल के विनाशी बल को सह सके। लेकिन मानवजाति का संचित अनुभव बच रहा। इसने काल को जीत लिया है और वह हमारी भाषा, हुनरों और विज्ञानों में जीता चला आ रहा है। भाषा में हर शब्द, काम में प्रत्येक गति, विज्ञान में प्रत्येक धारणा – ये सभी पुरानी पीढ़ियों का संचित अनुभव हैं।

जिस प्रकार नदी की कोई सहायक नदी कभी लुप्त नहीं होती, उसी प्रकार इन पीढ़ियों का श्रम भी बेकार नहीं गया। उस सभी लोगों का श्रम, जो हम से पहले जीवित रह चुके हैं और जो अब जीवित हैं, मानविक अनुभव की सरिता में मिला हुआ है।

और इस तरह अब हम नदी के स्रोत पर, अपने सभी दायित्वों के आरंभ-बिंदु पर आ पहुंचे हैं। इस प्रकार मनुष्य का अस्तित्व हुआ, जो एक काम करनेवाला, बोलनेवाला और सोचनेवाला प्राणी है।

जब हम उन लाखों वर्षों पर दृष्टि डालते हैं, जो हमें वानरों से अलग करते हैं, तो हम फ़्रेडरिक एंगेल्स के विद्वत्तापूर्ण शब्दों को याद किये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने कहा था कि श्रम ने ही मनुष्य को बनाया है।



उजड़े घर में

जब लोग किसी मकान को हमेशा के लिए छोड़ देते हैं, तो उसमें उनकी छोड़ी हुई चीज़ें हमेशा बाक़ी रह जाती हैं। खाली कमरों में काग़ज़ के ढेर, टूटे बर्तनों के टुकड़े और खाली मर्तबान बिखरे पड़े हैं। ठंडा चूल्हा टूटे-फूटे बर्तनों से ठुंसा हुआ है। खिड़की की सिल्ली पर भूले से रखा हुआ टूटे पेंदेवाला शीशे का एक लैंप इस गड़बड़ को उदासी के साथ देख रहा है।

उस कोने में एक पुरानी आरामकुरसी, जो दर्जनों जगह से फटी हुई है, शांतिपूर्वक ऊंघ रही है। यह घर के पुराने निवासियों के साथ नहीं गई, क्योंकि इसका एक टांग अरसे से ग़ायब है।

इन थोड़े टूटे-फूटे अवशेषों से कल्पना करना कठिन होगा कि परिवार यहां किस तरह रहता था। लेकिन पुरातत्वविदों के सामने जो समस्या आती है, वह एकदम यही है। किसी घर में सबसे बाद में प्रवेश करनेवाले वही होते हैं। आम तौर पर, उनका आगमन आख़िरी बाशिंदे द्वारा घर के तजे जाने के हज़ारों साल बाद होता है। कभी-कभी उन्हें बस गिरी हुई दीवारें और नींव के कुछ हिस्से ही मिल पाते हैं। इसीलिए हर बर्तन, हर भांडा उनके लिए एक नई खोज, हर टुकड़ा एक वरदान होता है।

जो उनकी भाषा समझता हो, उसे पुराने मकान कितनी बातें बता सकते हैं!

जीर्ण पाषाण के फटे-पुराने वस्त्र पहने मीनारों और काई चढ़ी दीवारों ने कितने लोगों और कितनी घटनाओं को देखा है!

लेकिन दूसरे, दुनिया में सबसे पुराने मकानों ने, प्रागैतिहासिक मानव की गुफाओं ने इससे भी ज़्यादा चीज़ों को देखा है।

ऐसी भी गुफाएं हैं, जिनमें लोग पचास हज़ार साल पहले रहा करते थे। सौभाग्य से, पहाड़ टिकाऊ पदार्थ के बने होते हैं और गुफा की दीवारें आदमी के बनाये मकानों की तरह चूर-चूर नहीं हो जातीं।

यह रही ऐसी ही एक गुफा। इसके बाशिंदे बदलते रहे हैं। गुफा की पहली स्वामिनी एक भूमिगत धारा थी। मिट्टी और कंकर उसी के लाये हुए हैं।

फिर पानी उतर गया। लोग गुफा में आकर रहने लगे। मिट्टी में मिले चकमक के भद्दे चाक़ू हमें उनके बारे में कुछ बताते हैं। प्रागैतिहासिक लोग इन चाक़ुओं का उपयोग जानवरों की लाशों को चीरने, हड्डियों से मांस उतारने और हड्डी का गूदा निकालने के लिए, हड्डियों को चिटकाने के लिए किया करते थे। इसका मतलब है कि ये लोग शिकारी थे।

कई साल बीत गये। शिकारियों ने गुफा को छोड़ दिया। फिर नये बाशिंदे आ गये। गुफा की दीवारें सपाट और चिकनी हैं। यह काम गुफावासी रीछ ने अपनी झबरी खाल को अपने घर की खुरदुरी पत्थर की दीवारों पर रगड़कर किया था। और यह रहा रीछ, या यह कहो कि यह रही चौड़े माथे और संकरी थूथनीवाली उसकी खोपड़ी।



निक्षेपों की अगली परत में हमें मानव-आवास के और चिह्न मिलते हैं। ये अलावों के कोयले और राख, चिटकी हुई हड्डियां और चकमक तथा हड्डी के औज़ार हैं। लोग एक बार फिर गुफा में आकर रहने लगे। हम उन्हें नहीं देख सकते, लेकिन हम उनके बारे में कई चीज़ों का पता लगा सकते हैं। इसके लिए हमारा उनके छोड़े हुए कचरे को देखना भर काफ़ी है। अनुभवहीन आदमी कह देगा कि ये बस चकमक के टुकड़े हैं। लेकिन अगर तुम ग़ौर से देखो, तो तुम भावी चाकू और सूए की अनगढ़ बाह्याकृति का अनुमान कर लोगे – एक औज़ार का काटनेवाला किनारा चाकू जैसा है, जबकि दूसरे का तेज़ की हुई नोक की शक्ल में है।



ये हमारे आधुनिक औज़ारों के पूर्वज हैं। इनमें से सबसे पुराना हमारे हथौड़े का पूर्वज है। यह चकमक का गोल कुल्हाड़ा है।

अगर हम गुफा की तली के कूड़े-कचरे को खोदें, तो हथौड़े से कुछ ही दूरी पर हमें एक निहाई भी मिल जायेगी।

हथौड़ा चकमक का बना है।

निहाई हड्डी की बनी है।

और देखने में यह आधुनिक निहाइयों से ज़रा भी नहीं मिलती, यद्यपि इसने अपना काम ईमानदारी के साथ पूरा किया है। यह बुरी तरह से कटी हुई और पिचकी हुई है, क्योंकि जब कोई औज़ार बनाया जाता था, तो निहाई को ही चोटों को झेलना पड़ता था।

और ख़ुद औज़ारों से हम क्या जान सकते हैं?

ये हमें बताते हैं कि गुफा के नये निवासी पुराने निवासियों की अपेक्षा कहीं उन्नत थे। बीच में जो हज़ारों वर्ष बीत चुके थे, उनमें मानविक उद्यम अधिक बहुरूपी और जटिल हो गये थे।

पुराने बाशिंदे सभी तरह के कामों को करने के लिए एक ही तेज़ किये हुए पत्थर का उपयोग करते थे। अब काटने के लिए एक औज़ार था, टुकड़े करने का दूसरा औज़ार था, खुरचने के लिए एक और था और छिदाई के लिए एक अलग ही औज़ार था। तेज़, पतली नोकवाला औज़ार पोशाकों में बदली जानेवाली खालों में छेद करने के लिए था। तेज़ दांतेदार किनारेवाला छोटा-सा औज़ार मांस काटने और खालों को खुरचने की खुरचनी था। तेज़ फलोंवाली नोक भाले की अनी थी।

आदमी के पास अब ज़्यादा काम था और परेशानियां भी पहले से ज़्यादा थीं। ज़माना बदल गया था, मौसम ठंडा और निष्ठुर था। आदमी को अब कपड़ों की, जो भालू की खाल से बनते थे, सर्दियों के लिए खाने के भंडार की और रहने के लिए गरम जगह की चिंता करनी पड़ती थी। कई अलग-अलग तरह के काम थे और उनके लिए अलग-अलग औज़ारों की ज़रूरत थी।

इस प्रकार, हमारे अपने सुदूर पूर्वज के निवासस्थान में हमें अपने औज़ारों और चीज़ों के पूर्वज मिलते हैं।

पर हमें केवल वे चीज़ें मिल पाती हैं, जिन्हें समय ने हमारे लिए बचाकर रखा है। लेकिन समय कोई अच्छा रखवाला नहीं है। वह केवल उन्हीं चीज़ों को सुरक्षित

रखता है, जो टिकाऊ पदार्थ की बनी हों। इस मामले में उसने केवल उन्हीं वस्तुओं को बचाकर रखा, जो पत्थर या हड्डी की बनी थीं। समय ने हर उस चीज़ को गुमा दिया, जो लकड़ी या जानवरों की खाल की बनी हुई थी। यही कारण है कि हमें सूआ तो मिल जाती है, मगर वे कपड़े नहीं मिल पाते, जिनके बनाने में इसने मदद की थी: यही कारण है कि हमें चकमक की अनी तो मिल जाती है, मगर उसका लकड़ी का दस्ता नहीं मिल पाता।

शेष वस्तुओं में जो सुराग़ मिलते हैं, उनसे हमें विलुप्त वस्तुओं के बारे में अनुमान लगाना पड़ता है। हमें जो धुंधले चिह्न और टुकड़े मिलते हैं, उनसे हमें उन वस्तुओं को पुनर्निर्मित करना पड़ता है, जो कई हज़ार साल पहले मिट्टी में बदल चुकी हैं।

ख़ैर, चलो अपनी खोज जारी रखें।

पुरातत्वविद जब खंडहर में खुदाई करता है, तो वह आम तौर पर ऊपर से शुरू करता है और नीचे की तरफ़ बढ़ता जाता है – सबसे पहले सबसे ऊपरी परतों की जांच की जाती है, फिर वह अधिकाधिक नीचे की तरफ़, धरती में और-और गहरे, इतिहास की गहराई में खोदता चला जाता है। पुरातत्वविद मानो किताब को उलटा पढ़ रहा है, बिलकुल अंतिम अध्याय के अंत में शुरू करके पहले अध्याय पर समाप्त कर रहा है। हमने अपनी कहानी को दूसरे तरीक़े से शुरू किया है। हमने सबसे नीचे की परतों से, गुफा के इतिहास के सबसे पहले अध्यायों से, शुरूआत की है। और अब हम अधिकाधिक ऊपर की ओर जायेंगे, आधुनिक काल के अधिकाधिक निकट आते जायेंगे।

तो इसके बाद गुफा में क्या हुआ?

निक्षेपों की परतों का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि लोगों ने गुफा को कई बार छोड़ा और कई बार उसमें लौटकर वापस आये। जब गुफा में आदमी नहीं रहते थे, तो उसमें लकड़बग्घे और रीछ आकर रहने लगते थे, उसके भीतर मिट्टी और धूल की परतें जमा होती जाती थीं। छत की चट्टान के टुकड़े गुफा के फ़र्श पर गिरते रहते थे, और कई वर्षों के बाद, जब कोई नया क़बीला फिर उसे ढूंढ़ता था, तो वहां उसके पुराने निवासियों के कोई सुराग़ नहीं मिलते थे।

कितने ही वर्ष और शताब्दियां और सहस्राब्दियां बीत गईं। लोगों ने बाहर खुले में मकान बनाना शुरू कर दिया, उन्होंने प्राकृतिक संरक्षण का उपयोग करना बंद कर दिया। गुफा आखिर पूरी तरह से तज दी गई। बीच-बीच में हरी-भरी पहाड़ी चरागाहों में अपने रेवड़ चराते चरवाहे दिन दो दिन के लिए उसमें ठहर जाते, या बारिश में फंसे मुसाफ़िर गुफा में बसेरा ले लिया करते।

और फिर गुफा के इतिहास के अंतिम अध्याय का आरंभ हुआ। लोग एक बार फिर गुफा में आये। लेकिन इस बार वे आश्रय लेने के लिए नहीं आये, वे इस गुफा में जो लोग कभी रहते थे, उनके बारे में जितना हो सकता था, उतना जानने के लिए आये थे।

बाद में आनेवाले ये लोग प्राचीन काल के पत्थर के औज़ारों को खोदने के लिए इस्पात के आधुनिक औज़ारों से लैस होकर आये थे।

और परत के बाद परत को खोदकर इन अनुसंधानकर्ताओं ने गुफा के इतिहास को आदि से अंत तक पढ़ लिया।

उन्हें जो औज़ार मिले थे, उनकी तुलना करके वे देख सकते थे कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी किस प्रकार विभिन्न हुनरों और मानविक अनुभव में वृद्धि होती गई थी। उन्होंने देखा कि भद्दे औज़ारों की जगह दूसरे औज़ारों ने ले ली थी, जो प्रागैतिहासिक काल के बीतते जाने के साथ अधिकाधिक अच्छे और बहुरूपी होते चले गये थे। जैसे भद्दे कुल्हाड़े की जगह पहले तिकोने चाक़ुओं और अर्धगोलाकार खुरचनियों ने ले ली और बाद में चकमक के सुघड़ टुकड़ों से बने तरह-तरह की अनियां, खुरचनियां, बरमे और सूए आ गये। इसके बाद नई चीज़ों – हड्डी और बारहसिंघे के सींगों – के बने औज़ार चकमक के औज़ारों के नियमित संकलन में सम्मिलित हो गये। हड्डी, जानवरों की खालों और लकड़ी पर काम करने के लिए विशेष औज़ार थे। प्रागैतिहासिक मनुष्य हड्डियों को काटने का औज़ार, खालों की खुरचनी और लकड़ी में छेद करने का बरमा बनाने के लिए उसी चकमक का उपयोग करता था। उसके कृत्रिम पंजे और दांत समय के साथ अधिक तेज़ और कई प्रकार के होते जा रहे थे और जिस हाथ का इस्तेमाल वह अपना शिकार पकड़ने के लिए करता था, वह लंबा होता जा रहा था।

लंबा हाथ



जब प्रागैतिहासिक मानव ने डंडे में चकमक की अनी लगाकर भाला बनाया, तो उसने अपने हाथ को लंबा बना लिया।

इसने मनुष्य को अधिक शक्तिशाली और ज़्यादा बहादुर बना दिया।

पहले, अगर उसका अचानक रीछ से सामना हो जाता था, तो इस बालदार गुफावासी से लड़ने की हिम्मत न होने के कारण वह मारे डर के भाग खड़ा होता था। छोटे से जानवर को वह बिना किसी ख़ास परेशानी के पकड़ और मार सकता था, लेकिन रीछ से भिड़ने की उसमें हिम्मत न थी। वह इस बात को भली भांति जानता था कि रीछ के तेज़ पंजों से वह कभी नहीं बच सकता।

लेकिन यह तब की बात है, जब मनुष्य के पास दोहरे फलोंवाला भाला नहीं था। भाले ने उसे अधिक साहसी बना दिया। रीछ को देखकर अब वह डर के मारे भागता नहीं था, साहस के साथ उस पर ख़ुद हमला करता था। रीछ शिकारी पर हमला करने के लिए अपने पिछले पैरों पर खड़ा हो जाता था। लेकिन इसके पहले कि उसके नख मनुष्य तक पहुंच पायें, शिकारी का दोहरे फलोंवाला भाला उसके झबरे पेट में घुस जाता था, क्योंकि भाला रीछ के पंजों से कहीं लंबा होता था।

घायल रीछ मारे ग़ुस्से के आगे झपटता, जिससे दोहरे फलोंवाला भाला उसके पेट में और भी गहरा धंस जाता।

लेकिन शिकारी का भाला अगर टूट जाता, तो उसे बचने का कोई मौक़ा न था।

तब रीछ उस पर टूट पड़ता और पंजे मार-मारकर उसे मार डालता।

लेकिन रीछ मुश्किल से ही कभी विजेता होता था। तुम्हें याद रखना चाहिए कि प्रागैतिहासिक काल में आदमी कभी अकेला शिकार करने नहीं जाता था। आगाही की पहली आवाज़ पर पूरा-का-पूरा गिरोह लपका चला आता था। लोग रीछ पर पिल पड़ते थे और उसे अपने पत्थर के छुरों से मार डालते थे।

दोहरे फलोंवाले भाले ने प्रागैतिहासिक मानव को ऐसा शिकार दे दिया, जिसका वह पहले स्वप्न भी नहीं देख सकता था। पुरातत्वविदों को अभी तक गुफाओं के भीतर पत्थर की सिल्लियों के बने गोदाम मिलते हैं। जब पत्थर की सिल्लियां अलग की जाती हैं, तो उनके नीचे रीछ की हड्डियों के बड़े-बड़े ढेर नज़र आते हैं। इसका मतलब सिर्फ़ यही हो सकता है कि शिकारी सफल हुए थे, क्योंकि उनके पास प्रत्यक्षतः इतना मांस था कि उसे जमा करके रखा जा सकता था।

अगर आदमी रीछ जैसे भारी-भरकम और सुस्त जानवरों का ही शिकार करता होता, तो दोहरे फलोंवाला भाला सभी संभव हथियारों में सबसे अच्छा रहता। लेकिन उसे और जानवरों का भी शिकार करना पड़ता था, ऐसे जानवरों का, जो स्वयं उसकी अपेक्षा कहीं तेज़ और फुर्तीले थे।

मैदानों में घूमते समय शिकारियों का सामना जंगली घोड़ों और बाइसनों के झुंडों से होता। वे चरते जानवरों की तरफ़ सरककर जाते, लेकिन पहली आहट या शोर सुनते ही पूरा झुंड धड़धड़ाता हुआ दूर भाग खड़ा होता।

इन जानवरों का शिकार करने के लिए प्रागैतिहासिक मनुष्य के हाथ अभी तक छोटे थे। लेकिन फिर स्वयं शिकार ने उसे एक नई और मज़बूत सामग्री प्रदान की – हड्डी।

उसने अपने चकमक के चाक़ू से हड्डी की एक हलकी और तेज़ अनी बनायी, जिसे उसने अब लकड़ी के छोटे से डंडे से बांध दिया। अब उसके पास एक नया हथियार था – नेज़ा। शिकारी दौड़ते घोड़े पर कभी अपना भारी दोहरे फलोंवाला भाला नहीं फेंक सकता था, लेकिन वह अपना हलका नेज़ा उस पर फेंक सकता था और बहुत दूर तक फेंक सकता था।

अब आदमी का हाथ और भी लंबा हो गया। एक हवाई हथियार – नेज़े – के उपयोग द्वारा शिकारी भागते घोड़े को उसे भाग जाने का मौक़ा दिये बिना मार सकता था।

ठीक है कि चलते निशाने को मारना आसान नहीं था। इसके लिए आदमी को शक्तिशाली हाथ और पैनी निगाह दरकार थी।

शिकारी नेज़ा फेंकना बचपन में ही सीख लेता था। फिर भी यह कोई असाधारण बात नहीं थी कि फेंके गये सौ नेज़ों में से बस दर्जन भर ही अपने निशाने पर जाकर बैठें।

सदियां हज़ारों वर्षों में परिणत हो गईं। जंगली घोड़ों और बाइसनों के झुंड





दुर्लभ होते जा रहे थे और प्रागैतिहासिक मनुष्य ही उनके विनाश का सबसे बड़ा कारण था। अब अधिकाधिक अवसरों पर शिकारी खाली हाथ ही घर वापस आते। उन्हें एक नये हथियार की ज़रूरत थी, एक ऐसे हथियार की, जो और भी ज़्यादा दूर के निशाने पर पहुंच सके। प्रागैतिहासिक मानव के लिए किसी और चीज़ का, किसी ऐसी चीज का आविष्कार करना आवश्यक था, जो उसके हाथ को और भी लंबा बना दे।

और उसने एक नये हथियार का आविष्कार कर लिया।

उसने एक पतले, मज़बूत पौधे को काटा, उसे मोड़कर कमान का रूप दिया और सिरों को एक डोरी से बांध दिया।

अब शिकारी के पास धनुष था।

जब वह प्रत्यंचा को धीरे-धीरे खींचता, तो वह उसकी तनी हुई पेशियों की समस्त शक्ति को एकत्र कर लेती।

और जब वह उसे छोड़ देता, तो वह तुरंत अपनी शक्ति वाण को प्रदान कर देती। और वाण शिकार के लिए झपट्टा मारते बाज़ की तरह उड़ चलता।

नेज़े के मुक़ाबले वाण कहीं ज़्यादा दूर तक जाता था। वाण और नेज़ा दो भाइयों की तरह एक से हैं, लेकिन वाण अपने भाई से हज़ारों साल छोटा है।

प्रागैतिहासिक मानव को वाण बनाने में हज़ारों साल लग गये।

आरंभ में वह धनुष से वाण नहीं, नेज़ा फेंका करता था। और इसी कारण उसे बड़े-बड़े धनुष बनाने पड़ते थे। कुछ तो मनुष्य जितने ही लंबे हुआ करते थे।

इस प्रकार मनुष्य ने अपने अशक्त, छोटे हाथ को लंबा और शक्तिशाली बनाया। जब उसने बारहसिंघे के सींगों के सिरे या मैमथ के दांत से तेज़ अनी बनाना सीख लिया, तो उसने जानवरों के ही हथियारों – उनके सींगों और दांतों – को उन्हीं के खिलाफ़ मोड़ दिया। और इसने मनुष्य को सभी प्राणियों में सबसे शक्तिशाली बना दिया।

जो हाथ नेज़े को फेंकता और धनुष की प्रत्यंचा को खींचता था, वह अब कोई साधारण हाथ न रहा था, अब वह एक भीमकाय प्राणी का, दानव का हाथ था।

और जब यह तरुण दानव शिकार पर जाता था, तो वह कोई एक ही पशु को नहीं फांसता या मारता था। वह पूरे-के-पूरे झुंडों का शिकार करता था।

ज़िंदा झरना

सोलूत्रे, फ़्रांस में एक खड़ी चट्टान है।

चट्टान की तली पर पुरातत्वविदों को हड्डियों का एक विशाल अंबार मिला। इन हड्डियों में मैमथों की स्कंधास्थियां, प्रागैतिहासिक सांड़ों के सींग और गुफावासी रीछों की खोपड़ियां भी थीं।

लेकिन घोड़ों की हड्डियां किसी भी अन्य जानवर की अपेक्षा अधिक थीं। कुछ जगहों पर तो आदमी से भी ऊंचे हड्डियों के ढेर थे। जब वैज्ञानिकों ने अंततः हड्डियों

के इस ढेर को छांटा, तो उन्होंने पता लगाया कि इसमें कम-से-कम एक लाख घोड़ों के अवशेष थे।

ऐसा विशाल अश्व समाधिस्थल कहां से आया होगा?

सूक्ष्म निरीक्षण करने पर वैज्ञानिकों को पता चला कि बहुत-सी हड्डियां चिटकी हुई, फटी हुई या जली हुई थीं। अतः यह साफ़ हो गया कि हड्डियां यहां प्रागैतिहासिक रसोइयों के हाथों में रहने के बाद आई थीं। यह असाधारण अश्व समाधिस्थल एक विशाल रसोई का खत्ता ही निकला।

हड्डियों का इतना विराट अंबार कोई साल भर के भीतर तो बन नहीं सकता था। इसलिए, लोग यहां प्रत्यक्षतः कई साल रहे थे।

लेकिन कूड़े का खत्ता यहां, चट्टान के तले में ही क्यों था? क्या यह कोई आकस्मिक बात ही थी, जिससे प्रागैतिहासिक शिकारियों ने अपना डेरा मैदान में समतल जगह के बजाय इसी जगह पर डाला?

जो हुआ, वह शायद यह था।

जब शिकारी मैदान में घोड़ों के किसी झुंड को देखते, तो वे ऊंची घास में छिपे-छिपे सावधानी के साथ पास खिसक आते! हर शिकारी के पास कई-कई नेज़े होते। आगेवाले शिकारी दूसरों को संकेत देकर बताते कि घोड़े कहां और कितने हैं और किधर जा रहे हैं।

इसके बाद शिकारी इकहरी पांत में बिखर जाते और झुंड के इर्द-गिर्द घेरे को छोटा करते जाते। घोड़े, जो पहले स्याह धब्बों जैसे नज़र आते थे, अब साफ़-साफ़ नज़र आने लगते थे। उनके सिर बड़े थे, टांगें पतली थीं और उनकी खाल पर बड़े-बड़े बाल थे।

झुंड चौकन्ना हो जाता। उन्हें शत्रु के होने का अनुमान हो जाता और वे भागने को तैयार हो जाते। लेकिन समय निकल चुका होता था। लंबी चोंचोंवाले बिना पर के पक्षियों के झुंड की तरह नेज़ों का एक बादल उन पर टूट पड़ता।

नेज़े जानवरों की जांघ, कमर और गरदन में घुस जाते। अब वे किधर जायें? घोड़े तीन तरफ़ से दुश्मन से घिर जाते। उनके तीनों तरफ़ जो ज़िंदा दीवार अचानक उठ खड़ी हुई थी, उसमें से बचने का रास्ता सिर्फ़ एक था। और झुंड शिकारियों से जान बचाता बेतरह हिनहिनाता उसी रास्ते से होकर भाग निकलता। लेकिन शिकारी तो ठीक इसी बात के इंतज़ार में थे। वे घोड़ों को पहाड़ी पर चट्टान की तरफ़ लगातार ऊंचे खदेड़ते जाते। दहशत से पागल हुए घोड़े इस बात की परवाह किये बिना भागते ही रहते कि वे कहां जा रहे हैं। उनकी लहराती हुई दुमें और पसीने से नहाई पीठें एक ज़िंदा धारा जैसी दिखाई देतीं। धारा पहाड़ी की चोटी तक पहुंच जाती। और तभी अचानक उनके सामने खड्ड आ जाता। अगले ही क्षण सबसे आगेवाले घोड़े उसके किनारे पर पहुंच जाते। वे आगे के खतरे को देखते और बुरी तरह फुफकारते हुए पिछली टांगों पर खड़े हो जाते। लेकिन अब बहुत देर हो चुकी थी। वे रुक नहीं सकते थे, क्योंकि पीछेवाले घोड़े उन्हें आगे धकेलते हुए चट्टान के नीचे गिरा देते थे।

और ज़िंदा धारा चोटी पर से नीचे तली पर क्षत-विक्षत देहों का ढेर बनने के लिए एक ज़िंदा झरने की तरह गुज़र जाती।

शिकार खत्म हुआ।

चट्टान की तली पर बड़े-बड़े अलाव जल रहे थे। बूढ़ों ने शिकार का बंटवारा किया, जो पूरे ही यूथ का माल था! लेकिन सबसे अच्छे-अच्छे टुकड़े सबसे बहादुर और निपुण शिकारियों को ही मिले।

हम जब घड़ी की तरफ़ देखते हैं, तो वह निश्चल प्रतीत होती है। लेकिन घंटा-दो-घंटा गुज़र जाने पर हम देखते हैं कि सूई आगे सरक आई है।

ज़िंदगी में भी यही बात है। अपने पास-पड़ोस में या स्वयं अपने तक में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उन पर हमारा तुरंत ध्यान नहीं जाता। हम सोचते हैं कि इतिहास की घड़ी की सूई निश्चल है। और कई वर्ष बाद जाकर ही हमारा ध्यान अचानक इस ओर जाता है कि सूई आगे सरक आई है, कि हम खुद बदल गये हैं, कि हमारे इर्द-गिर्द की हर चीज़ बदल गई है।



हम पुराने की नये से तुलना अपनी डायरियों, तसवीरों, अख़बारों और किताबों को देखकर कर सकते हैं। हमारे पास तुलना करने की चीज़ें हैं। लेकिन हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों के पास पुराने की नये से तुलना करने के लिए कुछ भी न था। उनका ख़याल था कि जीवन निश्चल, अपरिवर्तनशील है। पुराने की नये से तुलना किये बिना परिवर्तन को देख पाना उतना ही असंभव है, जितना घड़ी पर घंटों के अंकों के बिना उसकी सूई की गति को देखना।

पत्थर के औज़ार गढ़नेवाला हर कारीगर उस आदमी के हर तौर-तरीक़े की नक़ल करने की कोशिश करता, जिसने उसे अपना हुनर सिखाया था।

नया मकान बनाते समय औरतें चूल्हा बिलकुल उसी तरह बनातीं, जिस तरह उनके पहले उनकी नानियां-दादियां बनाया करती थीं।

शिकारी अपने शिकार को प्राचीन रिवाज के अनुसार ही मारा करते।

लेकिन फिर भी, बिना किसी का ध्यान गये, लोगों ने धीरे-धीरे अपने औज़ार, अपने रहने के स्थान और काम करने के अपने तरीक़े बदल दिये।

हर नया औज़ार आरंभ में बहुत-कुछ पुराने औज़ार जैसा ही होता था। पहला नेज़ा भाले से बहुत भिन्न नहीं था। लेकिन बाण और भाले में ज़मीन और आसमान का फ़र्क है। और तीर-कमान से शिकार और भाले से शिकार में ज़रा भी समानता नहीं है।

आदमी के केवल औज़ार और हथियार ही नहीं बदल गये थे – वह खुद भी बदल रहा था। यह बात उन ठठरियों से देखी जा सकती है, जो विभिन्न खुदाई-स्थलियों पर मिली हैं। अगर हम गुफा में पहले-पहल घुसनेवाले आदमी की तुलना उसे हिमयुग के अंत में छोड़नेवाले आदमी से करें, तो हमें लगेगा कि वे दो भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणी थे। निआंडरथाल-मानव गुफा में घुसनेवाला पहला मनुष्य था। उसकी कमर झुकी हुई थी, वह चलता क्या, लड़खड़ाता था, उसके चेहरे पर मुश्किल से ही कोई माथा था और ठोड़ी थी ही नहीं। लेकिन सुगठित शरीरवाला और लंबा क्रोमन्नन-मानव, जो गुफा से निकलनेवाला अंतिम मानव था, सूरत-शक्ल में हमसे मुश्किल से ही कुछ भिन्न था।

घर की कहानी का पहला अध्याय

जिस प्रकार मनुष्य का जीवन बदल गया, उसी प्रकार उसका आवास भी बदल गया। अगर हम उसके घर की कहानी लिखें, तो हमें गुफा से शुरुआत करनी पड़ेगी। प्रकृति द्वारा निर्मित इस आवास को प्रागैतिहासिक मानव ने बनाया नहीं, पाया था।

लेकिन प्रकृति कोई बहुत अच्छी भवन-निर्मात्री नहीं है। जब उसने पहाड़ों और पहाड़ी गुफाओं को बनाया, तो उसने इस बात का ज़रा भी ध्यान नहीं रखा कि कभी कोई इन गुफाओं में रहेगा भी। यही कारण है कि जब प्रागैतिहासिक लोग रहने के लिए कोई गुफा तलाश करते थे, तो उन्हें कदाचित ही कोई रहने लायक़ गुफा मिल पाती थी। या तो छत बहुत ही नीची होती, या उसका मुंह इतना छोटा होता कि रेंगकर भीतर जाना भी मुश्किल होता।

सारा-का-सारा गिरोह आवास को रहने लायक़ बनाने के काम में जुट जाता। वे गुफा के फ़र्श और दीवारों को चकमक की खुरचनियों और लकड़ी की बल्लियों से खुरचते और समतल बनाते।

दरवाज़े के पास वे चूल्हे के लिए एक गढ़ा खोदते और उसके चारों ओर पत्थरों की तह बिछा देते। माताएं ज़मीन में उथले गढ़े खोदकर और गढ़े की जगह उनमें चूल्हे की गरम राख बिछाकर अपने बच्चों के लिए "पालने" बनातीं।

गुफा के किसी दूरवर्ती कोने में वे रीछ के मांस और खाने-पीने के दूसरे सामान का गोदाम बना लेते।

प्रागैतिहासिक लोग इस प्रकार प्रकृति द्वारा निर्मित गुफा को – उसे अपने श्रम द्वारा मानव के आवास में परिणत करके – सुधारते थे।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, लोग अपने आवासों को सुसज्जित करने के अधिकाधिक प्रयास करने लगे।

अगर उन्हें ऊपर लटकी चट्टान की प्राकृतिक छत मिल जाती, तो वे उसके इर्द-गिर्द दीवारें बना देते। अगर उन्हें कोई ऐसी चीज़ मिल जाती जो चार दीवारों का काम दे सके, तो वे उस पर छत डाल देते।

दक्षिणी फ़्रांस के पहाड़ों में अभी तक एक प्रागैतिहासिक आवास के अवशेष मिल सकते है। यहां के रहनेवालों ने इसे एक अजीब नाम दिया है। वे इसे "शैतान का चूल्हा" कहते हैं। उनका ख़याल था कि बड़ी-बड़ी चट्टानों के बने इस आश्रय-स्थल में शैतान ही चूल्हा बनाकर ताप सकता था। अगर उन्हें ख़ुद अपने प्रागैतिहासिक पूर्वजों की ज़रा ज़्यादा जानकारी होती, तो वे समझ जाते कि शैतान का चूल्हा इन्सान के हाथों का बनाया हुआ है।

यहां पर प्रागैतिहासिक शिकारियों को ऊपर लटकी हुई एक चट्टान के नीचे दो दीवारें मिल गई थीं। ये दीवारें पहाड़ पर से खिसककर आये पत्थरों से बनी थीं। उन्होंने दो दीवारें और बना दीं और उन्हें उन दो दीवारों के साथ जोड़ दिया, जो उन्हें वहां मिली थीं। एक दीवार पत्थर की बड़ी-बड़ी सिल्लियों की बनी थी और दूसरी आपस में गूंथकर बुनी हुई डालियों से अपनी जगह पर जमाई गई बल्लियों की बनी थी और उस पर जानवरों की खालें मढ़ी हुई थीं। इसका हम अनुमान ही कर सकते हैं कि चौथी दीवार कैसी रही होगी, क्योंकि काल ने इसे कभी का धूल में बदल दिया है।

जमीन में खुदे एक बड़े गढ़े के इर्द-गिर्द दीवारें थीं। इस गढ़े के पेंदे में पुरातत्व-विदों को चकमक की छिपटियां और हड्डी तथा सींग के बने औज़ार मिले।

शैतान का चूल्हा आधा घर और आधी गुफा है। यहां से असली घर बनाना ज़्यादा दूर नहीं रहा था, क्योंकि जहां प्रागैतिहासिक मानव ने एक बार दो दीवारें बनाना सीख लिया, तो जल्दी ही उसने चार दीवारें बनाना भी सीख लिया।

और इस प्रकार जल्दी ही पहले मकान बनने लगे – अब गुफाओं में नहीं, ऊपर लटकी चट्टान की छाया में नहीं, बल्कि खुले में।

प्रागैतिहासिक शिकारियों का घर

१६२५ के शरद में दोन नदी के तट पर गागारिनो गांव का अंतोनोव नामक किसान अपने अहाते में मिट्टी खोद रहा था। उसे अपनी नई खत्ती की लिपाई करने के लिए मिट्टी चाहिए थी।

लेकिन उसका फावड़ा बार-बार जमीन में गड़ी हड्डियों से ही जा टकराता था।

तभी गांव के स्कूल के अध्यापक व्लादीमिरोव उधर से गुज़रे। अंतोनोव ने उन्हें बुलाया और बोला :

"पता नहीं कहां से इतनी सारी हड्डियां यहीं आ दबी हैं! मैं तो खुदाई भी नहीं कर सकता – मेरा फावड़ा ही टूट जाता।"

अंतोनोव अगर किसी और आदमी से बात करता, तो शायद वह मिनट भर को रुककर उसकी बात सुन लेता और फिर अपने रास्ते चला जाता।

लेकिन गांव के स्कूल के अध्यापक को विज्ञान से बड़ा लगाव था।

वह अहाते में आये और उन्होंने पीले दांत के एक बड़े टुकड़े को बारीकी से देखा, जो घिसकर चिकना किया हुआ नज़र आता था।

यह साफ़ था कि इतना बड़ा दांत विशाल मैमथ का ही हो सकता था।

मगर दोन के किनारे मैमथ! यह सचमुच अचंभे की बात थी।

अध्यापक महोदय ने इन हड्डियों के एक ढेर को गाड़ी में लादा और उन्हें निकटतम नगर ले गये, जहां एक छोटा-सा स्थानीय संग्रहालय था।

अगर तुमने कोई ऐसा छोटा संग्रहालय देखा होगा, तो तुम्हें पता होगा कि उसके नुमायशी संदूकों में अजीब-से-अजीब चीज़ें एक-दूसरे के बराबर-बराबर ही पड़ी होती हैं। एक कमरे में तुम्हें संगमर्मर की बनी कामदेव की मूर्ति और सत्रहवीं सदी के किसी सामंत का तैलचित्र – दोनों मिल जायेंगे।



दूसरे कमरे में स्थानीय खनिजों और पौधों के संग्रह के ही बराबर अपने बाल भरे हाथ में गदा लिये एक पिथेकेंथ्रोपस की कागज़ की लुगदी की बनी मूर्ति भी रखी मिल जायेगी।

व्लादीमिरोव जिस संग्रहालय में गागारिनो गांव में मिली हाड्डियां लेकर आये वह बिलकुल ऐसा ही था।

संग्रहालय के अध्यक्ष मैमथ के दांत और दूसरी हड्डियों को बस अपनी सूची में दर्ज करके खनिजों के नमूनों और पिथेकेंथ्रोपस के साथ प्रदर्शन के लिए रख सकते थे।

लेकिन उन्होंने इससे कहीं ज्यादा किया। उन्होंने तुरंत मानवविज्ञान और जाति-विज्ञान-संग्रहालय के नाम एक पत्र लेनिनग्राद भेजा, जहां नेवा नदी के तट पर एक पुरानी इमारत में रूसी वैज्ञानिकों और अन्वेषकों की दी हुई संसार के सभी भागों से जमा की गयी विचित्र वस्तुएं संग्रहीत हैं।

जल्दी ही लेनिनग्राद से जम्यातिन नामक एक पुरातत्वविद गांव के स्कूल के अध्यापक के साथ खुदाई-कार्य जारी रखने के लिए गागारिनो पहुंच गये।

हमारे देश में ऐसा अकसर होता रहता है – प्राचीन संस्कृति की किसी वस्तु के हाथ लगने पर अध्यापक या ग्राम पुस्तकालय का अध्यक्ष अपनी खोज के बारे में निकटतम संग्रहालय को लिखता है और शहर से खुदाई-कार्य का निदेशन करने के लिए वैज्ञानिक पहुंच जाते हैं।

गागारिनो में उन्हें क्या मिला?

खुदाई के प्रारंभिक दिनों में ही उन्हें चकमक की खुरचनियां और चाक़ू, हड्डी का एक सूआ, बर्फ़िस्तानी लोमड़ी का एक आरपार छिदा हुआ दांत, चूल्हे से निकले कोयले में मैमथ और दूसरे जानवरों की हड्डियां मिलीं।

अंतोनोव की ख़त्ती की दीवारों की लिपाई में जो मिट्टी लग चुकी थी, उसमें भी इसी तरह के चकमक के औज़ार और दांतों के टुकड़े पाये गये। मिट्टी में इनके इतने टुकड़े मिले हुए थे कि किसान परिवार ने उन्हें निकालने के पीछे वक़्त ख़राब करना ठीक न समझा था।

वे महीनों खुदाई करते रहे और नई-नई चीज़ें पाते रहे। उनकी खोजों में औज़ार, गहने, छोटी-छोटी मूर्त्तियां और जानवरों की हड्डियां भी थीं। हर चीज़ को बड़ी सावधानी के साथ पैक करके लेनिनग्राद भेज दिया गया। वहां विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों ने आगे का काम संभाल लिया।

खनिजविदों ने यह निर्धारित किया कि औजारों के लिए कौनसा पत्थर काम में लाया गया था। फ़ॉसिलविदों ने यह पता लगाने के लिए हड्डियों का अध्ययन किया कि ये प्रागैतिहासिक लोग किन जानवरों का शिकार करते थे। निपुण कारीगरों ने समय के प्रभाव से हानिग्रस्त हड्डी की तराशी हुई मूर्त्तियों को उनका पूर्वरूप प्रदान किया।



इसी बीच पुरातात्विक खुदाई के सभी नियमों का पालन करते हुए पुरातत्त्वविदों के एक दल ने खुदाई का काम जारी रखा। और जल्दी ही उनके सामने इन प्रागैतिहासिक शिकारियों के आवास का एक स्पष्ट चित्र उभरकर आने लगा।

आकार में यह एक गोल खाई जैसा था। दीवारें बाहर की ओर से पत्थर की सिल्लियों और मैमथ के दांतों और जबड़ों की हड्डियों से संरक्षित थीं। दीवारें ज़्यादातर जानवरों की खालों से मढ़े लकड़ी के खंभों की बनी थीं। खंभे ऊपर आपस में मिलकर छत बनाते थे। पत्थर की भारी सिल्लियां और मैमथों की हड्डियां बाहरी दीवारों को मजबूती देने के लिए ऐन वहां तक धकेलकर ले आई गई थीं।

बाहर से आवास एक बड़े तंबू जैसा दिखाई देता था। दीवारों के पास उन्हें हड्डी की बनी दो स्त्रियों की नक़्क़ाशी की लघु मूर्त्तियां मिलीं। उनमें से एक बेहद मोटी थी और दूसरी पतली थी और मूर्त्तिकार ने संभवतः इन्हें जीवित स्त्रियों को

देखकर बनाया था। स्त्रियों के अलंकारपूर्ण केश-शृंगार की बड़ी बारीकी से नक़्क़ाशी की गई थी।

फ़र्श के बीच में खुदा एक गोल गढ़ा संदूक़ का काम देता था। उसमें मिली चीज़ें बड़ी मूल्यवान रही होंगी — हड्डी की एक सूई, बर्फ़िस्तानी लोमड़ी के दांतों के बने मनके और मैमथ की पूंछ।

प्रागैतिहासिक निवासी सिलाई के लिए सूई का इस्तेमाल करते थे, मनके गहने थे, लेकिन मैमथ की पूंछ को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने इतना जतन क्यों किया था?

ऐसी और भी उत्कीर्ण लघु मूर्त्तियां मिली हैं, जो प्रागैतिहासिक शिकारियों को अपने कंधों पर जानवरों की खालें डाले और पीछे दुम लटकाये दिखाती हैं, जिससे कि वे उन जानवरों जैसे लगें, जिनकी खालें वे पहने हुए हैं। उन्होंने ऐसा क्यों किया? इस सवाल पर हम बाद में विचार करेंगे। हम अभी प्रागैतिहासिक मानव के आवास के बारे में जो कुछ जान सकते हैं, वही जानने की कोशिश कर रहे हैं।

गागारिनो गांव में जैसा शिविरस्थल मिला है, सोवियत संघ के विभिन्न भागों में ऐसे कई और शिविरस्थल मिले हैं। वोरोनेज के पास एक छोटे से गांव में इतनी हड्डियां मिली थीं कि थोड़े ही दिनों में वह कोस्तेंकी (हड्डियों का गांव) के नाम से मशहूर हो गया।

ये हड्डियां मैमथ, गुफा सिंह, गुफा रीछों और घोड़ों की थीं, उन जानवरों की जिनका प्रागैतिहासिक लोग शिकार करते थे।

दो सोवियत पुरातत्त्वविदों प० येफ़ीमेंको तथा स० ज़म्यातिन ने कोस्तेंकी शिविर-स्थल का विशद अध्ययन किया।



उन्होंने पाया कि कोस्तेंकी में शिकारी एक नहीं, बल्कि कई खाइयों में रहते थे और वे सब मिलकर शिकार किया करते थे। यहां चकमक और हड्डी के कई सुनिर्मित औज़ार और हाथी दांत की कई उत्कीर्ण स्त्री मूर्त्तियों भी मिली थीं। उनमें से एक गुदी हुई थी और चमड़े का एप्रन पहने थी। इसका मतलब है कि ये लोग चमड़े को कमाना जानते थे।

इन प्रागैतिहासिक शिकारियों के आवास हमारे अपने घरों जैसे ज़रा भी नहीं थे। बाहर से उनका जो हिस्सा दिखाई देता था, वह बस छत थी, जो एक गोल टीले जैसी नज़र आती थी। प्रवेश "चिमनी" में होकर होता था, क्योंकि अकेला रास्ता छत में वह छेद ही था, जिससे आग का धुआं बाहर जाता था।

मिट्टी की दीवारों के साथ-साथ बेंचों की जगह मैमथों के जबड़ों की हड्डियां थीं। धरती उनकी शैया भी थी। वे लोग एक समतल बनाई हुई आयताकार जगह पर सोते थे और मिट्टी के ढेर तकियों का काम देते थे।

हड्डी की बेंचों और मिट्टी के पलंगोंवाले इस घर की मेज़ें पत्थर की बनी हुई थीं।

सबसे रोशनीदार जगह, चूल्हे के पास, काम करने का एक ठीहा क़ायम किया गया था। यह पत्थर की चिकनी सिल्लियों का बना था और इस पर पुरातत्त्वविदों को बहुत से औजार, चकमक और हड्डी की छिपटियां और टुकड़े और अधूरी चीजें

मिलीं। मेज़ पर हड्डी के कुछ मनके बिखरे पड़े थे। कुछ मनके चिकने किये हुए थे और उनमें छेद किये हुए थे। बाक़ी अभी तक अधूरे ही थे। कारीगर ने हड्डी की एक छिपटी पर कई जगह खांचे डाल दिये थे, लेकिन उसे मनकों में काटने का उसे समय नहीं मिला था। कुछ ऐसा हो गया था जिसके कारण लोगों को अपना काम रोककर घर को छोड़ देना पड़ा था। ख़तरा सचमुच भारी ही रहा होगा, क्योंकि अन्यथा वे ये सुंदर फल, हड्डी की छेददार सूइयां या विभिन्न कामों के चकमक के चाक़ुओं को छोड़कर न जाते।

इन सब औज़ारों का बनाना आसान काम न था। इस आवास में मिली हर चीज पर कितने ही घंटे लगाये गये थे। मिसाल के तौर पर, यहां हड्डी की एक सूई है, जो मानव-जाति के इतिहास में पहली सूई है। कितनी मामूली चीज़ है, लेकिन इसके बनाने के लिए बड़ी निपुणता आवश्यक थी।



एक अन्य शिविरस्थल पर हड्डी की सूइयां बनाने की एक पूरी की पूरी शिल्पशाला सभी आवश्यक साज़-सामान, हड्डी की छिपटियों और आधी-तैयार सूइयों के साथ मिली। हर चीज़ जिस हालत में छोड़ी गई थी, बिलकुल उसी हालत में मिली थी।

हमारी आज की दुनिया में हड्डी की सूइयों का अगर कोई उपयोग हो सकता होता, तो वस्तुतः कल उत्पादन शुरू किया जा सकता था।

लेकिन इस काम को पूरा कर सकने लायक़ एक भी कारीगर को ढूंढ़ने में हमें बेशक बड़ी परेशानी होती।

हड्डी की सूई इस तरह बनाई जाती थी। सबसे पहले, चकमक के चाक़ू से ख़रगोश की हड्डी से एक छिपटी अलग कर ली जाती थी। इसके बाद इसे सूई जैसा बना लिया जाता था। फिर एक नुकीले चकमक से उसमें छेद किया जाता। और अंत में, सूई को पत्थर की सिल्ली पर घिसकर चिकना कर लिया जाता था।

एक सूई के बनाने में इतने औज़ारों और इतने समय की जरूरत पड़ती थी!

हर क़बीले में ऐसे कुशल कारीगर नहीं थे जो हड्डी की सूइयां बना सकते हों। हड्डी की सूई प्रागैतिहासिक काल में सबसे मूल्यवान चीज़ों में एक थी।

आओ, प्रागैतिहासिक शिकारियों के शिविरस्थल पर एक नज़र डालें।

बर्फ़ से ढंके स्तेपी के बीच में हमें कई छोटे-छोटे टीले नज़र आते हैं। उनमें से हर किसी से धुआं उठ रहा है। हम एक टीले के पास आते हैं और हमारी आंखों को पानी से भर देनेवाले धुएं के बादलों की परवाह किये बिना चिमनी से होकर भीतर उतरते हैं।

मान लिया कि हमने जादू की टोपी पहन ली है और अदृश्य हो गये हैं। कोई भी हमें देख नहीं सकता। आवास के भीतर धुआं भरा है, अंधेरा है और शोर है। भीतर कम-से-कम दस बड़े और इनसे अधिक बच्चे हैं।

जब हमारी आंखें धुएं की अभ्यस्त हो जाती हैं, तो हमें लोगों की सूरतें और देह नज़र आने लगती हैं। उनमें वानर जैसा कुछ भी नहीं है। वे लंबे, सुगठित और शक्तिशाली हैं। उनकी कपोलास्थियां उभरी हुई और आंखें सटी हुई हैं। उनके सांवले बदन पर लाल रंग से डिज़ाइन बने हुए हैं।

औरतें फ़र्श पर एक घेरे में बैठी हड्डी की अपनी सूइयों से जानवरों की खालों

के कपड़े सी रही हैं। बच्चों के पास खिलौने नहीं हैं और वे एक घोड़े की टांग और एक बारहसिंघे के सींग से खेल रहे हैं। चूल्हे के पास एक कारीगर पालथी मारे पत्थर के ठीहे के पास बैठा है। वह लकड़ी के एक डंडे में हड्डी का फल लगाकर सूआ तैयार कर रहा है। उसकी बग़ल में एक और कारीगर चकमक के एक चाक़ू से एक डिज़ाइन खोद रहा है।

चलो, ज़रा पास चलें और देखें कि यह डिज़ाइन क्या है। थोड़ी-सी दक्ष रेखाओं द्वारा उसने हड्डी की पटरी पर चरते हुए घोड़े की आकृति बना दी है।

बड़े सब्र और कुशलता के साथ उसने घोड़े की सुंदर टांगें, सीधी गर्दन, छोटे-से अयाल और बड़ा सिर बना दिया है। घोड़ा एकदम जानदार बना है और लगता है कि अभी चल पड़ेगा, क्योंकि अपने मानस नेत्र से कलाकार उसकी आकृति के हर ब्योरे को देख रहा है।

अब चित्र पूरा हो गया है। लेकिन कलाकार यहीं बस नहीं कर देता – वह अपना काम जारी रखता है। वह घोड़े के आरपार एक, फिर दूसरी और फिर तीसरी तिरछी रेखा बना देता है। घोड़े के शरीर पर एक अजीब आकृति नज़र आने लगती है। प्रागैतिहासिक कलाकार कर क्या रहा है? वह एक ऐसे चित्र को क्यों बिगाड़े दे रहा है, जिस पर आज के किसी कलाकार को भी अभिमान हो सकता था?

चित्र अधिकाधिक जटिल होता जाता है। और फिर, हम हैरान होकर देखते हैं कि घोड़े के चित्र के ऊपर एक तंबू का चित्र बन गया है। इसी के बराबर कलाकार एक तंबू और बना देता है और फिर एक और। अरे, यह तो एक शिविरस्थल है!

इस अजीब चित्र का अर्थ क्या है? क्या इसे इस तरह बनाना बस कलाकार के मन की मौज ही थी?

नहीं, इन अजीब चित्रों के पूरे-के-पूरे संग्रह प्रागैतिहासिक शिकारियों की गुफाओं में मिले हैं। एक मैमथ का चित्र था, जिसके ऊपर दो तंबू बने हुए हैं। बाइसन के एक चित्र पर तीन तंबू थे। और यह रहा एक पूरा चित्र। उस पर बीच में बाइसन की आधी खाई हुई लाश है। केवल सिर, रीढ़ और टांगों को नहीं छुआ गया है। बड़ी टेढ़ी नाकवाला दढ़ियल सिर अगली टांगों के बीच में पड़ा है। लाश के बराबर लोगों की दो क़तारें खड़ी हैं।

हड्डी की पटरियों, पत्थर की सिल्लियों और चट्टानों पर पशुओं, लोगों और तंबुओं के ऐसे कितने ही अजीब चित्र हैं। लेकिन सबसे अधिक ये गुफाओं की दीवारों पर ही मिलते हैं।

जब हम अपनी गुफा में खुदाई कर रहे थे, तो हमें दीवारों पर कोई चित्र नहीं मिले थे।

लेकिन हम तो गुफा के मुंह पर ही थे, जहां लोग खाते, सोते और काम करते थे।

अब हमें ज़्यादा भीतर चलना चाहिए और हज़ारों मीटर तक जानेवाली टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगों में जाकर हर कोने की जांच करनी चाहिए।

भूमिगत चित्रशाला

अपनी टार्चें लें और गुफा के अंदर चलकर खोज शुरू करें। हमें हर मोड़ और हर चौराहे को याद रखना होगा, क्योंकि यहां रास्ता भूल जाना मामूली बात है।

पत्थर का गलियारा लगातार संकरा होता जाता है। छत से पानी टपक रहा है। हम अपनी टार्चें उठाते हैं और दीवारों की जांच-पड़ताल करते हैं।

भूमिगत धाराओं ने गुफा को चमकते स्फटिकों से सजा दिया है। लेकिन यहां कभी किसी आदमी के हाथों ने काम नहीं किया।

हम गुफा में और आगे बढ़ जाते हैं। तभी अचानक कोई चिल्लाता है:

"देखो!"

दीवार पर बाइसन का एक बड़ा चित्र है। यह लाल और काले रंगों से रंगा हुआ है। जानवर अपनी अगली टांगों पर गिर पड़ा है। उसकी कूबड़दार पीठ में कितने ही सूए धंसे हुए हैं।

हम चित्र के सामने ख़ामोश होकर देर तक खड़े रह जाते हैं। यह दसियों हज़ार साल पहले के किसी चित्रकार का बनाया हुआ चित्र है।

कुछ आगे चलकर हमें एक चित्र और मिलता है। एक विचित्र दैत्य नाचता सा लगता है। यह या तो कोई आदमी है, जो जानवर जैसा लगता है, या आदमी जैसा दीखनेवाला कोई जानवर है। दैत्य का सिर लंबे, मुड़े हुए सींगोंवाला है, कूबड़-दार पीठ है और बालदार दुम है। इसके हाथ और पैर आदमी के हैं। उसके हाथ में एक धनुष है।

बारीकी से देखने पर दैत्य बाइसन की खाल पहने आदमी निकलता है।

आगे चलकर एक दूसरा चित्र है, फिर तीसरा और फिर चौथा।

यह कैसी विचित्र चित्रशाला है?

आजकल कलाकार ख़ूब रोशनीदार कलाकक्षों में काम करते हैं। चित्रों को चित्रशालाओं में इस तरह लटकाया जाता है कि उन पर हमेशा ख़ूब रोशनी पड़े।

क्या बात रही होगी कि इन प्रागैतिहासिक लोगों ने एक अंधेरी गुफा में, आदमी की आंखों से इतनी दूर एक चित्रशाला बनाई?

यह एकदम साफ़ है कि कलाकार ने ये चित्र औरों के लिए नहीं बनाये।

लेकिन बात अगर यही है, तो उसने इन्हें बनाया ही क्यों? जानवरों के मुखौटे लगाये इन विचित्र नाचती आकृतियों का मतलब क्या है?

पहेली और उसका हल

"कई शिकारी नाच में भाग लेते हैं। हर किसी के सिर पर बाइसन की खाल है या उसका सींगदार मुखौटा है। हर शिकारी के पास एक धनुष या भाला है। नाच बाइसन के शिकार का प्रतीक है। जब कोई नाचनेवाला थक जाता है, तो वह गिरने का अभिनय करता है। तब कोई और शिकारी उस पर भोथरा वाण छोड़ता है। 'बाइसन' घायल हो जाता है। उसे उसकी टांगों से पकड़कर घेरे के बाहर घसीट लिया जाता है और दूसरे लोग उस पर अपने चाक़ू चलाने का नाटक करते हैं। फिर वे उसे छोड़ देते हैं और घेरे में उसकी जगह कोई और नर्तक ले लेता

है, जो खुद भी बाइसन का मुखौटा लगाये होता है। कभी-कभी तो नाच क्षण भर के लिए भी रुके बिना दो-दो या तीन-तीन सप्ताह तक चलता रहता है।"

एक दर्शक ने आदिम शिकारियों के नाच का इस प्रकार वर्णन किया है। लेकिन उसने इसे देखा कहां होगा?

उसने इसे उत्तरी अमरीका के मैदानों में देखा था, जहां कुछ आदिवासी क़बीलों ने प्राचीन शिकारियों के रिवाजों को अभी तक बरक़रार रखा है।

इस प्रकार, एक अन्वेषक की डायरी में हमें अचानक उसी शिकार-नृत्य का वर्णन मिल जाता है, जिसे प्रागैतिहासिक चित्रकार ने गुफा की दीवार पर चित्रित किया था।



अब हम इस रहस्यमय चित्र का मतलब जान गये हैं। लेकिन इस पहेली को हल करने में एक पहेली और आ खड़ी हुई। यह कैसा नाच है, जो हफ़्तों चलता है?

नृत्य को हम एक ऐसी चीज़ समझते हैं, जिसे या तो आनंद के लिए या कला के एक रूप में किया जाता है? क्या अमरीकी आदिवासी तीन-तीन हफ़्ते थककर गिर जाने तक केवल आनंद के लिए ही नाचते थे, या इसलिए कि वे बड़े कलाप्रेमी थे? फिर उनका नृत्य नाच जैसा कम और संस्कार जैसा ज्यादा लगता है।

जादूगर अपनी चिलम से धुएं को किसी खास दिशा में छोड़ता है। नाचनेवाले किसी काल्पनिक पशु का पीछा करते हुए उसी दिशा में जाते हैं। जादूगर नृत्य का धुएं से संचालन करता हुआ नर्तकों को उत्तर या दक्षिण, पूर्व या पश्चिम की ओर चलाता है।

लेकिन नृत्य का संचालक अगर जादूगर हो, तो इसका मतलब केवल यही हो सकता है कि यह नाच नहीं, बल्कि जादू-टोना है।

अमरीकी आदिवासी आशा करते थे कि अपनी इन विचित्र हरकतों से वे बाइसनों पर टोना करके उन्हें जादू की विचित्र शक्ति के प्रभाव से प्रेअरी (विशाल मैदान) प्रदेश से निकल आने के लिए प्रलोभित कर लेंगे।

तो यह मतलब है गुफा की दीवार पर बनी नाचती आकृति का! वह कोरा नर्तक ही नहीं, बल्कि एक टोना करनेवाला आदमी भी है। और जो चित्रकार मशाल की रोशनी में चित्र बनाने के लिए ज़मीन के इतना नीचे गया, वह केवल चित्रकार ही नहीं, ओझा भी था।

जानवरों के मुखौटे लगाये शिकारियों और घायल बाइसनों का चित्र बनाकर वह अपना जादू-टोना कर रहा था, शिकार को सफल बनाने के लिए वशीकरण कर रहा था।

और उसे पक्का विश्वास था कि नृत्य-संस्कार से शिकार में सहायता मिलेगी। यह बात हमें जंगली और बेतुकी दोनों लगती है।

हम जब कोई नया मकान बनाना शुरू करते हैं, तो नींव के पास मेमारों और बढ़इयों की हरकतों की नक़ल करते हुए कुलांचें नहीं मारते फिरते। शिकार पर जाने के पहले हम बंदूक़ उठाकर नाचते नहीं। लेकिन जिन बातों को हम मूर्खतापूर्ण समझते हैं, हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वज उन्हें बड़ी गंभीर बात समझते थे।

अब हमने रहस्यमय चित्रों में से एक का भेद जान लिया है और हम यह समझ

गये हैं कि दीवार पर नाचते हुए मनुष्य का चित्र क्यों बनाया गया था।

लेकिन हमने दूसरे चित्र भी देखे, जो इतने ही विचित्र थे।

याद है, हमें गुफा में हड्डी की पटरी पर एक पूरी-की-पूरी कहानी खुदी मिली थी? यह एक बाइसन के शव का चित्र था, जिसके दोनों तरफ़ शिकारियों की दो क़तारें थीं। बस बाइसन का सिर और अगली टांगें ही अछूती थीं।

इस चित्र का क्या आशय था?

अगर हम इस बार उत्तर पाना चाहते हैं, तो हमें उत्तरी अमरीका के बजाय उत्तरी रूस जाना होगा।

साइबेरिया में ऐसी जगहें हैं, जहां केवल तीस-चालीस साल पहले तक जो शिकारी रीछ को मारते थे, वे "रीछोत्सव" मनाया करते थे। रीछ की लाश को घर में लाया जाता था और सम्मानित स्थान पर रख दिया जाता था। वे रीछ के सिर को उसके अगले पंजों के बीच में रख देते थे। रोटी या भूर्ज की छाल की बनी बारहसिंघे की कई आकृतियां सिर के पास रख दी जाती थीं। यह रीछ को दिया जानेवाला चढ़ावा होता था। रीछ के सिर को भूर्ज की छाल के गोल टुकड़ों से सजाया जाता था, जबकि उसकी आंखों पर चांदी के सिक्के रख दिये जाते थे। इसके बाद हर शिकारी बारी-बारी से रीछ के पास जाता और उसके थूथन को चूमता था।

यह तो उत्सव का प्रारंभ ही था, जो कई-कई दिन, बल्कि कई-कई रात चला करता था।

हर रात शिकारी लाश के इर्द-गिर्द इकट्ठा होते और नाचते-गाते। वे भूर्ज की छाल या लकड़ी के बने मुखौटे लगाते, रीछ के पास आते, उसके आगे शीश नवाते और उसकी बेढंगी चाल की नक़ल करके अपना नाच शुरू करते।

नाच-गाना खत्म हो जाने पर वे उसका मांस खाने बैठते, मगर सिर और अगले पंजों को कभी न छुआ जाता।

अब हम हड्डी की पटरी पर बने चित्र का मतलब समझ गये। इसमें "बाइसनोत्सव" दिखाया गया था। चित्र में दिखाये गये लोगों ने बाइसन को घेर रखा है और उसे अपना मांस देने के लिए धन्यवाद दे रहे हैं। वे उससे अगली बार भी ऐसी ही कृपा करने की प्रार्थना कर रहे हैं।

अगर हम अमरीकी आदिवासियों के पास वापस जाते, तो हम पाते कि वे भी शिकारियों के ऐसे ही उत्सव मनाया करते थे।

क्विचुआन क़बीले के शिकारी मारे हुए हिरन को उसकी टांगें पूर्व की ओर करके रख देते हैं। उसके सिर के पास वे भोजन भरा बर्तन रख देते हैं। हर शिकारी बारी-बारी से हिरन के पास आता है, वह अपने दाहिने हाथ से उसे सिर से दुम तक सहलाता है और इसलिए धन्यवाद देता है कि हिरन ने शिकारी को उसे मारने दिया।

"आराम करो, दादा!" वह मारे गये जानवर से कहता है।

इसके बाद जादूगर हिरन को संबोधित करते हुए कहता है:

"तुमने हमें अपने सींग दिये, हम तुम्हें इसके लिए धन्यवाद देते हैं।"



वहां अजूबे – वन-राक्षस का फेरा है

सभी रूसी बच्चे राजकुमार इवान और सुंदरी वासिलीसा, लाल चिड़ी और कुबड़े घोड़े, आदमियों का रूप ले लेनेवाले जानवरों और जानवरों का रूप ले सकने-वाले लोगों की कहानियां जानते हैं।

अगर परियों की कहानियों में हमें विश्वास होता, तो दुनिया में बस दयालु और क्रूर, दृश्य और अदृश्य रहस्यमय प्राणी ही रहते होते। जादू की इस दुनिया में हमें हर समय दुष्ट जादूगरों और भयानक डायनों के जादू-टोने से बचकर रहना पड़ता।

परियों की कहानियों में गंदी-से-गंदी मेंढकी भी अचानक एक सुंदर राजकुमारी में बदल सकती थी, जबकि एक सुंदर नौजवान भयंकर सांप निकल सकता था। यहां हर चीज़ के अपने ही क़ायदे-क़ानून हैं – मरे हुए लोग ज़िंदा हो जाते हैं, कटे हुए सिर बोल सकते हैं और डूबी हुई औरतें मछुओं को पानी में आने के लिए बहका सकती हैं।

सुविख्यात रूसी कवि अलेक्सांद्र पुश्किन की एक कविता में हमें ये पंक्तियां मिलती हैं:

> वहां अजूबे – वन-राक्षस का फेरा है
> और जल-परी का डालों पर डेरा है।



और इस परीकथा को पढ़ते समय हम हर बात पर विश्वास करने को तैयार हो जाते हैं। लेकिन जैसे ही हम किताब को बंद करते हैं, हम अपनी सचमुच की दुनिया में लौट आते हैं, जहां न जादूगर हैं, न डायनें, जहां हर चीज़ की व्याख्या की जा सकती है। परीकथा चाहे कितनी ही दिलचस्प क्यों न हो, हम कभी जादू की दुनिया में रहने को तैयार न होंगे, जहां दिमाग़ बेकार रहता है और जहां आदमी को – अगर वह किसी भेड़ियारूपी मनुष्य या डायन से पहली ही टक्कर से जीता बच निकलना चाहे, तो – राजकुमार इवान की तरह क़िस्मत का धनी बनकर ही पैदा होना होगा।

लेकिन हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों के ख़याल से दुनिया ठीक ऐसी ही थी। उन्हें जादू की दुनिया में और आसलियत की जिस दुनिया में वे रहते थे उसमें कोई फ़र्क़ नज़र न आता था। उनका ख़याल था कि दुनिया में जो भी कुछ होता है, वह दुनिया पर शासन करनेवाले भूत-प्रेतों या देवी-देवताओं की बदौलत होता है।

अगर हमें पत्थर से ठोकर लग जाती है और हम गिर जाते हैं, तो हम ख़ुद अपने को और अपने अनाड़ीपन के अलावा और किसी को दोष नहीं देते।

मगर प्रागैतिहासिक मनुष्य अपने को दोष नहीं देता था – वह उस भूत-प्रेत को दोष देता, जिसने पत्थर को उसके रास्ते में रख दिया था।

अगर किसी आदमी को छुरा मार दिया जाता है और वह मर जाता है, तो हम कहते हैं कि उसे छुरे से मार डाला गया।

मगर प्रागैतिहासिक मनुष्य कहता कि वह इसलिए मरा कि जो छुरा उसे घोंपा गया, उस पर टोना किया हुआ था।

बेशक आज भी ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं कि "नज़र लग जाने" से हम बीमार पड़ सकते हैं, कि सोमवार को किसी भी चीज़ का प्रारंभ करना अशुभ होता है, कि काली बिल्ली का रास्ता काट जाना बदशगूनी है।

हम इन लोगों को बेवक़ूफ़ समझते हैं। हमारे ज़माने में अंधविश्वासी होने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि भूत-प्रेतों और देवी-देवताओं में किसी भी प्रकार का विश्वास अज्ञान के ही कारण पैदा होता है। अंधविश्वास मकड़ी के जाले की तरह है, जो अंधेरे कोनों में ही पैदा होता है।

फिर भी हम अपने प्रागैतिहासिक पूर्वजों की हंसी नहीं उड़ायेंगे, जो ओझोंसयानों और भूत-प्रेतों में विश्वास करते थे। प्रकृति के नियमों की व्याख्या करने का यह उनका तरीक़ा था, क्योंकि सही उत्तर जान पाने लायक़ ज्ञान उनको नहीं था। कई आदिम आस्ट्रेलियाई क़बीले अब भी इसी स्तर पर हैं।

इसलिए इसमें अचरज की कोई बात नहीं कि उनमें आज भी पाषाण युग के अंधविश्वास और पूर्वाग्रह बरक़रार हैं।

बीसवीं सदी के आरंभ के एक अन्वेषक ने उनके बारे में यह कहा था:

"तट पर रहनेवाले देशी लोग नये तरह के मस्तूलों और पालोंवाले जहाज़ या अन्य जहाज़ों की अपेक्षा अधिक धूमनलियोंवाले भाप के जहाज़ देखकर बेतरह घबरा जाते हैं। बरसाती, नये तरह का टोप, झुलवां कुरसी या किसी भी ऐसे यंत्र को देखकर वे बड़े आशंकित हो जाते हैं, जिसे उन्होंने पहले नहीं देखा है।"

वे समझते हैं कि ऐसी कोई भी चीज़, जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा है, जादू-टोने से संबंध रखती है।

अनुभव ने उन्हें दिखा दिया है कि सभी चीज़ें किसी-न-किसी प्रकार आपस में संबंधित हैं। लेकिन क्योंकि वे यह नहीं जानते कि यह संबंध किस प्रकार व्यक्त होता है, इसलिए कुछ चीज़ों के अन्य चीज़ों पर जादुई प्रभाव में वे अब भी विश्वास करते हैं।

उनको विश्वास है कि "नज़र" से बचने का अकेला तरीक़ा तावीज़ का उपयोग करना है। यह मगर के दांत का बना हार भी हो सकता है और हाथी की पूंछ के सिरे पर उगनेवाले बालों का बाजूबंद भी हो सकता है। तावीज़ एक चौकीदार है, जो उसे पहननेवाले को मुसीबत से बचाता है।

प्रागैतिहासिक लोगों को संसार और प्रकृति के बारे में आज के आदिम क़बीलों से अधिक जानकारी नहीं थी।

और वे संभवत: जादू, टोने और इंद्रजाल में विश्वास करते होंगे। इसका प्रमाण हमें पुरातात्विक खुदाइयों के स्थलों पर मिले तावीज़ों में और गुफाओं के जादू-टोने के चित्रों में मिलता है।

हमारे पूर्वजों का दुनिया के बारे में क्या ख़याल है

आदमी के लिए दुनिया में तब रहना बहुत कठिन था, जब वह उसके नियमों को नहीं जानता था। उसका विश्वास था कि हर वस्तु तावीज़ हो सकती है, हर आदमी जादूगर हो सकता है। उसका विश्वास था कि हर कहीं मरे हुओं की प्रति-हिंसक और अशांत आत्माएं घूमती-फिरती हैं और जीवितों पर टूट पड़ने को तत्पर रहती हैं। शिकार में मारा गया हर जानवर वापस आ सकता है और अपने हत्यारे से बदला ले सकता है। मुसीबत को टालने के लिए आदमी को हर समय मृतात्माओं की ख़ुशामद करनी पड़ती थी और उन्हें चढ़ावे चढ़ाने और शांत करने की कोशिश करनी पड़ती थी।

अज्ञान डर को पैदा करता है।

और क्योंकि मनुष्य के पास ज्ञान का अभाव था, इसलिए वह संसार के स्वामी की तरह नहीं, बल्कि एक भयग्रस्त, निरीह भिखारी की तरह ही आचरण कर सकता था।

वह अभी तक इस लायक़ नहीं हुआ था कि अपने को प्रकृति का स्वामी समझ सके। अब वह संसार के सभी पशुओं से अधिक शक्तिशाली था, उसने मैमथ को भी जीत लिया था, लेकिन प्रकृति की महान शक्तियों की तुलना में, जिनसे निपटना वह नहीं जानता था, वह अब भी बहुत ही शक्तिहीन प्राणी था।

एक असफल शिकार का मतलब हफ़्तों की भुखमरी था। एक अंधड़ पूरे-के-पूरे शिविर को बर्फ़ के नीचे दबा सकता था।

तो फिर मनुष्य को लड़ते रहने की और धीरे-धीरे, क़दम-ब-क़दम प्रकृति की शक्तियों पर हावी होने की तरफ़ बढ़ने की ताक़त किसने दी?

उसने अपनी शक्ति इस बात से प्राप्त की कि वह अकेला नहीं था।

सारा ही समाज, सारा ही क़बीला मिलकर प्रकृति की विरोधी शक्तियों से लड़ता था। वे मिलकर काम करते थे और अपने सामान्य उद्योग के ज़रिये उन्होंने ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया।

ठीक है कि वे इस बात को शायद ही अनुभव करते थे। बल्कि इसे वे अपने ही ढंग से समझते थे।

वे नहीं जानते थे कि मानव समाज का क्या मतलब है। लेकिन वे यह अनुभव करते थे कि वे एक साथ जुड़े हुए हैं, कि एक ही क़बीले के लोग असल में एक विराट सहस्रबाहु आदमी हैं।

और उन्हें क्या चीज़ एक साथ बांधती थी?

वे ख़ून के बंधनों से बंधे हुए थे। लोग बड़े-बड़े परिवारों में रहते थे – बच्चे अपनी माताओं के साथ रहते थे और जब वे बड़े हो जाते और उनके अपने बाल-बच्चे हो जाते, तो भी वे अपने भाई-बहनों, चाचा-चाचियों, मांओं-दादियों के साथ मिलकर ही रहते थे।



इस तरह परिवार की वृद्धि हुई। शिकारी जिस प्रागैतिहासिक समाज में रहता था, वह उसका अपना परिवार, अपना कुल था, जो एक ही सामान्य पूर्वज से पैदा हुआ था। लोगों का विश्वास था कि उनके पास जो भी चीज़ है, उसके लिए वे अपने पूर्वजों के ऋणी हैं। उनके पूर्वजों ने उन्हें शिकार करना और औज़ार



बनाना सिखाया था, उन्होंने उन्हें उनके घर दिये थे और आग का उपयोग बताया था।

काम और शिकार करने का मतलब पूर्वजों की इच्छा को पूरा करना था। जो अपने पूर्वजों की इच्छा का पालन करता था, उसकी मुसीबतों और ख़तरों से रक्षा की जाती थी। उनके पूर्वज उनके दैनिक जीवन के एक अदृश्य अंग थे, उनकी आत्माएं हर शिकार पर उनके साथ जातीं, वे आवास में हर समय मौजूद रहती थीं। ये आत्माएं सर्वदृष्टा और सर्वज्ञाता थीं। वे बुरा करनेवाले को दंड दे सकती थीं और भला करनेवाले को पुरस्कृत कर सकती थीं।

इस प्रकार प्रागैतिहासिक मानव के दिमाग़ में सामान्य हित के लिए सामान्य उद्यम सामान्य पूर्वज की इच्छा के पालन और पूर्त्ति के अलावा और कुछ नहीं रहा।

फिर भी, प्रागैतिहासिक मानव अपने श्रम के महत्व को उस तरह नहीं समझता था, जिस तरह हम आज समझते हैं।

हम मानते हैं कि प्रागैतिहासिक शिकारी उसी बाइसन के सहारे रहता और अपने परिवार का पेट भरता था, जिसे वह मारता था। लेकिन उसका विश्वास था कि बाइसन उसको भोजन देता था। आज भी प्राचीन काल के अवशेष-रूप में गाय और पृथ्वी को हम "गऊमाता" और "धरतीमाता" ही कहते हैं। हम गाय से उसकी मरज़ी के बिना उसका दूध ले लेते हैं, मगर कहते फिर भी यही हैं कि गाय हमें दूध देती है।

प्रागैतिहासिक शिकारी का "पोषक" कोई जानवर था – चाहे वह बाइसन हो, या मैमथ, या बारहसिंघा। शिकारी यह नहीं सोचता था कि उसने जानवर को मारा है, उसका विश्वास था कि उसने उसे अपना मांस और अपना चमड़ा अपनी मरज़ी से दिया है। अमरीकी आदिवासियों का विश्वास था कि किसी जानवर को उसकी इच्छा के बिना नहीं मारा जा सकता। अगर कोई बाइसन मारा गया, तो वह केवल इसलिए कि वह लोगों की ख़ातिर अपना बलिदान करना चाहता था, क्योंकि वह मारा जाना चाहता था।

बाइसन क़बीले का पोषक और रक्षक था। साथ ही, लोग अपने सामान्य पूर्वज को भी क़बीले का रक्षक मानते थे।

और इसलिए प्रागैतिहासिक लोगों के दिमाग़ में (जिन्हें जिस दुनिया में वे रहते थे, उसके बारे में अभी बड़ी ही अस्पष्ट धारणा थी) रक्षक-पूर्वज और क़बीले का पोषण करनेवाला रक्षक-पशु – दोनों एकाकार हो गये।

"हम बाइसन की संतान हैं," शिकारी कहते थे। और सच ही वे विश्वास करते थे कि बाइसन ही उनका पूर्वज है। जब प्रागैतिहासिक कलाकार ने बाइसन का चित्र बनाया और फिर उसकी देह पर तीन तंबू बनाये, तो इसका मतलब था – "बाइसन के बच्चों का शिविर।"

अपने दैनिक श्रम में मनुष्य पशुओं से निकट रूप से संबद्ध था। किंतु वह ऐसे किसी संबंध को नहीं समझ सकता था जो रुधिर-संबंध न हो। जब वह किसी जानवर को मारता, तो वह उसे अपना बड़ा भाई कहकर उससे माफ़ी मांगता था। अपने

नाचों और जादू-टोनों में वह अपने पशु-भ्राता की नक़ल करने की कोशिश था – वह उसका चमड़ा ओढ़ लेता था और उसकी चाल-ढाल की नक़ल करता था।

आदमी ने अभी अपने को "मैं" कहना नहीं सीखा था। वह अभी तक अपने को कुल का एक अंग और औज़ार ही समझता था। हर कुल का अपना नाम और अपना टोटेम (गणचिह्न) था। यह किसी पशु का, उनके सामान्य पूर्वज और रक्षक का नाम था। एक कुल का नाम "बाइसन" था, दूसरे का "रीछ", तो तीसरे का "हिरन"। कुल के सदस्य एक-दूसरे के लिए जान पर खेल जाने को तैयार रहते थे। वे कुल की रूढ़ियों को अपने टोटेम की इच्छा मानते थे और उनके लिए टोटेम की इच्छा ही क़ानून थी।

पूर्वजों से बातचीत

चलो, प्रागैतिहासिक मानव की गुफा में लौट चलें और उसके साथ चूल्हे के पास बैठ जायें। हम उससे उसके विश्वासों और रिवाजों के बारे में बातचीत करें।

उसे ही बताने दें कि क्या हमारे अनुमान सही हैं, क्या हमने उन गुफा-चित्रों और हड्डी के अलंकृत तावीज़ों को ठीक तरह से समझा है, जिन्हें वह जैसे विशेषकर हमारे ही लिए छोड़ गया लगता है।

लेकिन गुफा के मालिक से हम बात करवायें, तो कैसे?

हवा चूल्हे से राख को हज़ारों साल हुए उड़ाकर ले जा चुकी है। जो लोग कभी यहां आग के पास बैठा करते थे और चकमक और हड्डियों के अपने औज़ार बनाया करते थे और जानवरों की खालों से अपने कपड़े सिया करते थे, उनकी हड्डियां कभी की धूल में मिल चुकी हैं। बहुत कम मौक़ों पर ही कभी पुरातत्वविदों को ज़मीन में आदिम-मानव की कोई सूखी और पीली पड़ी खोपड़ी मिल पाती है।



क्या हम खोपड़ी से बात करवा सकते हैं?

हमने औज़ारों की छिपटियों और खपचियों की तलाश में, इन औज़ारों से यह जानने के लिए कि प्रागैतिहासिक मानव कैसे काम करता था, गुफा को खोद डाला।

लेकिन प्रागैतिहासिक मानव की बोली की छिपटियां और खपचियां हम कहां पा सकते हैं?

हमें उनकी तलाश ख़ुद अपनी आधुनिक भाषाओं में करनी होगी।

इस तरह की खुदाई के लिए हमें फावड़े की ज़रूरत नहीं होगी, क्योंकि हम खुदाई ज़मीन में नहीं, किसी शब्दकोश में करेंगे। हर भाषा, हर शब्दावली ने अतीत के मूल्यवान टुकड़े सहेज रखे हैं। और ऐसा होना भी चाहिए। आख़िर, सैकड़ों-हज़ारों पीढ़ियों का अनुभव हमारी भाषाओं में ही होकर हम तक आया है।

तुम कह सकते हो – किसी भाषा के बारे में कुछ चीज़ों के अध्ययन और खोज से भी आसान बात क्या हो सकती है! इसके लिए अलावा इसके और क्या करने की ज़रूरत है कि एक शब्दकोश लेकर बैठ गये और उसके पृष्ठ पलटने लगे!



लेकिन बात इतनी आसान नहीं है।

पुराने शब्दों की खोज में शोधकर्ता सारी दुनिया में भटकते हैं, ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ते हैं और महासागरों को पार करते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ लोगों ने, जिन्होंने ऊंचे पहाड़ों की दीवार के पार अपनी छोटी-सी बिरादरी बना ली है, उन्होंने कुछ प्राचीन शब्दों को बरक़रार रखा है, जो अन्य भाषाओं में कभी के लुप्त हो गये हैं।

हर भाषा मानव-जाति के लंबे पथ पर एक-एक शिविरस्थल की तरह है। आस्ट्रेलिया, अफ़्रीका और अमरीका के शिकारी क़बीलों की भाषाएं वे शिविर हैं, जिन्हें हम कभी का पीछे छोड़ आये हैं। तब शोधकर्ता महासागर को पार करके उन प्राचीन शब्दों और अभिव्यंजनाओं की तलाश में पोलीनेशिया जाते हैं, जिन्हें हम भूल चुके हैं।

शब्दों की अपनी अंतहीन खोज में वे दक्षिण के मरुस्थलों और उत्तर के तुंद्रा में दूर-दूर की यात्रा करते हैं।

सोवियत संघ के सुदूर उत्तर के लोग ऐसे शब्दों का उपयोग करते हैं, जो उनके पास उस ज़माने से चले आये हैं, जब निजी संपत्ति नहीं थी, जब लोग "मेरा" का मतलब नहीं जानते थे, जैसे "मेरा घर", "मेरा कुत्ता", आदि।

अगर हम आदिकालीन बोली के अवशेष ढूंढ़ना चाहते हैं, तो हमें इन जैसी भाषाओं को उसी प्रकार खोदना चाहिए, जैसे कि पुरातत्त्वविद प्रागैतिहासिक शिविर-स्थलों में आवासों के अवशेषों और औज़ारों की खुदाई करते हैं।

हर कोई पुराशब्दविद नहीं हो सकता। इसके लिए विशेष प्रशिक्षण और ज्ञान की आवश्यकता होती है, क्योंकि पुराने शब्द किसी भाषा में संग्रहालय की तरह नुमाइश पर नहीं रखे होते। सदियों के दौरान शब्द कई-कई बार बदले हैं। वे एक भाषा से दूसरी भाषा में गये, वे एक साथ मिले, उन्होंने अपने उपसर्ग और अंतांग बदले। कभी-कभी किसी पुराने जले पेड़ की जड़ की ही तरह पुराने शब्द के मूल के अलावा और कुछ बाक़ी नहीं बचता। और हम केवल मूल से ही यह जान सकते हैं कि शब्द मूलतः कहां से आया।

हज़ारों वर्षों के दौरान न केवल शब्दों के रूप, बल्कि उनके अर्थ भी बदल गये। अकसर शब्दों को नये-नये अर्थ दे दिये गये, जो पुराने अर्थों से एकदम भिन्न थे।

ऐसा अब भी होता है। जब कोई नई चीज़ आविष्कृत होती या पैदा की जाती है, तो हम सदा ही उसके लिए किसी नये शब्द को नहीं निकालते। हम कभी-कभी इधर-उधर निगाह डालकर कोई पुराना शब्द ढूंढ़ लेते हैं और उसे नई चीज़ पर इस तरह चिपका देते हैं, मानो वह कोई लेबल हो।

हम जितना-जितना नीचे जाते हैं, काम उतना ही मुश्किल होता जाता है। किसी शब्द के लुप्त, आदिकालीन अर्थ को जानने के लिए आदमी को भाषाओं का बड़ा विद्वान होना चाहिए।

पुरानी बोली की छिपटियां

अकादमीशियन इ० मेश्चानीनोव लिखते हैं कि यूकागीर जाति की भाषा में एक शब्द है, जो "हिरनआदमीमारा" का समानार्थक है। यह एक लंबा और बड़ा बेढंगा शब्द है और इसका मतलब समझना और भी ज़्यादा मुश्किल है।

किसने किसको मारा? क्या आदमी ने हिरन को मारा, क्या हिरन ने आदमी को मारा, क्या उन दोनों ने मिलकर किसी और को मारा, या किसी और ने उन दोनों को मारा?

लेकिन यूकागीर इस शब्द को भलीभांति समझता है। जब वह यह कहना चाहता है कि "आदमी ने हिरन को मारा", तो वह इसी शब्द का उपयोग करता है।

ऐसा विचित्र शब्द कैसे पैदा हो सकता था?

यह शब्द उस समय का है, जब आदमी अभी अपने को "मैं" नहीं कहता था, जब उसने अभी यह अनुभव करना शुरू नहीं किया था कि काम करनेवाला, हिरन का शिकार, पीछा और वध करनेवाला वह खुद था। उसका विश्वास था कि हिरन को उसने नहीं, बल्कि उसके पूरे कुल ने, और उसके कुल ने भी नहीं, बल्कि उन रहस्यमय अज्ञात शक्तियों ने मारा था, जिनसे हर चीज़ शासित है। इस घोर अतीत में मनुष्य अभी तक संसार में अपने को बड़ा अशक्त और असहाय समझता था, क्योंकि प्रकृति उसकी आज्ञाकारिणी नहीं थी।

एक दिन, किसी अज्ञात शक्ति की इच्छानुसार "हिरनआदमीमारा" सफल रहा, अगले दिन शिकार असफल रहा और लोग शिविर को खाली हाथ लौट आये। "हिरनआदमीमारा" में कोई भी नहीं है। और प्रागैतिहासिक मानव बेचारा यह समझ भी कैसे सकता था कि कर्ता कौन है – वह या हिरन? क्योंकि वह तो इसी बात पर विश्वास करता था कि उसे हिरन उसके अज्ञात रक्षक द्वारा – हिरन के और उसके सामान्य पूर्वज द्वारा – दिया गया है!



अगर अपनी खुदाइयों में हम मनुष्य की बोली की सबसे पहली परतों से बादवाली परतों की तरफ़ आयें, तो हमें अकसर बोली के ऐसे अवशेष मिलेंगे, जो हमें उस ज़माने की तरफ़ ले जाते हैं, जब आदमी अपने को रहस्यमय शक्तियों के हाथ का एक औज़ार समझता था।

चुकची जाति की भाषा में एक अभिव्यक्ति है – "आदमी से मांस देता है अपने कुत्ते को।"

जैसा कि तुम देखते हो, यह एकदम गड्डमड्ड है। हमने यह अभिव्यक्ति बोली के एक ऐसे स्तर से खोद निकाली है, जो बहुत पहले निक्षिप्त हुई थी, जब लोग हमारी तरह नहीं सोचते थे। यह कहने के बजाय कि "आदमी अपने कुत्ते को मांस देता है", वे कहते हैं: "आदमी से मांस देता है अपने कुत्ते को।" तो फिर आदमी से मांस देता कौन है? कोई रहस्यमय शक्ति, जो आदमी का एक औज़ार की तरह उपयोग करती है।

यह कहने के बजाय कि "मैं बुनाई कर रहा हूं" संयुक्त राज्य अमरीका के डैकोटा राज्य के आदिवासी कहते हैं: "मुझसे बुनाई", मानो आदमी खुद बुनाई की सलाई है, न कि बुनाई के लिए सलाई का इस्तेमाल करनेवाला।

प्राचीन भाषा-रूपों के अवशेष अभी तक सभी यूरोपीय भाषाओं में मिल सकते हैं।

जैसे फ़्रेंच भाषा में "ठंड है", यह कहने के लिए कहते हैं "Il fait froid. लेकिन शब्दशः अनुवाद करने पर इसका मतलब निकलता है: "वह ठंड बनाता है।"

एक बार फिर हम उस रहस्यमय "वह" को पाते हैं, जो दुनिया को शासित करता है।

लेकिन उदाहरणों के लिए हमें विदेशी भाषाओं को ही देखने की ज़रूरत नहीं। रूसी में भी प्राचीन बोली के, और इसलिए, प्राचीन विचार-रूपों के काफ़ी उदाहरण हैं।

मिसाल के तौर पर, हम कहते हैं: "उस पर क़हर गिरा।" यह कौनसी ताक़त है, जो आदमी पर क़हर गिराती है?

हम किसी भी रहस्यमय शक्ति में विश्वास नहीं करते, लेकिन हमारी भाषा अभी तक हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों की भाषाओं के अवशेषों को सुरक्षित रखे हुए है, जो इन शक्तियों में दृढ़तापूर्वक विश्वास करते थे।

इस प्रकार किसी भाषा की परतें खोदने पर हम न केवल प्रागैतिहासिक लोगों के शब्द ही, बल्कि विचार भी पा जाते हैं। प्रागैतिहासिक मानव एक विचित्र, रहस्यमय विश्व में रहता था, जहां वह काम तथा शिकार नहीं करता था, बल्कि जहां काम करने में कोई उसका इस्तेमाल करता था और हिरन मारने में उसका इस्तेमाल करता था, जहां जो कुछ भी होता था, वह अज्ञात "किसी" की इच्छा के अनुसार होता था।

लेकिन समय बीतता गया। मनुष्य जितना शक्तिशाली होता गया, अपने आस-पास की दुनिया को और दुनिया में खुद अपनी जगह को वह उतनी ही ज़्यादा अच्छी तरह से समझता गया। उसकी भाषा में "मैं" शब्द आ गया और इसी के साथ-साथ एक ऐसा आदमी भी आया, जो काम करता था, संघर्ष करता था और चीज़ों और प्रकृति को अपनी ही इच्छा पूरी करने के लिए विवश करता था।

हम अब नहीं कहते: "हिरनआदमीमारा।" हम कहते हैं: "आदमी ने हिरन को मारा।" तिस पर भी हर भाषा में जब-तब अतीत की छाया मिल ही जाती है। क्या अभी तक हम "अभागा", "होनहार", या "अशुभ" नहीं कहते?

अभागा, होनहार या अशुभ कौन बनाता है?

भाग्य! क़िस्मत!

लेकिन भाग्य तो वही अज्ञात "कुछ" है, जिससे प्रागैतिहासिक मानव इस क़दर दहशत खाता था!

"भाग्य" शब्द अभी तक हमारी भाषाओं में मौजूद है। लेकिन हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि भविष्य में यह लुप्त हो जायेगा।

किसान धरती को अधिकाधिक विश्वास के साथ जोतता है। वह जानता है कि अच्छी या बुरी फ़सल उसी पर निर्भर करती है।

अनेक कृषि मशीनें और खादें उसकी सहायक हैं, जो बंजर जमीन को उपजाऊ

बना देती हैं और विज्ञान उसका सहायक है, जो पौधों के जीवन को निदेशित करने में उसकी सहायता करता है।

नाविक अधिकाधिक विश्वास के साथ समुद्र यात्रा पर रवाना होता है। विशेष यंत्र उसे छिछले पानी से आगाह करते हैं और उसे पहले से बता देते हैं कि समुद्र में तूफ़ान कब आनेवाला है।

"उसका भाग्य", "होनहार ही थी" – ये ऐसे मुहावरे हैं, जो अब कम-से-कम मौक़ों पर सुनने को मिलते हैं।

अज्ञान भय को उत्पन्न करता है। ज्ञान आत्मविश्वास लाता है, यह मनुष्य को अब प्रकृति का दास नहीं, उसका स्वामी बनाता है।



हिमनदियां पीछे हटीं

हर साल, जब बर्फ़ पिघलना शुरू करती है, तो सभी जगहों पर– जंगलों और खेतों में, गांव की सड़कों पर, सड़कों के किनारे की खाइयों में–मतवाले, तेज़ी से दौड़ते, शोर मचाते नाले और झरने अचानक नजर आने लगते हैं।

शरारती बच्चों की तरह, जिन्हें घर में नहीं रखा जा सकता, वे जमी हुई मैली बर्फ़ के नीचे से फूट पड़ते हैं। पानी के नाले पत्थरों के ऊपर से और सड़कों को पार करते लगातार आगे बढ़ते और हवा को अपनी आह्लाद भरी कलकल से भरते हुए भाग निकलते हैं।

बर्फ़ धूप लगनेवाले ढलानों और खुले मैदानों से हटकर खड्डों, खाइयों और दीवारों की आड़ में छायादार कोनों में चली जाती है, जहां यह कभी-कभी मई तक सूर्य की गरम किरणों से छिपी पड़ी रहती है।

प्रकृति रात भर में बदल गई लगती है। कुछ ही दिनों के भीतर सूरज नंगी डालों को पत्तियों से भर देता है।

ऐसा हर वसंत में सर्दियों में जमी बर्फ़ीली चादर के पिघल जाने के साथ होता है।

लेकिन प्रागैतिहासिक काल में क्या हुआ, जब बर्फ़ की वह विशाल चादर आखिर पिघलने लगी, जिसने दुनिया को एक सफ़ेद टोपी की तरह ढांक रखा था?

तब नालों और छोटी नदियों के बजाय बर्फ़ के नीचे से बड़ी-बड़ी गहरी-गहरी नदियां फूट पड़ीं। इनमें से कई आज भी रास्ते की हर छोटी नदी और नाले के पानी को समेटती सागर तक जा रही हैं।

यह प्रकृति का महान पुनर्जागरण था, वह महान वसंत था, जिसने उत्तर के नंगे मैदानों को विशाल वनों से आच्छादित कर दिया।

लेकिन वसंत तुरंत ही ज़ोर नहीं पकड़ लेता। कभी-कभी ऐन मई के महीने में भी, किसी गरम और धूपदार दिन के बाद अचानक ठंडी हवा चल पड़ती है और अगले दिन जब तुम सोकर उठते हो, मकानों की छतों पर बर्फ़ जमी होती है। बाहर हर चीज सफ़ेद होती है, मानो वसंत अभी आया ही नहीं।

महान प्रागैतिहासिक वसंत ने भी सर्दी को एकदम ही परास्त नहीं कर दिया। हिमनदियां धीरे-धीरे पीछे हटीं, मानो उन्हें उनकी इच्छा के खिलाफ़ पीछे धकेला जा रहा था, वे कई-कई सदियों तक अटकी रहीं।

कभी-कभी कुछ पीछे हट जाने के बाद हिमनदियां रुक गईं, मानो अपनी शक्ति इकट्ठा कर रही हों और इसके बाद वे फिर आगे आईं। तुंद्रा उनके साथ दक्षिण की ओर आया और अपने चिरसंगी रेंडियर को अपने साथ ले आया।

मैदान पर काई और शैवाल फैल गये और उन्होंने घास को पीछे हटा दिया। बाइसन और घोड़े दक्षिण की ओर घास भरे प्रदेशों की तरफ़ चले गये।

गरमी और सर्दी की लड़ाई बहुत ही लंबे समय तक चलती रही, लेकिन अंत में गरमी की ही जीत हुई।

पिघलती हिमनदियों के नीचे से बड़ी-बड़ी नदियां बह चलीं। धरती को जिस बर्फ़ानी टोपी ने ढांक रखा था, वह सिकुड़ने और सिमटने लगी। बर्फ़ की सीमांत रेखा और उत्तर में चली गई और उसके साथ-साथ तुंद्रा भी चला गया। उन प्रदेशों में, जहां कभी केवल शैवाल, काइयां और यत्र-यत्र बिखरे हुए टेढ़े-मेढ़े चीड़ के पेड़ ही थे, वहां पांच-पांच फ़ुट घेरेवाले विशाल चीड़वन खड़े हो गये।

और इस बीच गरमी लगातार तेज़ और तेज़ होती जा रही थी।

एस्प और भूर्ज वृक्षों की हरी फुनगियां अधिकाधिक चीड़ वृक्षों की गहरी हरी राशि को फोड़ ऊपर निकली आ रही थीं। उनके पीछे-पीछे चौड़े पत्तेवाले पेड़ों की विशाल वाहिनी उत्तर की ओर जा रही थी।

"चीड़-युग" अब "बलूत-युग" में परिणत हो गया था। जंगल के एक घर ने दूसरे को जगह दे दी थी।

लेकिन जंगल के हर घर के अपने ही बाशिंदे होते हैं।

जब पत्रधारी जंगल उत्तर की ओर आये, तो झाड़ियां, खुमियां और बेरियां भी उनके साथ-साथ आईं और उन्हीं के साथ-साथ जंगल के भोजन को खानेवाले पशु भी आ गये। इन पशुओं में जंगली सूअर, सांभर, बाइसन और विशाल सींगोंवाले लाल हिरन भी थे। मधुप्रेमी भूरा रीछ जंगली शहद की तलाश में नीचे के झाड़-झंखाड़ को पार करके आ गया। खरगोशों को दबोचने के लिए भेड़िये गिरी हुई पत्तियों पर दबे पंजों से दौड़ने लगे। गोल-गोल मुंह और छोटे-छोटे पंजोंवाले बीवर जंगली नालों पर अपने बांध बनाने लगे। भांति-भांति के पक्षियों ने वन को अपनी चहचहाहट से भर दिया और जंगल की झीलों पर सारसों और हंसों की आवाजें सुनाई देने लगीं।

बर्फ़ के क़ैदी

प्रकृति में जब ये बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे थे, मनुष्य एक तरफ़ दर्शक बना नहीं खड़ा रह सकता था। नाटक के दृश्यों की तरह उसके इर्द-गिर्द हर चीज बदल रही थी। लेकिन नाटक के विपरीत हर अंक कई-कई हज़ार साल लंबा था, जबकि रंगमंच लाखों वर्गमील में फैला हुआ था।

और इस विश्वव्यापी नाटक में मनुष्य दर्शकों में नहीं था, वह अभिनेताओं में एक था।

हर बार दृश्य बदलने पर मनुष्य को जिंदा रहने के लिए जिंदगी के अपने ढंग को बदलना पड़ा।

जब तुंद्रा खिसककर दक्षिण की ओर आने लगा, तो वह अपने साथ रेंडियर को लाया, मानो ये जानवर उसके क़ैदी थे और उससे जकड़े हुए थे। रेंडियर इस अदृश्य जंजीर के एक सिरे पर थे और तुंद्रा की काई और शैवाल दूसरे पर।

रेंडियर काई और शैवाल चरता तुंद्रा में घूमता था और रेंडियर का पीछा करता आदमी उनका अनुगमन करता था।

स्तेपी में मनुष्य घोड़ों और बाइसनों का शिकार करता था। लेकिन तुंद्रा में उसे रेंडियर का ही शिकार करना पड़ता था।

तुंद्रा में रेंडियर के अलावा वह शिकार कर भी किसका सकता था?

मैमथ सारे-के-सारे मर चुके थे। प्रागैतिहासिक मनुष्य ने हज़ारों की तादाद में उनका संहार करके अपने आवासों के पास मैमथ की हड्डियों के पहाड़ लगा दिये थे। उसने खाने के लिए घोड़ों के बड़े-बड़े झुंडों का सफ़ाया कर दिया था और जो बाक़ी बचे थे वे, जब स्तेपी की रसीली घासों की जगह तुंद्रा के सूखे शैवाल ने ले ली, सुदूर दक्षिण को चले गये थे।

इसलिए तुंद्रा में रेंडियर ही प्रागैतिहासिक मनुष्य का अकेला पोषक बन गया। वह उसका मांस खाता, उसकी खाल के कपड़े पहनता और उसके सींगों से अपने भाले और कांटेदार बर्छियां बनाता। यही कारण है कि उसे अपने जीवन का पूरा ढर्रा रेंडियर के ढर्रे के अनुकूल बनाना पड़ा।

जहां भी रेंडियरों के झुंड जाते, आदमी उनके पीछे-पीछे जाता। जब क़बीला डेरा डालता तो औरतें सहज ही अपने तंबू खड़े कर लेतीं और उन्हें खालों से ढक देतीं। उन्हें मालूम था कि वे एक ही जगह ज्यादा दिन न रहेंगे। जब मच्छरों के बादल रेंडियरों को नयी चरागाहों की तलाश में आगे जाने को विवश कर देते, तो लोगों के पास इसके अलावा और कोई चारा न होता कि अपना डेरा उखाड़ें और उनके पीछे चल दें। औरतें तंबुओं को उखाड़कर अपनी पीठ पर लटका लेतीं। वे थकान से चूर तुंद्रा में चलती चली जातीं, जबकि आदमी उनके साथ-साथ अपने भाले या कांटेदार बर्छियों के अलावा और कुछ भी न लिये हुए उत्साह के साथ चलते जाते। घर के धंधों की चिंता में पड़ना मर्द का काम नहीं था।



लेकिन फिर तुंद्रा उत्तर की तरफ़ हटने लगा और उसी के साथ-साथ रेंडियर भी जाने लगा। तुंद्रा की जगह विराट अगम्य वन खड़े हो गये।

प्रागैतिहासिक क़बीलों का तब क्या हुआ?

कुछ शिकारी क़बीले रेंडियरों के झुंडों के पीछे-पीछे उत्तर में आर्कटिक की तरफ़ चले गये। यही सबसे आसान रास्ता था, क्योंकि तब तक वे उत्तरी ही जलवायु के अभ्यस्त हो चुके थे। हिम-युग की कड़ी ठंड हज़ारों साल रही थी। इन हज़ारों वर्षों में प्रागैतिहासिक मनुष्य ने सर्दी से लड़ना, अपने कपड़े जानवरों की गरम खाल से बनाना सीख लिया था। बाहर जितनी ही ज्यादा ठंड होती, खुदे आवास के चूल्हे में आग उतनी ही तेज़ी से जलती।

आर्कटिक जाना उसी जगह रहने की अपेक्षा सरल था। फिर भी सुगमतम मार्ग ही हमेशा सबसे अच्छा मार्ग नहीं रहता, और मानव-जाति का वह हिस्सा, जो तुंद्रा के साथ उत्तर चला गया, अंत में घाटे में रहा, क्योंकि उसके लिए हिम-युग की आयु हज़ारों वर्ष के लिए और बढ़ गई। ग्रीनलैंड के एस्किमो आज भी बर्फ़ में ही रहते हैं और प्रकृति के विरुद्ध – एक ऐसी प्रकृति, जो निष्ठुर और बलवान है – अविराम संघर्ष करते रहते हैं।

८*

जो क़बीले पीछे ही रह गये, उनकी नियति बिलकुल भिन्न थी। शुरू-शुरू में उगते जंगलों में उनकी जिंदगी और भी ज्यादा मुश्किल हो गई। लेकिन अंततः उन्होंने अपने को उस बर्फ़ानी क़ैदखाने से आजाद कर लिया, जिसमें उनके पुरखे हजारों साल क़ैद रहे थे।

मनुष्य जंगल से जूझता है

पुराने तुंद्रा की जगह जो जंगल उगे, वे हमारे आजकल के जंगलों जैसे बिलकुल नहीं थे। यह बिलकुल नदियों और झीलों के तट तक और कहीं-कहीं तो ऐन समुद्र तक उगे हुए विशाल वृक्षों और झाड़-झंखाड़ की एक अलंघ्य दीवार थी, जो हजारों किलोमीटर तक चली गई थी।

इस विचित्र और नई दुनिया में प्रागैतिहासिक मानव का जीवन खेल नहीं था।

जंगल उसे अपने खुरदुरे पंजों से दबाकर घोंटे डालता था, इसने उसके लिए सांस लेने और चलने-फिरने भर को भी जगह न छोड़ी थी। उसे पेड़ों को काटते हुए, जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों को साफ़ करते हुए जंगल से लगातार जूझना पड़ता था।

तुंद्रा या स्तेपी में प्रागैतिहासिक मनुष्य को शिविरस्थल के लिए अच्छा ठिकाना ढूंढ़ने में कोई परेशानी न होती थी। हर कहीं काफ़ी जगह थी। लेकिन जंगल में पहले उसे प्रकृति से खुली जमीन का यह टुकड़ा छीनना पड़ता था।

यहां जमीन का चप्पा-चप्पा पेड़ों और घने झाड़-झंखाड़ से भरा हुआ था। उसे जंगल पर दुश्मन के क़िले की तरह हमला करना पड़ता था।

लेकिन हथियारों के बिना कोई लड़ नहीं सकता।

पेड़ों को काटने के लिए उसे कुल्हाड़ी चाहिए थी।

और इसलिए उसने एक लंबे हत्थे में एक भारी तिकोना चकमक लगाया।



और जंगलों में, जहां पहले कठफोड़वा ही पेड़ों पर हमला करता था, एक नई आवाज गूंजने लगी। यह नई आवाज़ पशुओं और पक्षियों को डराती थी। यह पहले पेड़ों पर गिरनेवाली पहली कुल्हाड़ियों की आवाज थी।

तेज़ चकमक पेड़ की देह में गहरा धुस जाता। घाव से गाढ़ा रस टपकता। लकड़हारे के पैरों पर गिरते-गिरते पेड़ चरचराता और कराहता।

दिन-प्रति-दिन लोग कुल्हाड़े चलाते हुए जंगल की दुनिया में अपने लिए और जगह बनाने में बड़े धीरज के साथ जुटे रहे।

जगह साफ़ कर लेने के बाद वे ठूंठों और झाड़-झंखाड़ को जला डालते।

इस तरह से उन्होंने जंगल से लड़ाई की और उसे जीता। पर उन्होंने अपने पिटे हुए दुश्मन को ऐसे ही नहीं छोड़ दिया।

डालों को काट देने के बाद वे पेड़ के एक सिरे को नुकीला करते और पत्थर के हथौड़े की चोटों से उसे ज़मीन में ठोंक देते। इस खंभे के बराबर वे एक लकीर में एक दूसरा और फिर तीसरा और फिर चौथा खंभा भी ठोंक देते। जल्दी ही वे एक दीवार तैयार कर लेते, जिसे वे खंभों के भीतर-बाहर डालियों की बुनाई से और मजबूत कर लेते। कुछ समय बाद जंगल के बीच में लकड़ी का एक झोंपड़ा

उठ खड़ा होता, जो स्वयं एक छोटे जंगल जैसा दिखाई देता था। ये पेड़ों के तने थे, जिनकी डालें आपस में गुंथकर दीवारें बनाती थीं। लेकिन ये तने मनमाने ढंग से नहीं उगते थे। वे ज़मीन में मजबूती से उसी तरह जमे रहते थे, जैसे आदमी ने उन्हें जमा दिया था।

अगर प्रागैतिहासिक मनुष्य के लिए जंगल की दुनिया में अपने लिए जगह बनाना मुश्किल था, तो वहां भोजन पाना तो और भी कठिन था।

खुले मैदानों में वह झुंडों में रहनेवाले जानवरों का शिकार किया करता था। वहां झुंड को दूर से ही देख लेना आसान था, क्योंकि छोटे से टीले की चोटी से कई किलोमीटर दूर तक देखा जा सकता था।

लेकिन जंगल में बात एकदम दूसरी थी। यद्यपि जंगल के घर में निवासी भरे पड़े थे, उनमें से नज़र कोई भी नहीं आते थे। वे वन की सभी मंज़िलों को अपनी आवाज़ों, सरसराहट और चहचहाहट से भर देते थे, लेकिन उन्हें पकड़ पाना बहुत कठिन था।

. कोई चीज़ पैरों के नीचे से सरसराती निकल जाती या निचली पत्तियों को आगे-पीछे झुलाती सर्र-सर्र ऊपर से उड़कर निकल जाती।

प्रागैतिहासिक मनुष्य इन सभी सरसराहटों और गंधों को कैसे अलग करता, पेड़ों के चटकीले तनों में जानवरों की चटकीली चित्तियां कैसे देखता?

जंगल के हर पक्षी और पशु का अपना रक्षात्मक रंग था। पक्षियों के पंख पेड़ों के चित्तीदार तनों जैसे दिखाई देते थे। जंगल के हलके अंधेरे में जानवरों की सुर्ख-कत्थई खाल मरी हुई पत्तियों के रंग की ही नज़र आती।

जानवर का पीछा करके उसे पकड़ पाना कठिन था। लेकिन कहीं वह पास आ जाता, तो शिकारी को उस पर अपना हथियार फेंकने का बस एक ही अवसर मिलता। उसका निशाना अचूक होना चाहिए था, नहीं तो जानवर झाड़ियों में ग़ायब हो जाता।

तभी प्रागैतिहासिक शिकारी को अपने नेज़े की जगह तीव्रगामी और अचूक तीर को देनी पड़ी। हाथ में अपना धनुष लिये और कंधे पर अपना तरकश लटकाये वह झुरमुटों में जंगली सूअरों को मारता और दलदलों में बत्तखों और हंसों का शिकार करता चला जाता था।



आदमी का चौपाया दोस्त

हर शिकारी का एक वफ़ादार दोस्त था। उसके दोस्त के चार पंजे, बड़े-बड़े मुलायम-मुलायम कान और एक काली, जिज्ञासा भरी नाक थी।

शिकार के समय यह चार पैरोंवाला दोस्त जानवर को ढूंढने में उसकी सहायता करता। खाने के समय वह अपने मालिक के बराबर बैठता और उसकी आंखों में देखा करता, मानो पूछ रहा हो, "और मेरा हिस्सा?"

यही चौपाया दोस्त आदमी की हजारों वर्षों से निष्ठापूर्वक सेवा करता आ रहा है, क्योंकि यह उसी समय की बात है जब मनुष्य तीर-कमान से शिकार किया करता था कि उसने कुत्ते को पालतू बनाया।



येनीसेई नदी पर अफ़ोंतोवा पर्वत पर खुदाई करनेवाले सोवियत पुरातत्त्वविदों को एक प्रागैतिहासिक शिविरस्थल में एक कुत्ते की हड्डियां मिलीं। ये हड्डियां थूथन को छोड़कर, जो अपेक्षाकृत छोटी थी, भेड़िये की हड्डियों से मिलती-जुलती थीं।

प्रागैतिहासिक मनुष्य का कुत्ता संभवतः उसके आवास की पहरेदारी करता था और शिकार में उसे सहायता देता था। प्रारंभिक वन्य बस्तियों में रसोई का कूड़ा फेंकने के खत्ते हुआ करते थे, जिनमें वैज्ञानिकों को जानवरों की हड्डियां मिली हैं, जिन पर कुत्ते के दांतों के निशान हैं। तो हम देखते हैं कि उस समय भी आदमी का कुत्ता भोजन के समय उसके पास बैठा हड्डी मांगा करता था!

कोई आदमी कुत्ते को बेकार ही नहीं रखेगा और खिलायेगा।

प्रागैतिहासिक मनुष्य कुत्ते को तभी ले लेता, जब वह पिल्ला ही होता और उसे अपना सहायक बनने की, जंगल में शिकार का पीछा करने की शिक्षा देता।

सहायक के चुनाव में उसने ग़लती नहीं की। इससे पहले कि वह जंगली सूअर के निशानों को देख पाता या बारहसिंघे के क़दमों की आहट को सुन भी पाता, उसका कुत्ता तन जाता था और जानवर की गंध पकड़ने के लिए अपनी नाक उठा देता था।

झाड़ियों में किस चीज की गंध थी? अभी-अभी यहां से कौन गुजरा था? निशान पकड़ने के लिए दो या तीन सुड़कनें काफ़ी थीं। अब कुत्ता न कुछ सुनता था, न देखता था, वह अपने मुख्य कार्य में पूर्णतः लीन हो जाता था – जानवर को पकड़ने का काम – और जंगल में फुर्ती और तेज़ी के साथ भागता था। उसके मालिक को बस उसके पीछे जाना भर रहता था।

कुत्ते को पालतू बना लेने के बाद आदमी और भी शक्तिशाली हो गया। उसने कुत्ते की नाक से, जो उसकी अपनी नाक से कहीं तेज़ थी, अपना काम निकलवाया।

लेकिन आदमी ने कुत्ते की नाक को ही अपने काम में नहीं लिया। उसने उसकी चारों टांगों का भी उपयोग किया। घोड़े को अपनी गाड़ी में जोतना शुरू करने के बहुत पहले कुत्ते आदमी के सामान और उसके परिवार को खींचने के काम में लाये जाते थे।

साइबेरिया में एक प्रागैतिहासिक शिविरस्थल में एक कुत्ते के अवशेषों की बग़ल में एक साज के भी अवशेष मिले थे।

मतलब यह कि कुत्ते शिकार में ही आदमी की सहायता नहीं करते थे, वे उसे ढोते भी थे।



इस तरह आदमी के सबसे अच्छे दोस्त – उसके कुत्ते – से हमारा परिचय हुआ।

इन बुद्धिमान पशुओं के बारे में, जिन्होंने पहाड़ों में यात्रियों को बचाया है, लड़ाई के मैदान से घायलों को निकाला है, घर और देश के सीमांत की चौकसी की है, कितनी सच्ची कहानियां लिखी जा चुकी हैं! कुत्ते घर में, शिकार पर, लड़ाई में और अनुसंधानशाला में भी वफ़ादार सेवक हैं।

जब विज्ञान के हितों में और मानव-जाति की भलाई के लिए वैज्ञानिक कुत्ते को आपरेशन की मेज़ पर रखता है, तब भी वह उसकी तरफ़ विश्वासपूर्वक,

अपने मालिक के लिए अपनी जान दे देने को तत्पर प्राणी की निगाहों से ही देखता है।

लेनिनग्राद के निकट पावलोवो नगर में, जिस प्रयोगशाला में वैज्ञानिक मस्तिष्क के कार्य का अध्ययन करते हैं, उसकी इमारत के सामने एक स्मारक है।

यह स्मारक हमारे वफ़ादार चौपाये मित्र के सम्मान में बनाया गया है।

आदमी नदी से लड़ता है



सभी प्रागैतिहासिक लोगों ने जंगल में ही अपने घर नहीं बनाये। ऐसे भी लोग थे, जिन्होंने घने जंगलों को छोड़ दिया और नदियों और झीलों के तटों पर बस गये।

वहां, पानी और जंगल के बीच की ज़मीन की पतली पट्टी पर उन्होंने अपने लकड़ी के झोंपड़े बनाये।

नदी के किनारे जंगल के मुक़ाबले जगह ज़्यादा थी, मगर यहां रहना भी उतना ही मुश्किल था।

नदी एक अस्थिर पड़ोसिन थी। जब वसंत में उसमें बाढ़ आती और वह किनारे पर चढ़ आती, तो वह अकसर मनुष्य द्वारा निर्मित झोंपड़ियों को हिमखंडों और मनुष्य के गाड़े हुए तनों सहित बहाकर ले जाती थी। बाढ़ से भागकर लोग सबसे पास के पेड़ों पर जा चढ़ते और विक्षुब्ध नदी के उतर जाने की प्रतीक्षा करते। जब नदी अपने तल पर लौट आती, तो वे तट पर अपनी विनष्ट बांबी को फिर बनाना शुरू करते।

आरंभ में हर बाढ़ उन्हें अचक्के में पकड़ लेती थी, लेकिन नदी के तौर-तरीक़ों का अध्ययन कर लेने के बाद वे उससे बाज़ी मारने में सफल हो गये।

उन्होंने कई पेड़ काटे और उनके तनों को बेड़े की तरह एक साथ बांध दिया। बेड़े को उन्होंने नदी के तट पर रख दिया। इसके बाद लट्ठों की पहली तह पर उन्होंने एक तह और डाली। इस तरह तह-पर-तह डालकर उन्होंने एक ऊंचा मंच बना दिया। इसके बाद इस मंच पर उन्होंने अपनी झोंपड़ियां बनाईं। अब उन्हें बाढ़ों का डर नहीं था, क्योंकि विक्षुब्ध नदी जब अपने किनारों को फोड़ निकलती थी, तो वह झोंपड़ियों की दहलीज़ तक भी नहीं पहुंच पाती थी।

यह एक महान विजय थी, क्योंकि निचले तट को उन्होंने ऊंचा तट बना दिया था। अपनी नदियों को नियंत्रित करने के लिए हम जो बांध और तटबंध बनाते हैं, लट्ठों का यह मंच ही उन सबका प्रारंभ-बिंदु था।

प्रागैतिहासिक मनुष्य ने नदी से जूझने में काफ़ी श्रम और समय लगाया।

लेकिन नदी के तट पर बसने के लिए वह क्यों तैयार हुआ और वह पानी के पास क्यों रहना चाहता था?

इसका जवाब उन मछियारों से मांगो, जो अपने दिन तट पर शांतिपूर्वक अपने तिरौंदों को देखते-देखते बिता देते हैं।

प्रागैतिहासिक मानव के लिए नदी का जो बड़ा आकर्षण था, वह उसकी मछलियां थीं।



शिकारी ने मछलीमार भी बनना कैसे सीखा? आखिर मछली पकड़ने के लिए उसे शिकार से अलग तरह के औज़ार चाहिए थे, अपने शिकार को फांसने के दूसरे साधन चाहिए थे।

घटनाक्रम जब कहीं टूट जाता है, तो हम लुप्त कड़ियों को ढूंढ़ने का यत्न करते हैं।

शिकारी रात भर में ही मछियारा नहीं बन गया होगा। इसलिए मछली पकड़-ना सीखने के पहले वह मछली का शिकार करता होगा।

और यही असल में हुआ भी। मछली मारने का पहला औज़ार एक कांटेदार बर्छा था, जो बहुत कुछ शिकार के भाले जैसा ही था।

प्रागैतिहासिक मानव कमर तक पानी में जाकर चट्टानों में छिपी मछलियों को भाले से मारा करता था। इसके बाद उसने मछली को अन्य साधनों से पकड़ना सीखा। वह पक्षियों को जाल से पकड़ना सीख ही चुका था। उसने पानी में भी जाल डालने की कोशिश की। इस प्रकार धीरे-धीरे लोग मछली पकड़ने के लिए भी जाल का इस्तेमाल करने लगे।

पुरातत्त्वविदों को खुदाई में कोंच और कांटेदार बर्छियां, मछली पकड़ने के जालों के पत्थर के लंगर और मछली पकड़ने के हड्डी के बने कांटे मिले हैं।

शिकारी-मछियारे का घर

सोवियत पुरातत्त्वविद स० तोल्स्तोव और उनके सहकर्मियों ने आमू-दरिया और अरल सागर के संगम के निकट किज़िल-कुम रेगिस्तान में प्रागैतिहासिक शिकारी-मछियारों के एक शिविरस्थल की खोज की है।

एक टीले की चोटी पर रेत और मिट्टी की एक परत के नीचे, उन्हें चकमक के सुनिर्मित औज़ार, मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े और कूड़े के ढेर-के-ढेर मिले। रसोई के कूड़े के खत्तों में कई जंगली सूअरों, बारहसिंघों और लाल हिरनों की हड्डियां मिलीं। मगर ढेरों में अधिकांश पाइक और शीट मछलियों की हड्डियों का ही था। मछली ही उनका मुख्य खाना लगती थी।

एक जले हुए आवास के निशान भी थे। इसका जो कुछ भी बच रहा था, वह था राख और कोयले से भरे गढ़े, जले सरकंडों के टुकड़े और कोयले की काली धारियां, जो एक घेरे के केंद्रबिंदु पर मिलती थीं। इस जगह, आवास के बीचोंबीच, साफ़ सफ़ेद राख की एक परत थी, जिसके नीचे तपकर लाल सुर्ख़ हुई रेत की एक परत थी।

इस केंद्रीय चूल्हे के सभी ओर काली, मैली राख और रसोई के कूड़े से भरे और चूल्हे थे।

शिविरस्थल पर यही सब मिला था। इन कुछ जले हुए अवशेषों से अपनी साज-सज्जा सहित मूल आवास का पुनर्निर्माण करना और उसके निवासियों के जीवन का विवरण देना वैज्ञानिकों का काम था।

जिन लोगों को पुरातत्त्व का अधिक ज्ञान नहीं, वे इस समस्या को न हल कर पाते। लेकिन पुरातत्त्वविदों ने तुरंत अनुमान लगा लिया कि कोयला और राख

भरे गढ़े उन जगहों पर स्थित थे, जहां छत को थामनेवाली बल्लियां गड़ी हुई थीं। जले हुए सरकंडों के टुकड़ों ने बताया कि छत सरकंडों की बनी थी। बीच में मिलने-वाली काली धारियां आवास को नष्ट कर देनेवाली आग में बल्लियों के ज़मीन पर गिरने से बनी थीं।

बीच के चूल्हे पर खाना नहीं पकाया जाता था, क्योंकि अगर ऐसा होता, तो राख इतनी साफ़ और सफ़ेद न होती। यहां रेत की परत बहुत मोटी थी, क्योंकि बीच के चूल्हे में प्राचीन परिपाटी के अनुसार दिन-रात अखंड ज्वाला को जलाये रखा जाता था।

कोई आग ही इस ज्वाला को बुझा सकती थी।

घर की औरतें छत को थामनेवाले खंभों के बीच बने चूल्हों पर खाना पकाया करती थीं और यही कारण है कि वहां की राख इतनी मैली थी और ज़मीन हड्डियों से पटी हुई थी।

चूल्हे कई थे, जिसका मतलब था कि औरतें भी बहुत थीं। ये स्त्रियां, उनके पति और बच्चे बंधुता या सगोत्रता पर आधारित एक बिरादरी के सदस्य थे।

बिरादरी खासी बड़ी थी, जिसमें सौ या शायद उससे भी ज्यादा लोग थे। यही कारण है कि आवास इतना बड़ा था। लेकिन, अब भी यह देखने में अपने पुरखे – नुकीली छतवाले गोल झोंपड़े – से मिलता-जुलता था।

खंभों की दो क़तारों से होकर एक लंबा गलियारा प्रवेश-द्वार से बीच के चूल्हे की तरफ़ जाता था। गलियारे के दाईं तरफ़ खाना पकाने के चूल्हे थे, बाईं तरफ़ खाली जगह थी।

घर के भीतर उन्हें खाली जगह की क्यों ज़रूरत थी?

इसका उत्तर मध्य एशिया से बहुत दूर, अंदमान द्वीपसमूह में पाये जानेवाले संयुक्त आवासों में मिला। इन द्वीपों के निवासी इस खाली जगह का उपयोग जादुई संस्कारों और समारोहों के लिए करते थे।

यहीं, गलियारे के बाईं तरफ़ ही, पुरातत्त्वविदों को दीवार के साथ-साथ बहुत छोटे-छोटे चूल्हों के निशान मिले। यह वह जगह है, जहां शायद बिरादरी के अविवाहित सदस्य रहा करते थे।

इस प्रकार, वैज्ञानिक अपने मानस नेत्र में उस मकान का पुनर्निर्माण करने में सफल हो गये, जिसमें ये प्रागैतिहासिक मछियारे रहा करते थे।

फिर भी, अवशेषों ने उन्हें इसके बारे में कुछ भी नहीं बताया कि वे मछलियां कैसे पकड़ते थे, उनके पास डोंगियां थीं या नहीं।

एक प्राचीन डोंगी रूस में लादोगा झील के किनारे मिली थी।



जहाज़ों की परनानी

कोई साठ वर्ष हुए मज़दूर लादोगा झील के निकट एक नहर खोद रहे थे। पीट और रेत में खुदाई करते समय उन्हें मनुष्यों की खोपड़ियां और चकमक के औज़ार मिले।

पुरातत्वविदों को इसका पता चला। वे दलदल से भांति-भांति की चीज़ों को



इस प्रकार लाने लगे, मानो वह किसी संग्रहालय का शो-केस हो। उन्होंने चकमक के कुल्हाड़े, चकमक के हथौड़े, मछली पकड़ने के कांटे और फल, कांटेदार बर्छी और सील मछली के रूप में तराशे हुए हड्डी के तावीज खोद निकाले। फिर, चकमक और हड्डी की इन सब चीज़ों की खोज कर लेने के बाद उन्होंने अपनी सबसे बड़ी खोज की – एक बिन बिगड़ी डोंगी। यह इतनी अच्छी हालत में थी कि आदमी आज भी इसमें बैठकर मज़े में यात्रा कर सकता था। यह हमारे आज के जहाज़ों जैसी ज़रा भी नहीं थी। हमारी सभी नावों, भाप और तेल के जहाज़ों की परनानी एक बड़े बलूत के तने को खोखला करके बनाई गई थी।

अगर तुम इस डोंगी के भीतर निगाह डालो, तो तुम देख लोगे कि चकमक के कुल्हाड़े ने बलूत के तने पर किस तरह चोटें की थीं।

उन जगहों पर, जहां कुल्हाड़ा लकड़ी के तंतु-क्रम के साथ-साथ कटाई करता था, वहां बात इतनी नहीं बिगड़ी और सतह काफ़ी चिकनी है। लेकिन नाव के अगले और पिछले हिस्से में, जहां कुल्हाड़ा तंतु-क्रम के खिलाफ़ पड़ा है, काम सचमुच दम निकालनेवाला था। यहां लकड़ी पर सभी तरफ़ से चोटें की गई हैं। सभी जगह उभार और गिराव हैं, मानो चकमक के दांतों ने बलूत की लकड़ी को चबाया था। कुछ जगहों पर, जहां लकड़ी में गांठें थीं या उसकी वृद्धि टेढ़ी-मेढ़ी हुई थी, वहां कुल्हाड़ा बिलकुल ही बेकार साबित हुआ। तब, लकड़ी के खिलाफ़ कुल्हाड़े की लड़ाई में आग ने आकर कुल्हाड़े की मदद की।

सारा-का-सारा दुंबाल (नाव का पिछला हिस्सा) झुलसा हुआ है और कोयले की काली चिटकी हुई परत से ढंका हुआ है। लगता है कि इस ज़माने में एक डोंगी बनाना वैसा ही मुश्किल था, जैसा आज एक बड़ा जहाज़।

पास ही वैज्ञानिकों को चकमक का वह कुल्हाड़ा भी मिला, जिसने इस डोंगी को बनाया था। इसका धारवाला सिरा चिकना और तेज़ था। कुछ ही दूर, पीट में गड़ी एक सान भी थी। इसका मतलब था कि चकमक के औज़ार पहले की तरह सीधे गढ़ नहीं लिये जाते थे, बल्कि अब उन्हें चिकना और तेज़ भी किया जाता था।

और क्या भोथरा कुल्हाड़ा कभी मज़बूत बलूत को काट भी सकता था?

आदमी को बलूत को डोंगी में बदलने में बहुत समय और श्रम लगाना पड़ा।

आख़िर काम पूरा हुआ। नाव को पानी में उतार दिया गया। मछियारा-बिरादरी के लोग अपनी कांटेदार बर्छियां, कांटे, कोंच (मछलीमार भाले) और तरह-तरह के जाल लेकर झील पर चल पड़े।

झील बहुत बड़ी थी, उसमें मछलियों की भरमार थी, लेकिन लोगों में किनारे से बहुत दूर जाने की हिम्मत न थी, क्योंकि पानी लोगों के लिए एक नया और अनजाना जगत था। वे यह कैसे जान सकते थे कि वह कैसा है? वे यह कैसे अनुमान कर सकते थे कि अब वह क्या करेगा? एक दिन वह निश्चल और शांत होता। अगले ही दिन वह बड़ी-बड़ी और क्रोधपूर्ण लहरों के रूप में उबल पड़ता।

जिस विशाल बलूत को कोई भी तूफ़ान कभी नहीं गिरा सकता था, वह अब लहरों पर एक तिनके की तरह तैर और उछल रहा था।

आतंक से भरे लोग नाव को किनारे की तरफ़ ले आये। वहां ठोस जमीन उनका इंतज़ार कर रही थी, जिस पर उनके पैर चलने के आदी थे। धरती हिलती नहीं थी, वह उन्हें इधर-उधर उछालती नहीं थी।



और इसलिए प्रागैतिहासिक मनुष्य बच्चे की तरह धरती माता से चिपटा रहता था, जिसने उसका पोषण किया था।

मछली के पीछे आसमान तक फैले पानी के विस्तार के ख़तरों में जाने के बजाय मछियारे मछली के तट के पास आने की प्रतीक्षा किया करते थे।

धीरे-धीरे और बहुत ही सावधानी के साथ वे आत्मविश्वास प्राप्त करने लगे और ज़्यादा दूर जाने की हिम्मत करने लगे।

एक ज़माना था कि आदमी की दुनिया वहीं ख़त्म हो जाती थी, जहां पानी की शुरूआत होती थी। हर नदी के तट पर एक अदृश्य दीवार थी, जिस पर लिखा था: "प्रवेश वर्जित है।"

लेकिन मनुष्य इस अदृश्य दीवार को तोड़कर निकल आया। अभी तक वह अपनी इस नई दुनिया, पानी की दुनिया की सीमाओं के पास ही रहता था। लेकिन किसी भी नये उपक्रम में पहला क़दम लेना ही सबसे मुश्किल होता है। समय आयेगा कि वह तट से पूरी तरह से अलग हो जायेगा।

वह किसी कमज़ोर डोंगी पर सवार होकर नहीं, बल्कि एक ऐसे जहाज़ में जायेगा, जो उसे समुद्र पर ले जायेगा, जहां वह सुदूर क्षितिज के पार नये-नये तटों को, नये-नये देशों को ढूंढ़ेगा, जिसमें उसी की तरह के मनुष्य रहते हैं।

पहले कारीगर

नौजवान कारीगरो! मैं तुम लोगों से बात कर रहा हूं, जिन्होंने कुल्हाड़ी, रंदे, हथौड़े और बरमे का उपयोग करना अभी-अभी सीखा है। भावी इस्पात ढालनेवालो और रसायनज्ञो, मशीनों और हवाई जहाज़ों के डिज़ाइनरो, मकानों और जहाज़ों के बनानेवालो! मैं तुमसे बात कर रहा हूं।

यह किताब तुम लोगों के लिए लिखी गई है, जिन्हें अपने औज़ारों और अपने काम से प्यार है।

तुम जानते हो कि तुम्हारे औज़ार और जिस लकड़ी या धातु पर तुम काम कर रहे हो, उनकी आपस की लड़ाई कितनी ज़बरदस्त और सख़्त होती है, और इसमें प्राप्त विजय कितनी आनंददायी होती है!

जब तुम लकड़ी का एक टुकड़ा उठाते हो, तो तुम जो चीज़ बनाना चाहते हो, उसकी अपने दिमाग़ में कल्पना कर लेते हो। बात बड़ी ही आसान लगती है – यहां ज़रा-सा टुकड़ा काट दिया, यहां छेद कर दिया और यहां से ज़रा-सा टुकड़ा निकाल लिया। लेकिन लकड़ी राज़ी नहीं होती। वह अपने को काटनेवाले फल का पूरे ज़ोर से मुक़ाबला करती है।

एक के बाद दूसरा औज़ार लड़ाई में शामिल हो जाता है। अगर चाक़ू से काम नहीं चलता, तो कुल्हाड़ी से चल सकता है। अगर कुल्हाड़ी काफ़ी मज़बूत नहीं है, तो दर्जनों तेज़ दांतोंवाला आरा लड़ाई को जारी रखता है।

और कुछ समय में वह सब फालतू सामग्री छीलन, छिपटियों और बुरादे में बदलकर अलग कर दी जाती है, जिसने तुम्हारी वांछित आकृति को छिपाकर आंखों से ओझल कर रखा था।

तुम जीत गये। मगर जीत अकेले तुम्हारी ही नहीं है। तुम्हारी जीत उन सभी कारीगरों की बदौलत संभव हुई, जिन्होंने अनेक सदियों के दौरान उन औज़ारों का आविष्कार किया और उन्हें सुधारा, जिनका तुम उपयोग करते हो, जिन्होंने नई सामग्रियों की और उनके उपयोग के नये तरीक़ों की खोज की।

यहां, इस पुस्तक के पृष्ठों पर, तुम उन पहले कारीगरों के बारे में पढ़ भी चुके हो, जिन्होंने पहले चाक़ू, कुल्हाड़े और हथौड़े बनाये थे।

तुमने उन्हें काम करते देखा है। जिस तरह तुम्हारा काम कठिन है, इसी तरह उनका भी था, लेकिन इसने भी अंत में उन्हें बड़ी ख़ुशी दी।



ये पहले बढ़ई, किसान और राजगीर कपड़ों की जगह जानवरों की खालें पहना करते थे। उनके औज़ार बड़े भद्दे थे। डोंगी बनाने में वे कई महीने लगाते थे। हमारे लिए मूर्त्ति बनाना जितना मुश्किल है, उनके लिए खाना पकाने का मिट्टी का एक बर्तन बनाना उससे ज़्यादा मुश्किल था।

लेकिन ये बढ़ई, किसान और कुम्हार निर्माताओं, रसायनज्ञों और इस्पात ढालनेवालों की उस विशाल सेना के पहले सिपाही थे, जो अपने दैनिक श्रम से अब धरती का चेहरा बदल रहे हैं।

मिसाल के लिए, आदिकालीन कुम्हारों को ही ले लो। वे पहले आदमी थे, जिन्होंने एक नई तरह की सामग्री को तैयार किया, जो प्रकृति में नहीं मिलती थी। पहले, जब कोई प्रागैतिहासिक कारीगर चकमक की कुल्हाड़ी या हड्डी की कांटेदार बर्छी बनाता था, तब वह जिस सामग्री का उपयोग करता था, उसे बनाता नहीं था – वह बस उसकी सूरत बदल देता था। लेकिन यह कभी नहीं हुई थी। आदमी ने मिट्टी का एक बर्तन बनाया और उसे अलाव में पकाया। आग ने मिट्टी के सभी गुणों को बदलकर उसे ऐसा बना दिया कि उसे पहचाना भी नहीं जा सकता था।

पहले मिट्टी गीली होने पर हमेशा गारे में बदल जाती थी। लेकिन आग में पकाने के बाद उसे पानी का कोई डर न रहा। उसमें पानी डाला जा सकता था और इससे न उसकी आकृति बदलती थी, न वह मुलायम हो जाती थी।

प्रागैतिहासिक मनुष्य ने मिट्टी को एक नई वस्तु में बदलने के लिए आग का उपयोग किया। यह एक दुहरी जीत थी – मिट्टी पर जीत और आग पर जीत। ठीक है कि आग ने मनुष्य को ठंड से बचाकर, जंगली जानवरों को दूर रखकर, जंगलों को साफ़ करने में उसकी सहायता करके और डोंगी बनाते समय उसके कुल्हाड़े की मदद को आकर पहले भी मनुष्य की सेवा की थी। लोग आग पैदा करने का भेद भी जान चुके थे, जब भी वे लकड़ी के दो टुकड़ों को आपस में रगड़ते, आग उनके सामने निश्चय ही उपस्थित हो जाती थी।

अब आदमी ने आग को एक नया और कहीं मुश्किल काम दिया – एक वस्तु को दूसरी वस्तु में बदलने का काम।

जब मनुष्य ने आग के अद्भुत गुणों को जान लिया, तो उसने उससे मिट्टी

पकवाना, अपना भोजन तैयार करवाना, अपनी रोटी सिकवाना और तांबा पिघलवाना शुरू किया।

आज तुम्हें पूरी दुनिया में मुश्किल से ही कोई ऐसा कारखाना मिलेगा, जो किन्हीं वस्तुओं को अन्य वस्तुओं में बदलने के लिए आग का इस्तेमाल न करता हो।

आग कच्ची धातु से लोहा निकालने, रेत से कांच और लकड़ी से कागज़ बनाने में हमें सहायता देती है। इस्पात ढालनेवालों और रसायनज्ञों की एक पूरी फ़ौज इस्पात मिलों में जलनेवाली भट्टियों को नियंत्रित करती है। और इन सभी भट्टियों का प्रारंभ उस चूल्हे में हुआ था, जिसमें प्रागैतिहासिक कुम्हार ने अपना पहला, भद्दा और छोटा-सा तिकोना बर्तन पकाया था।

बीज साक्षी है

पुरातत्त्वविदों को एक प्रागैतिहासिक शिविरस्थल पर और कई चीज़ों में मिट्टी के कई मर्तबान भी मिले।

बाहर की तरफ़ इन मर्तबानों पर आपस में गुंथी हुई लकीरोंवाले एक बड़े ही सरल डिज़ाइन की सजावट थी। यह डिज़ाइन इस बात का सुराग़ है कि प्रागैतिहासिक कुम्हार अपने बर्तनों को किस प्रकार आकृति देते और पकाते थे।

एक बुनी हुई टोकरी को भीतर की तरफ़ मिट्टी की तह से ढंक दिया जाता था। इसके बाद टोकरी को आग पर रख दिया जाता था। सरकंडे जल जाते थे और भीतर का बर्तन बच जाता था। पौधों के तनों ने उसकी सतह पर जो आपस में गुंथे हुए निशान छोड़ दिये थे, वे ही डिज़ाइन बन जाते थे।

बाद में, जब कुम्हारों ने मिट्टी के बर्तनों को बुनी हुई टोकरियों के बिना पकाना सीख लिया, तब भी वे अनपके बर्तनों को उन्हीं चारखानेदार डिज़ाइनों से ही अलंकृत करते रहे। उनका ख़याल था कि उनकी दादियां-परदादियां जिस तरह के बर्तन इस्तेमाल करती थीं, उनका बर्तन अगर उन्हीं जैसा न हुआ, तो वह खाना ठीक से न पकायेगा।

प्रागैतिहासिक कारीगरों का विश्वास था कि प्रत्येक वस्तु में कोई अज्ञात, रहस्यमय शक्ति और गुण होता है। कौन जाने, बर्तन की असली शक्ति शायद उसके डिज़ाइन में ही हो! अगर उन्होंने डिज़ाइन बदल दिया, तो कहीं ज़िंदगी भर पछताना न पड़े, क्योंकि तब बर्तन दुर्भाग्य, बुरा समय और भुखमरी ला सकता था। कभी-कभी बर्तन को बुरी नज़र से बचाने के लिए कुम्हार उस पर कुत्ते की तसवीर बना दिया करता था।

कुत्ता मनुष्य का सहायक था, कुत्ता उसके साथ शिकार पर जाता था और उसके घर की रखवाली करता था।

बर्तन पर कुत्ते का चित्र बनाते समय कुम्हार अपने मन में कहता – कुत्ता रखवाला होता है, वह बर्तन की और उसमें रखी हर चीज़ की रखवाली करेगा।

चारखानेदार डिज़ाइनों से अलंकृत मिट्टी के मर्तबान कई जगहों पर मिले हैं। इनमें से एक, जो फ़्रांस में कांपीनी नगर के पास मिला था, बड़ा मशहूर हो गया।



उसकी जांच करते समय पुरातत्त्वविदों को उस पर जौ के एक दाने की छाप मिली।

अपनी खोज को उन्होंने बड़े जोश के साथ देखा। यह मात्र एक दाना नहीं था, यह एक साक्षी था, प्रागैतिहासिक मानव के जीवन में जो विराट परिवर्तन आ चुके थे, उनका एक नन्हा-सा साक्षी।

जहां अनाज का दाना था, वहां खेती भी हो सकती थी। यही कारण था कि उन्हें उसी स्थल पर अनाज कूटने की ओखलियां और चकमक की कुदालें भी मिलीं।

शिकारी और मछियारे प्रत्यक्षतः किसान भी बन गये थे। यह कैसे हुआ।

पहली बात तो यही है कि क़बीले के सभी सदस्य शिकार या मछली पकड़ने का काम नहीं करते थे। जब मर्द शिकार पर गये होते थे, औरतें और बच्चे टोकरियां और मिट्टी के बर्तन लिये खाने योग्य हर चीज को इकट्ठा करते इधर-उधर भटकते रहते थे। समुद्रतट पर वे शंबूक इकट्ठा करते थे। जंगलों में वे खुमियां, बेरियां और गिरीफल बीनते थे। उन्हें एकॉर्न (शाहबलूत के फल) खाने से भी कोई परहेज़ न था। वे एकॉर्न को पीस लेते थे और उसके आटे की रोटियां सेंक लेते थे। यही कारण है कि कुछ भाषाओं में "एकॉर्न" शब्द इतने लंबे समय तक "रोटी" के लिए प्रयुक्त शब्द के रूप में जमा रहा।

प्रागैतिहासिक क़बीले को जब जंगली मधुमक्खियों का छत्ता मिल जाता था, तब बड़ा आनंद मनाया जाता था।

एक चट्टान पर मिले एक चित्र में एक औरत को शहद इकट्ठा करते दिखाया गया है। उसे एक पेड़ पर दिखाया गया है। उसका एक हाथ खोखले में है, जबकि दूसरे में एक घड़ा है। छिड़ी हुई मधुमक्खियां उसके चारों तरफ़ भिनभिना रही हैं, लेकिन वह उनकी परवाह किये बिना छत्ते को खाली किये जा रही है।

औरतें और बच्चे अपने चक्करों के बाद बेरियों, शहद, जंगली सेबों और नाशपातियों से लदे हुए लौटते थे।



अब दावत उड़ाई जा सकती थी! मगर औरतों को खाने के अपने भंडार को खत्म कर देने की कोई जल्दी न रहती थी। वे बच्चों को भगा देती थीं और जितनी भी चीज़ों को रखा जा सकता था, उन्हें बर्तनों, कटोरों और पीपों में रख देती थीं। भोजन के ये भंडार सदा काम आते रहते थे, क्योंकि शिकार निश्चित कभी नहीं होता था।

इस प्रकार, गरम जलवायु ने लोगों को एक बार फिर बिनाई करनेवाला बना दिया। देखने में यह पीछे की तरफ़ एक क़दम लगता था। वास्तव में, यह आगे की तरफ़ एक छलांग थी, क्योंकि फिर, बिनाई को बुआई से जो रेखा अलग करती है, उसे पार करके उन्होंने बुआई शुरू कर दी।

औरतें फल और बेरियों के साथ जौ तथा गेहूं जैसी जंगली धान्य घासों के दाने लेकर आती थीं। अनाज के दानों को वे बर्तनों और टोकरियों में रख देती थीं, लेकिन कभी-कभी वे दो-तीन दाने ज़मीन पर गिरा देती थीं और वे समय आने पर उगना शुरू कर देते थे।

आरंभ में लोग अपने इकट्ठा किये हुए अनाज में से कुछ के बिखर जाने के

कारण उसकी बुआई अनजाने ही करते थे। इसके बाद उन्होंने अनाज को जानकर बोने के लिए बिखेरना शुरू कर दिया।

अनाज के गाड़े जाने और फिर जीवित हो जाने के बारे में कितनी ही जातियों में अभी तक कथाएं और आख्यान प्रचलित हैं।

पुराने जमाने में जब स्त्रियां धरती को अपनी कुदालों से खोदती थीं और फिर उसमें अनाज को दाबती थीं, तब उन्हें विश्वास रहता था कि वे एक रहस्यमय देवता को गाड़ रही हैं, जो बाद में अनाज की सुनहरी बालियों के रूप में उनके पास लौट आयेगा। शरद में जब वे फ़सल काटती थीं, तो वे देवता के परलोक से लौट आने पर खुशियां मनाया करती थीं।

जब वे आखिरी पूला बांध लेतीं, तो वे उसे ज़मीन पर रख देतीं और फिर उसके इर्द-गिर्द नाचतीं और गातीं। यह कोई मामूली नाच नहीं होता था। यह एक जादू-टोने का संस्कार होता था। स्त्रियां परलोक से लौट आने के लिए अनाज की स्तुतियां करती थीं और उससे सदा ही कृपा करने का अनुरोध करती थीं।

नये में पुराना

इस शताब्दी के आरंभ में महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के पहले रूस में ऐसी जगहें थीं, जहां प्रत्येक शरद में जब फ़सल काट ली जाती थी, तो स्त्रियां "कटाई" का उत्सव मनाया करती थीं।

वे आखिरी पूला लेतीं और उसके ऊपरी सिरे पर रूमाल बांध देतीं और उसे साया पहना देतीं। इसके बाद वे एक-दूसरे के हाथ पकड़कर उसके गिर्द घेरा बना लेतीं और गातीं:

आज हुई है कटाई
हमारे खेतों की,
जय हो, जय हो, जय हो!
एक की हुई है कटाई,
और एक की हुई बुआई,
जय हो, जय हो, जय हो!

प्रार्थना के इस गीत की अजीब और नीरस आवाज उन मस्ती भरे गीतों से ज़रा भी मेल नहीं खाती थी, जिन्हें गांव के नौजवान लड़के और लड़कियां शाम को टहलते समय गाते थे।

"कटाई" एक पुराना संस्कार था, जो युगों-युगों से सबसे पहले किसानों के समय से चला आ रहा था। ऐसे कितने ही संस्कार खेलों और गीतों के रूप में हम तक आ गये हैं।

बच्चे हाथ में हाथ जोड़कर गाते हैं:

अरे, हमने बोया था बाजरा,
हां, बाजरा, भई बाजरा।
अरे, हमने बोया था बाजरा,
हां, बाजरा, भई बाजरा।

खेल का यह गीत भी प्राचीन काल में एक संस्कार ही था। हज़ारों वर्षों की अवधि में इसमें जादू का जो अंश था, वह बिलकुल ही लुप्त हो गया। बस तमाशा ही बाक़ी रह गया।

और देवदार का पेड़ भी! किसी ज़माने में देवदार एक पवित्र वृक्ष था। लोग इसके चारों तरफ़ यह समझकर नाचते थे कि उनकी जादू-टोने भरी गतियों से सोये हुए जंगल और खेत फिर जाग जायेंगे और शीतकाल के बाद वसंत आ जायेगा।

नववर्ष-वृक्ष पर बच्चों को खिलौने टांगने में कितना मज़ा आता है! अगर उनसे कहा जाये कि देवदार का पेड़ एक पवित्र वृक्ष था, तो वे हंस पड़ेंगे। उनके लिए यह सर्दियों के ठीक बीच में आनंदपूर्ण अवकाश का प्रतीक है।

कितने ही प्राचीन संस्कार और जादू के मंत्र आज भी बच्चों के खेलों और गीतों में ज़िंदा रहते चले आ रहे हैं:

बरखा, बरखा, अब तुम जाओ!
बरखा, बरखा ज़ोर-ज़ोर से आओ!

बच्चे जब यह गीत गाते हैं, तो न वर्षा को बुलाने के लिए, न बादलों को छितराने के लिए। वे भलीभांति जानते हैं कि शब्दों का वर्षा पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। वे यह गीत बस इसलिए गाते हैं कि यह खेल है।

और बड़ों को भी ऐसे गीत गाने और खेल खेलने पर कोई आपत्ति नहीं, जिनका किसी ज़माने में मतलब ही अलग था।

इस प्रकार हंसी-खुशी भरे खेलों के ज़रिये प्राचीन विश्वास और जादू-टोने के संस्कार हम तक चले आये हैं।

लेकिन, उन्हें खेलों के अलावा भी बरक़रार रखा गया है।

गिरजाघरों में जब ईस्टर मनाया जाता है, तो प्रार्थना के शब्दों में हमें प्राचीन जादू-टोने के गीतों का प्रतिबिंब मिलता है।

प्रागैतिहासिक खेतिहरों के ही गीतों की तरह इन प्रार्थनाओं में भी मृत्यु और पुनरुज्जीवन की बात की जाती है।

बाहरी दुनिया में जो बातें कभी की खेलों और नाचों में बदल चुकी हैं, गिरजाघर के भीतर वे अभी तक पवित्र संस्कार बनी हुई हैं।

पुराने ज़माने से हम तक कितने ही अंधविश्वास और पूर्वाग्रह चले आये हैं।

हमारे ज़माने में भी ऐसे लोग हैं, जो अभी तक इस बात पर विश्वास करते हैं कि अगर उन्हें घोड़े की नाल मिल जाये, तो यह उनके लिए शुभ रहेगा, और अगर अपने बायें कंधे पर उन्हें दूज का चांद दिख जाये, तो यह अशुभ रहेगा।

नगर के पास की एक सामूहिक फ़ार्म पर काम करनेवाली औरत ने हमें बताया कि क्रांति के पहले के ज़माने में उसके गांव की स्त्रियां अपनी मुर्ग़ियों के दरबों पर एक "मुर्ग़ा देवता" लटका दिया करती थीं।

"मुर्ग़ा देवता" एक पत्थर होता था, जिसके बीच में छेद होता था। इसे दरबे पर इसलिए लटकाया जाता था कि मुर्ग़ियां ज़्यादा अंडे दें।

इस तरह अंधविश्वास सदियों जीते रहते हैं। पत्थर का "मुर्ग़ देवता" पाषाणयुग का एक टुकड़ा था, फिर भी यह बीसवीं सदी के आरंभ काल तक जीवित रहा।

अद्भुत भंडारघर



औरतें जब ज़मीन को अपनी कुदालों से खोदने में लगी होतीं, तो मर्द खाली न बैठे रहते। वे अपने दिन शिकार में बिताते और देर गये सांझ को अपने विजय-चिह्नों के साथ लौटते।

अपने पिता और बड़े भाइयों को लौटते देखकर बच्चे यह मालूम करने के लिए कि शिकार सफल रहा या नहीं, लपककर उनके पास जाते। जंगली सूअर के खून में सने सिर की तरफ़, जिसके मुंह से दो मुड़े हुए दांत बाहर निकले हुए थे, या बारहसिंघे के शाखाओंवाले सींगों की तरफ़ वे बड़े कुतूहल के साथ देखते। लेकिन उन्हें सबसे ज़्यादा खुशी तब होती, जब शिकारी जिंदा जानवरों को लेकर वापस आते – नन्हे-नन्हे, दीन भेड़ों के मेमने या असहाय और बिना सींगों के बछड़े-बछियाएं।

शिकारी अपने चौपाये क़ैदियों को तुरंत ही नहीं मार डालते थे। उन्हें एक बाड़े में रखा जाता था और खिलाया-पिलाया जाता था कि वे बढ़ते रहें। घर के पास बछड़े रंभाते और मेमने मिमियाते रहते, तो शिकारी अधिक निश्चिंत रहते थे। वे जानते थे कि अगर अगले शिकार से वे खाली हाथ भी लौटे, तो उन्हें भूखा न रहना पड़ेगा। बाड़ों में उन्होंने अपना खाद्य भंडार रख छोड़ा था, और यह भंडार ऐसा था जो अपने आप बड़ा होता रहता था और संख्या में भी बढ़ता जाता था।

शुरू-शुरू में लोग चौपायों को उनके मांस और खालों के लिए ही रखा करते थे। पशुपालन में जो भारी लाभ है, उसका उन्हें पता नहीं था। शिकारी इन खुरदार जानवरों को अपने शिकार की ही निगाह से देखते थे और अपने शिकार को मारने के वे आदी थे। उनके लिए यह समझना आसान नहीं था कि गाय या भेड़ को जिंदा रखना उसे मारने से ज़्यादा फ़ायदेमंद है।

गाय को खाया एक ही बार जा सकता है, मगर उसका दूध बरसों पिया जा सकता है। गाय को अगर वे मारें नहीं, तो अंततः एक ही गाय से उन्हें ज़्यादा मांस मिलेगा, क्योंकि गाय हर साल बच्चा जनती है।

भेड़ के बारे में भी यही बात थी। मरी हुई भेड़ की खाल उतारना कोई मुश्किल न था। लेकिन एक खाल ज़्यादा काम की न थी। यह बात ज़्यादा फ़ायदे की थी कि खाल को भेड़ पर ही रहने दिया जाये और उसका ऊन काट लिया जाये, क्योंकि उस पर हर मुंडाई के बाद नया ऊन उग आता था। इस तरीक़े से उन्हें एक ही भेड़ से दस-दस लबादे तक मिल सकते थे। चौपाये क़ैदियों को प्राणदान दे देना और बदले में उनसे खिराज ले लेना ज़्यादा अच्छा था।

जब आदमी ने गाय, भेड़ और घोड़े का पालतू बना लिया, तो वह उन्हें अपनी मरज़ी के मुताबिक़ पालने-पोसने लगा। वह इस बात का ध्यान रखता कि उनका

पेट भरता रहे और वे ठंड से बचे रहें। लेकिन बदले में गाय को पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा दूध देना पड़ता था, क्योंकि अब उसे केवल अपने बछड़े को ही नहीं, बल्कि अपने मालिकों को भी दूध पिलाना पड़ता था। धीरे-धीरे घोड़े ने भारी बोझ ढोना सीख लिया। भेड़ के पास अब ख़ुद अपने और अपने मालिकों के लिए काफ़ी ऊन था।

झुंडों में सबसे ज्यादा दूध देनेवाली गायों, सबसे मज़बूत घोड़ों और सबसे लंबे ऊनवाली भेड़ों को ही रहने दिया जाता था। इस तरह घरेलू पशुओं की नई नस्लें पैदा हुईं।

लोगों ने यह एकाएक ही शुरू नहीं कर दिया। शिकारी को पशुपालक बनने में कई सदियां लग गईं।

और अंत में क्या हुआ?

लोगों ने एक अद्भुत भंडारघर खोजा। अपने बोने हुए दानों को वे धरती में छिपा देते थे, और धरती उनके बोये हर दाने के बदले उन्हें ढेरों दाने लौटा देती थी।

वे अपने पकड़े सभी जानवरों को नहीं मार देते थे और जिन्हें वे ज़िंदा रहने देते थे, वे बड़े होते थे और अपनी संख्या-वृद्धि करते थे।

आदमी ज्यादा आज़ाद हो गया, वह अपने को प्रकृति पर कम आश्रित अनुभव करने लगा। पहले वह कभी नही जानता था कि वह किसी जानवर का पीछा करके उसे मार सकेगा या नहीं, उसे अपनी टोकरियां भरने लायक़ काफ़ी अनाज मिलेगा या नहीं। प्रकृति की रहस्यमय शक्तियां उसे उसका भोजन दे भी सकती थीं और नहीं भी। अब मनुष्य ने प्रकृति की सहायता करना सीख लिया था – उसने अपना अनाज पैदा करना और अपनी गायें-भेड़ें पालना-पोसना सीख लिया था। औरतों को अब जंगली धान्य घासों की तलाश में नहीं जाना पड़ता था। शिकारियों को जंगल में जंगली जानवरों की तलाश और उनका पीछा करने में अपने दिन बिताना नहीं पड़ते थे।



अब अनाज की बालियां घर के पास ही उगती थीं, और उनके निकट ही गायें और भेड़ें चरा करती थीं।

मनुष्य ने एक अद्भुत भंडारघर पा लिया था। फिर भी, यही कहना ज्यादा सही रहेगा कि यह उसे अचानक ही नहीं मिल गया था, वरन उसने इसका अपने श्रम से निर्माण किया था।

उसे अपने खेतों और चरागाहों के लिए ज़मीन चाहिए थी। ज़मीन को जंगल से छीनना था, बुआई के पहले उसकी खुदाई करनी थी। यह कितना कठिन परिश्रम था!

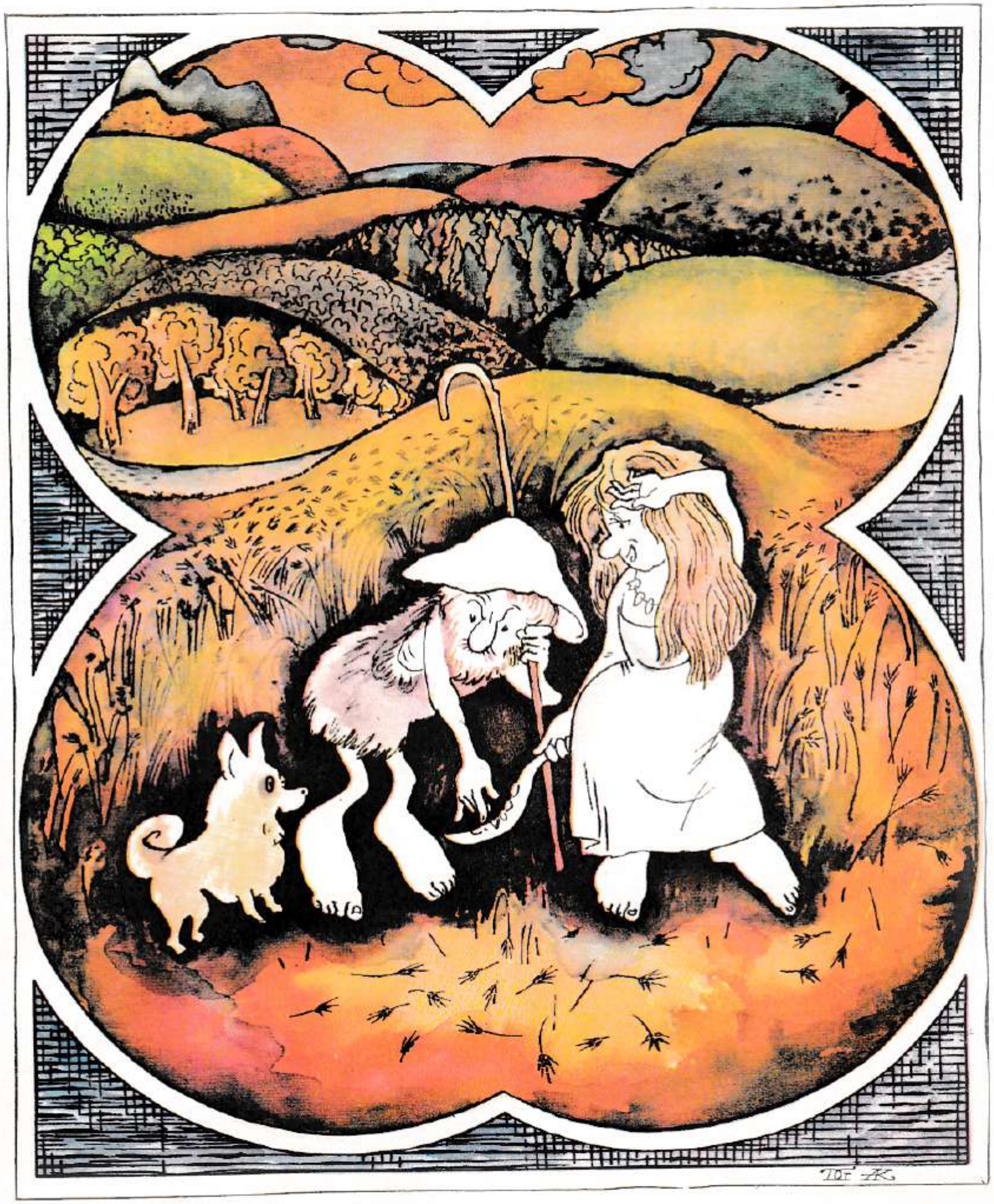
मनुष्य प्रकृति से अपनी स्वतंत्रता और स्वाधीनता की तरफ़ ऐसे ही नहीं चला आया, उसे हज़ारों ही बाड़ों को लांघकर अपना रास्ता निकालना पड़ा। उसकी नई उद्यमशीलता ने उसकी ख़ुशियों और चिंताओं को बढ़ा दिया था। सूरज फ़सल को जला सकता था, वह चरागाहों की हरी घास को सुखा सकता था। अतिवर्षा से अनाज सड़ सकता था।

प्रागैतिहासिक शिकारी बाइसन या रीछ से अपने मांस का दान करने का अनुरोध करता था। प्रागैतिहासिक किसान धरती, आकाश, सूर्य और वर्षा से अच्छी फ़सल देने की प्रार्थना करता था।

लोगों ने नये देवी-देवताओं को जन्म दिया। ये देवता बहुत कुछ पुराने देवी-देवताओं जैसे ही थे। प्रथा के अनुसार वे अभी तक जानवरों के ही रूप में, या जानवरों के सिरवाले मनुष्यों के रूप में बनाये जाते थे। लेकिन इन पशुओं के नाम भी नये थे और काम भी।

एक का नाम आकाश था, दूसरे का सूर्य, तो तीसरे का पृथ्वी। उजाला और अंधेरा, वर्षा और सूखा पैदा करना इनका काम था। हमारे मनुष्य ने प्रौढ़ता की ओर कुछ और डग भरे थे, लेकिन वह अभी अपनी शक्ति को नहीं जानता था। उसे अभी तक यही विश्वास था कि उसका दैनिक भोजन उसके अपने श्रम का परिणाम नहीं है, बल्कि आकाश से प्रसाद के रूप में मिलता है।





समय की सूई आगे चलती है

चलो, समय की सूई को कई हज़ार साल आगे ले जायें। तब हमारी कहानी के और आधुनिक काल के बीच सिर्फ़ पचास सदियां ही रहेंगी।

पचास सदियां! किसी आदमी की ज़िंदगी या किसी जाति के इतिहास तक की बात करें, तो यह बहुत लंबा समय है। लेकिन हम एक आदमी की बात नहीं कर रहे हैं, हम पूरी मानव-जाति की बात कर रहे हैं।

मानव-जाति की आयु लगभग दस लाख वर्ष है। यही कारण है कि पचास सदियां कोई बहुत लंबा ज़माना नहीं है।

तो समय की सूई आगे आ गई है। पृथ्वी ने सूर्य की कई हज़ार परिक्रमाएं और कर ली हैं। पृथ्वी के गोले पर इस अरसे में क्या हुआ है? यह कहने के लिए कि ऊपर की तरफ़ यह ख़ासा गंजा हो गया है एक निगाह ही काफ़ी है।

एक ज़माना था कि इसकी बर्फ़ की सफ़ेद टोपी के इर्द-गिर्द घने हरे जंगल उगे हुए थे। अब जंगल कम घने हो गये और स्तेपी की चौड़ी-चौड़ी धारियां उनमें गहराई तक घुस आईं। जहां-तहां पेड़ों के झुंड को धूपदार खुली जगहों ने पीछे धकेल दिया। नदियों और झीलों के पास जंगल सरकंडों और झाड़ियों के लिए जगह छोड़कर पीछे हट गये।

लेकिन नदी के मोड़ के पास पहाड़ी पर वह क्या है? यह ढाल के ऊपर पड़े एक पीले रूमाल जैसा नज़र आता है।

यह इंसान के हाथों से बदला गया धरती का एक टुकड़ा है। सुनहरी बालियों में हमें औरतों की झुकी हुई पीठें दिखाई देती हैं। उनकी दरांतियां तेज़ी से अनाज काट रही हैं।

हमने हथौड़े को हज़ारों वर्ष पहले काम करते देख लिया था, मगर दरांती को देखने का यह हमारा पहला मौक़ा है। यह हमारी देखी हुई दरांतियों की तरह ज़रा भी नहीं है, क्योंकि यह चकमक और लकड़ी की बनी है,. जिसमें लकड़ी के फ़्रेम में चकमक के दांते लगे हैं।

हम जिस खेत में आये हैं, वह संसार के सबसे पहले खेतों में से एक है। अपार वनविस्तारवाली पृथ्वी पर ऐसे पीले "रूमाल" अब बहुत कम हैं।

अनाज को घासपात सभी तरफ़ से बेजान किये दे रहे हैं, क्योंकि लोगों ने उनसे लड़ना अभी नहीं सीखा है। फिर भी, अंत में अनाज की बालियों की ही जीत होती है। एक समय आयेगा जब ये पीले खेत धरती पर एक सुनहरे महासागर की तरह फैल जायेंगे।

दूरी पर हमें नदी के किनारे हरे चरागाह पर सफ़ेद, कत्थई और चितकबरी आकृतियों का एक झुंड दिखाई देता है। ये आकृतियां चल रही हैं, कभी अलग हो जाती हैं, तो कभी फिर पास-पास आ जाती हैं।

कुछ आकृतियां औरों से बड़ी हैं। हां, यह गायों, बकरियों और भेड़ों का झुंड है। मानव-प्रयास से उत्पन्न और परिवर्तित हुए इन जानवरों की संख्या अभी बहुत



कम है। लेकिन अपने जंगली संबंधियों की तुलना में, जिन्हें अपनी देखभाल आप करनी पड़ती है, ये कहीं तेज़ी से वंश-वृद्धि करते हैं।

दो या तीन हज़ार वर्षों में संसार में गायों और बैलों की तुलना में जंगली भैंसे बहुत कम बाक़ी रह जायेंगे।

अगर खेत हैं और जानवरों का भुंड भी है, तो पास ही कहीं बस्ती भी होनी चाहिए। और यह रही वह – नदी के ऊंचे किनारे पर। यह कोई शिकारियों का शिविरस्थल नहीं है। खंभों और डालियों की बनी यहां कोई झोंपड़ी नहीं है। इसके बजाय यहां तिकोनी छतोंवाले लकड़ी के असली घर हैं। दीवारों पर मिट्टी की पुताई है। प्रवेशद्वार के ऊपर एक शहतीर बाहर निकली हुई है। इसके सिरे पर इस घर के रक्षक देवता बैल के सींगदार सिर की तराशी हुई मूर्त्ति है। पूरी बस्ती एक ऊंचे कठघरे और मिट्टी के परकोटे से घिरी हुई है।

हवा धूएं, खाद और ताज़े दूध की गंध से महक रही है।

घरों के पास बच्चे खेल रहे हैं, जबकि पास ही कीचड़ में सूअर लोट रहे हैं। खुले दरवाज़े से चूल्हे में आग देखी जा सकती है। एक बुढ़िया चपातियां सेंक रही है। वह गुंधे हुए आटे की लोइयों को गरम राख पर रखती है और चपातियों को मिट्टी के बर्तन से ढंकती जाती है। उसके पास एक बेंच पर लकड़ी के कटोरे और प्याले रखे हैं।

चलो, गांव से चलते हैं और नदी पर जाते हैं। पानी भरी एक डोंगी तट के पास उथले पानी में हचकोले खा रही है। अगर हम नदी के रास्ते ऊपर की तरफ़ उस झील तक जायें, जहां से यह निकलती है, तो हमें एक गांव और मिलेगा, मगर इससे बिलकुल भिन्न। दूसरा गांव टापू की तरह पानी के बीच स्थित है।

सबसे पहले, झील की तली में नुकीली बल्लियां ठोंक दी जाती थीं। बल्लियों पर लट्ठे लगा दिये जाते थे और लट्ठों के ऊपर तख़्तेबंदी कर दी जाती थी। लंबे डगमगाते पुल लकड़ी के टापू को तट से जोड़ते हैं। घरों की दीवारों पर टंगे जाल और मछली पकड़ने के दूसरे साधन सूख रहे हैं। झील में मछलियों की भरमार होनी चाहिए। लेकिन इस गांव के निवासी केवल मछियारे ही नहीं हैं। मकानों के बीच यहां-वहां हमें नुकीली छतोंवाली खत्तियां मिलती हैं। खत्तियां गुथी हुई टहनियों की बनी हैं। उनमें अनाज भरा है। उनके बराबर में गोशालाएं हैं।

यद्यपि कल्पना में यह प्राचीन बस्ती बहुत वास्तविक लगती है, असल में वह कभी की धूल में परिणत हो चुकी है। भूतपूर्व मकानों की छतें पानी के नीचे चली गई हैं। झील की तली पर हम इन मकानों के अवशेष कैसे पा सकते हैं? यह बात एकदम असंभव लगती है। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई झील हट जाती है और हमारे सामने उन रहस्यों को खोल देती है, जिन्हें उसने सदियों से छिपा रखा था।

झील की कहानी

१८५३ में स्विटज़रलैंड में एक भयानक सूखा पड़ा। घाटियों में नदियां सूख गईं, झीलों का पानी तटों से हट गया और उसने गाद से ढके तलों को खोल दिया। ज़्यूरिच झील के तट पर स्थित आबेरमाइलेन नगर के लोगों ने इस सूखे का फ़ायदा उठाकर झील से ज़मीन का एक टुकड़ा छीन लेने की सोची।

इसका मतलब था कि पानी से निकली सूखी ज़मीन की पट्टी को शेष झील से अलग करने के लिए उन्हें उस पर बांध बनाना था।

काम शुरू हो गया। पहले जिस जगह रविवार के दिन शहर के बने-ठने लोग नीली और हरी नावों पर नौका-विहार करते थे, वहां अब ठेलेवाले बांध के लिए मिट्टी के बोझ के बाद बोझ लानेवाली ठेलागाड़ियों में जुते घोड़ों पर चीखने-चिल्लाने लगे। बांध के लिए मिट्टी उन्हें झील के पेंदे से, जो अब अप्रत्याशित रूप से सूखी ज़मीन बन गया था, वहीं मिल गई। तभी अचानक ज़मीन खोदनेवालों में से एक का बेलचा एक सड़ी हुई बल्ली से जा लगा। उसी के पास उन्हें एक और फिर एक और बल्ली मिली। प्रकटतः यहां लोग पहले काम कर चुके थे। हर बेलचा भर मिट्टी चकमक के कुल्हाड़े, मछली पकड़ने के कांटे और मर्तबान लेकर आती। शीघ्र ही पुरातत्त्वविद मौक़े पर पहुंच गये। उन्होंने हर बल्ली, झील के पेंदे पर मिली हर वस्तु का अध्ययन किया और बैसाखियों पर बने एक गांव को काग़ज़ पर पुनर्निर्मित किया, जो किसी ज़माने में ज़्यूरिच झील के तट पर खड़ा हुआ था।

इसी प्रकार के तख़्तों पर बने और बल्लियों पर खड़े गांवों के अवशेष रूस में मास्को के निकट क्ल्याज़्मा नदी और मूरोम के पास वेलेत्मा नदी के किनारे मिले। यहां मिली विभिन्न वस्तुओं में मछलियों की हड्डियां, कांटेदार बर्छियां और मछली पकड़ने के कांटे थे।

हमारी शती में पुरातत्त्वविदों ने स्विटज़रलैंड में नॉएशातेल झील का अध्ययन किया। झील के पेंदे को कई जगहों पर काटकर उन्होंने पाया कि वह कई परतों का बना है।

जिस तरह कचौड़ी में पपड़ी को भीतर भरी चीज़ से अलग करना आसान होता है, उसी तरह यहां भी यह एकदम साफ़ था कि एक परत कहां शुरू हुई और दूसरी कहां ख़त्म हुई। सबसे नीचे की परत रेत की थी, इसके बाद मनुष्य के आवासों, घरेलू सामान और औज़ारों के अवशेषों से भरी गाद की एक परत आई, इसके बाद फिर रेत की एक परत। यह क्रम कई बार आया। एक जगह पर रेत की दो परतों के बीच कोयले की एक मोटी परत थी।

ये सभी परतें कैसे बनीं?

पानी केवल रेत ही जमा कर सकता था। कोयला कहां से आया?

यह केवल आग से ही आ सकता था।

परतों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करके पुरातत्त्वविदों ने झील के इतिहास को जाना। एक बार बहुत-बहुत पहले लोग झील पर आये और उन्होंने इसके किनारे एक बस्ती बसाई। फिर कई वर्ष बाद झील में बाढ़ आई और उसने किनारों को पानी में डुबा लिया।



लोगों ने अपने बाढ़ग्रस्त गांव को छोड़ दिया। मकान पानी में सड़ गये और

टुकड़े-टुकड़े हो गये। जहां किसी समय शहतीरों के नीचे अबाबीलें घोंसले बनाया करती थीं, वहां अब छोटी-छोटी मछलियों के दल इधर-उधर तैरने लगे। किसी समय जो किसी मकान का दरवाज़ा था, उससे अब तेज दांतोंवाली पाइक मछलियां मंथर गति से तैरकर निकलती थीं। चूल्हे के पास जो बेंच थी, उसके नीचे झींगा मछलियां अपनी संडसियां चलाती थीं। शीघ्र ही खंडहर गाद की एक परत के नीचे दब गये और रेत से ढंक गये।

कालांतर में झील बदल गई। पानी तट से उतर गया और पेंदा उघड़ गया। जिस बलुई भित्ति पर कभी गांव था, वह भी फिर नज़र आने लगी। लेकिन गांव का कहीं कोई निशान न था, क्योंकि उसके खंडहर रेत में गहराई पर दबे हुए थे।

अब लोग फिर तट पर आये। कुल्हाड़ों की आवाज़ हवा में गूंजने लगी। पीली रेत पर लकड़ी की खपचियां बिखर गईं। एक के बाद एक पानी के निकट नये मजबूत घर खड़े होने लगे।

आदमी और झील के बीच लड़ाई चलती रही। कभी एक पक्ष की जीत होती, तो कभी दूसरे की। लोग अपने घर बनाते, और झील उन्हें नष्ट कर देती।

आखिर लोग लड़ाई से उकता गये। उन्होंने अपने घरों को पहले की तरह पानी के किनारे पर नहीं, बल्कि उसके ऊपर बनाने का निश्चय किया। उन्होंने झील के पेंदे में लंबी बल्लियां ठोंकीं। तख़्तेबंदी की दरारों में से वे बहुत नीचे छप-छपाते पानी को देख सकते थे। लेकिन अब उन्हें इसकी चिंता न थी। यह जितना चाहे उठे मगर तख़्तेबंदी तक कभी नहीं पहुंच सकता था।

लेकिन झील के निवासियों की एक बैरिन और थी और यह भी आग।

प्रागैतिहासिक गुफावासी आग से नहीं डरते थे, क्योंकि उनकी गुफाओं की पत्थर की दीवारें कभी नहीं जला सकती थीं।

लेकिन लकड़ी के पहले मकानों के बनने के कुछ ही बाद पहली आगें भी लगी थीं। जिस प्रज्ज्वलनशील लाल पशु ने मनुष्य की हज़ारों वर्षों से आज्ञाकारितापूर्वक सेवा की थी उसने अब अपने दांत उघाड़ दिये।

नॉएशातेल झील के पेंदे पर मिली कोयले की मोटी परत एक प्राचीन अग्निकांड की स्थली थी।

यह कैसी विनाशक आपदा थी! लपटों से बचने के लिए लोग अपने बच्चों को सीने से चिपटाये पानी में कूद पड़े। जानवर अपने थानों पर चीखते रहे, मगर उन्हें बाहर निकालने का समय नहीं था। लकड़ी का गांव सभी दिशाओं में चिंगारियों की बौछार करता एक विशाल होली की तरह जलकर स्वाहा हो गया।

आग सचमुच एक विनाशक घटना थी।

लेकिन जिस आग ने ग्रामवासियों के घरों को नष्ट किया, उसी ने हमारे संग्रहालयों के लिए अमूल्य वस्तुओं को सुरक्षित किया। इन वस्तुओं में लकड़ी के बर्तन, मछली पकड़ने के जाल और अनाज के दाने और पौधों के तने तक थे।

वह कौनसा चमत्कार था, जिसने उन वस्तुओं को बचाकर रखा जो सबसे जल्दी जल जाती हैं?

जो हुआ, वह यह था।

जब अलग-अलग चीज़ों ने आग पकड़ी, तो वे पानी में गिर पड़ीं। पानी ने उन्हें बचा लिया, क्योंकि उसने आग को बुझा दिया और वे बिना हानि हुए तले पर जा डूबीं। वहां उनके लिए एक नया ख़तरा था – वे पानी में गल सकती थीं। उन्हें दूसरी बार जिस चीज ने बचाया, वह यह थी कि वे झुलस गई थीं। कोयले की पतली-सी परत ने उन्हें गलने से बचा लिया।

पानी और आग ने अगर अलग-अलग काम किया होता, तो वे निस्संदेह इन सभी चीज़ों को नष्ट कर देते। लेकिन मिलकर काम करके उन्होंने हजारों वर्ष पहले बुने लिनेन के कपड़े के एक नमूने जैसी नाज़ुक चीज को भी आज तक बचाकर रख लिया।

पहला कपड़ा

पहला कपड़ा हाथ से बुना गया था।

एस्किमो लोग आज भी बुनाई के लिए करघे का उपयोग नहीं करते, वे अपना कपड़ा हाथ से बुनते हैं। वे लंबाई की ओर जानेवाले धागों (ताने) को एक चौखटे पर लगा देते हैं। फिर वे आर-पार जानेवाले धागों (बाने) को ढरकी का उपयोग किये बिना हाथ से ले जाते हैं। धागे लगे हुए इस छोटे से चौखटे में आधुनिक करघा पहचानना कठिन है। फिर भी, आधुनिक करघे का जन्म लकड़ी के इस साधारण चौखटे से ही हुआ था।

झील के पेंदे पर मिला झुलसा हुआ और काला पड़ा चिथड़ा हमें मनुष्य के जीवन की एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना के बारे में बताता है। वह जो सदा जानवरों की खालें ही पहना करता था, उसने अब अपने लिए लिनेन की, जिसे उसने खेतों में बोया और काटा था, "खाल" बना ली थी।

सूई, जो कपड़े के ईजाद किये जाने के हज़ारों साल पहले पैदा हो चुकी थी, उसे आखिर जिंदगी में अपनी वाजिब जगह मिल गई। वह जानवरों की खालों को नहीं, कपड़े के टुकड़ों को सीने लगी।

औरतों के लिए सुंदर-सुंदर नीले फूलोंवाले सन के खेतों का मतलब ज्यादा चिंता और परेशानी थी।



उनके हाथ कटाई करते-करते दुखने लगते, मगर सन उखाड़ने का समय होता। पहले उन्हें हर पौधे को जड़ सहित उखाड़ना पड़ता। इसके बाद सन को सुखाया, धोया और फिर सुखाया जाता। इसी पर अंत किसी भी तरह न हो जाता। सूखे सन को कूटा, पीटा और कंघों से झाड़ा जाता। आखिर अब गांवों के बालकों के सनई बालों जैसा हलके रंग का धुला और झाड़ा हुआ सन तैयार हो जाता। अब तकलियां रेशे को धागे में बदलती हुई घूमना शुरू कर देतीं। और धागा बनने के बाद इसे बुना जा सकता था।

कपड़ा बनाने के लिए बड़ा काम करना पड़ता था, लेकिन स्त्रियों के पास अब अपनी सारी मुसीबतों के बदले में रंगीन झालर और किनारियोंवाले खूबसूरत रूमाल, एप्रन और लहंगे भी तो थे।

पहले खनिक और इस्पात ढालनेवाले

आजकल हर घर में ऐसी चीजें होती हैं, जो कृत्रिम सामग्री की, उन चीजों की बनी होती है, जो प्रकृति में नहीं मिलतीं।

प्रकृति में न ईंट है, न चीनी, न ढलवां लोहा है, न कागज। चीनी मिट्टी और ढलवां लोहा बनाने के लिए आदमी को प्रकृति में मिली वस्तुओं का उपयोग करके उन्हें इतना बदल देना पड़ा कि वे पहचान में भी न आ सकें। क्या ढलवां लोहा उस कच्ची धातु से ज़रा भी मिलता है, जिससे वह गलाया जाता है? क्या हम चीनी मिट्टी के पतले, पारदर्शक प्याले को देखकर इसकी कल्पना कर सकते हैं कि वह कैसी भद्दी मिट्टी से बना है?

और कंक्रीट, सेलोफ़ेन, प्लास्टिक, नकली रेशम और नक़ली रबड़ जैसी चीजें? क्या पहाड़ों में तुम्हें कभी कंक्रीट की चट्टान मिल सकती है? और ऐसा रेशम का कीड़ा कहां है, जो लकड़ी से रेशम बना दे?

पदार्थ को क़ाबू में लाकर मनुष्य प्रकृति के अधिकाधिक रहस्यों को जानता गया। उसने प्रारंभ एक पत्थर को दूसरे से तेज करने के साथ किया था। आज वह अणुओं की – इतने छोटे कणों की जिन्हें वह देख तक नहीं सकता – जोड़-तोड़ करता है।

यह प्रक्रिया बहुत पहले, पदार्थ के विज्ञान – रसायनशास्त्र – के उद्‌भव के भी बहुत पहले शुरू हो गई थी। अटकल से, इस बात को मुश्किल से ही समझते हुए कि वह क्या कर रहा है, मनुष्य ने पदार्थ को बदलना सीखा।

जब पहले कुम्हारों ने अपने मिट्टी के बर्तनों को पकाया, तब वे अनजाने ही पदार्थ को अपने क़ाबू में ला रहे थे। यह कोई आसान काम न था। जिस तरह पत्थर को तुम अपने हाथों से दूसरा रूप दे सकते हो, उस तरह पदार्थ के छोटे-से-छोटे कण को भी तुम बदल नहीं सकते या नया रूप नहीं दे सकते। यहां हाथों की शक्ति के अलावा किसी अन्य बल की आवश्यकता थी, कोई ऐसा बल जो पदार्थ को बदल सके।

और मनुष्य ने जब आग को अपनी सहायिका के रूप में लिया, तो उसने इस बल को पा लिया। आग मिट्टी को पकाती थी और आटे को रोटी में बदल देती थी। आग ही तांबे को भी पिघला देती थी।

हमें तांबे के पहले औज़ार भीलों के पेंदों पर चकमक के औज़ारों के साथ मिलते हैं।



आदमी ने, जो लाखों वर्षों से पत्थर के औज़ार बनाता आ रहा था, अचानक उन्हें धातु से बनाना कैसे सीखा? और उसे अपनी जरूरत की धातु कहां मिली?

हम जब खेतों और जंगलों में सैर करते हैं, तो हमें शुद्ध तांबे का ढेला कभी नहीं मिल जाता। प्रकृत तांबा अब एक दुर्लभ चीज है। पर हमेशा ऐसा नहीं था। कई हज़ार साल पहले पृथ्वी पर आज की अपेक्षा कहीं ज़्यादा तांबा था। यह तो दरअसल, पैरों के नीचे ही पड़ा हुआ था, पर लोग इसकी तरफ़ कोई ध्यान न देते थे, क्योंकि उनके पास अपने औज़ार बनाने के लिए चकमक था।

उन्होंने इस तांबे की तरफ़ तब तक ध्यान नहीं दिया जब तक कि वे चकमक की कमी का अनुभव नहीं करने लगे। लोग स्वयं इस कमी के उत्तरदायी थे, क्योंकि उन्होंने कभी चकमक का किफ़ायत के साथ इस्तेमाल नहीं किया था। जब वे कोई

नया औज़ार बनाते, तो वे एक बड़े ढेले से शुरू करते और तब तक धीरे-धीरे उसके टुकड़े उतारते जाते जब तक कि एक छोटे से औज़ार के अलावा और कुछ न बाक़ी रहता। उनके आवासों के आसपास चकमक की छिपटियों के ढेर-के-ढेर लगे रहते, जो औज़ार बनाने के लिए बेकार थीं। आज भी तुम हर कहीं पड़ी छीलन को देखकर बढ़ई की दूकान को पहचान सकते हो।

लाखों वर्षों के दौरान चकमक के प्रभूत भंडार क्षीण हो गये। अगर आज हम चकमक का औज़ार बनाने की सोचें, तो हमें बहुत कम चकमक मिल पायेगा, क्योंकि हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए चकमक नहीं छोड़ा है।

संसार में चकमक का अकाल पड़ गया। यह एक भयानक विपत्ति थी। ज़रा कल्पना करो कि अगर काफ़ी लोहा न रहे, तो हमारे कल-कारखानों का क्या होगा। कच्ची धातु की खोज में खनिकों को धरती के अधिकाधिक भीतर खुदाई करनी होगी, क्योंकि सतह के पासवाले भंडार इस्तेमाल में आ चुके होंगे।

प्रागैतिहासिक लोगों को भी बिलकुल यही करना पड़ा। उन्होंने खदानें खोदना शुरू कीं – संसार की पहली खदानें।

हमें कभी-कभी खड़िया मिट्टी (चॉक) के निक्षेपों में ऐसी प्राचीन दस-ग्यारह मीटर लंबी खदानें मिल जाया करती हैं, क्योंकि चकमक और खड़िया अकसर साथ-साथ मिलते हैं।

उन दिनों सतह के नीचे काम करना बड़ा भयावह था। लोग खदान में रस्सी या दांतेदार बल्ली के सहारे उतरते थे। नीचे अंधेरा और धुआं भरा होता था। लोग लकड़ी की जलती चिपटी या तेल के नन्हे से दीये की रोशनी में काम करते। आजकल खदानों और खाइयों में अपनाये जानेवाले सुरक्षा के उपायों में भारी काठ-बंदी शामिल होती है, पर उन दिनों ज़मीन के नीचे की सुरंगों की दीवारों और छत को सुदृढ़ करने के बारे में कोई कुछ न जानता था। अकसर ढीली हुई चट्टान का ढेर अपने नीचे के खनिकों को जान से मार देता था। चकमक की प्राचीन खदानों में कुचले हुए खनिकों की ठठरियां खड़िया के बड़े-बड़े खंडों के नीचे दबी हुई मिली हैं। ठठरियों के बराबर उनके औज़ार थे – सींगों की बनी कुदालें।

ऐसी दो ठठरियां एक ही सुरंग में मिली थीं – एक वयस्क आदमी की थी और दूसरी बच्चे की। कोई पिता संभवतः अपने पुत्र को अपने साथ ले गया होगा, मगर वे कभी घर लौटकर न गये।

हर सदी के बीतने के साथ-साथ चकमक लगातार कम बचता जा रहा था और उसका खनन कठिन होता जा रहा था। लेकिन प्रागैतिहासिक मानव को चकमक की आवश्यकता थी। वह उससे अपने कुल्हाड़े, चाकू और कुदालें बनाता था।

उसे चकमक का काम देनेवाली किसी चीज़ की सख़्त ज़रूरत थी।

और तब प्रकृत तांबा आड़े वक़्त काम आया। लोग इसकी तरफ़ ज़्यादा ग़ौर से देखने लगे – यह हरा पत्थर क्या है? क्या इसका कोई इस्तेमाल हो सकता है?

जब वे शुद्ध तांबे का कोई टुकड़ा उठा लाते, तो वे उसे पीटना शुरू करते, क्योंकि उनका ख़याल था कि तांबा पत्थर ही है और इसलिए वे उसे चकमक की ही तरह गढ़ने की कोशिश करते थे। चकमक के हथौड़े की चोटें तांबे को और कड़ा

कर देती थीं और उसकी आकृति को बदल देती थीं। लेकिन उसे पीटने का एक ख़ास तरीक़ा था। अगर चोटें ज़्यादा सख़्त होतीं, तो तांबा भुरभुरा हो जाता था और टुकड़े-टुकड़े हो जाता था।

इस तरह मनुष्य ने पहले-पहल धातु को गढ़ना शुरू किया। ठीक है कि अभी तक यह ठंडी गढ़ाई ही थी, लेकिन ठंडी गढ़ाई से उष्ण गढ़ाई अधिक दूर नहीं थी।

कभी-कभी ऐसा होता कि शुद्ध तांबे या खनिज तांबे का टुकड़ा आग में गिर जाता। या शायद आदमी ही उसे पकाने की कोशिश करता, जैसे वह अपने मिट्टी के बर्तनों को पकाया करता था। जब आग बुझती, तो राख और चूल्हे में लगे पत्थरों में पिघले तांबे का एक गोला होता।

लोग अपने किये हुए इस "चमत्कार" की तरफ़ अचरज के साथ देखते। लेकिन उनको विश्वास था कि इस हरापन लिये स्याह पत्थर को जिस चीज़ ने चमकदार लाल तांबे में बदला है, वह "अग्नि की आत्मा" है, उनका इसमें कुछ भी नहीं है।

तांबे के गोले को टुकड़ों में तोड़ लिया जाता और फिर प्रत्येक टुकड़े को चकमक के हथौड़े से पीटे-पीटकर कुल्हाड़ी के फलों, कुदालों और कटारों में बदला जाता।

इस तरह मनुष्य को अद्‌भुत भंडारघर में एक कड़ी, चमकदार धातु मिल गई। उसने आग में खनिज धातु का एक टुकड़ा फेंका था और उसने उसे तांबे के रूप में लौटा दिया था।

यह चमत्कार मानव-श्रम द्वारा किया गया था।

रूस के पहले कृषक

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में व० ख़्वोइको नामक रूसी पुरातत्त्वविद ने कीएव प्रदेश में त्रिपोल्ये नाम के गांव के पास एक प्रागैतिहासिक कृषक बस्ती के अवशेष खोजे।

बाद में ऐसे कई अन्य गांवों के अवशेष रूस के दक्षिण में मिले।

सोवियत काल में त० पास्सेक तथा ब० बोगायेव्स्की ने इस अध्ययन को जारी रखा। उनके कार्यों ने हमारे लिए इस बात की कल्पना करना संभव बना दिया है कि पांच हज़ार साल पहले किसान किस तरह रहते थे।

प्रागैतिहासिक ग्राम एक ऊंचे कठघरे से घिरा हुआ था। उसके बीच में एक बड़ा चौक था। चौक के चारों तरफ़ ढलुआं छतोंवाले पुताई किये हुए लकड़ी के मकान थे।

हज़ारों साल पहले का बना एक मकान का छोटा-सा मिट्टी का नमूना मिला है। खिलौना तो यह शायद ही होगा, बहुत संभव है कि यह जादू-टोने के किसी संस्कार में काम आनेवाली चीज़ रहा हो।

शायद लोगों का ख़याल था कि भीतर औरतों की नन्ही-नन्ही मूर्तियोंवाला यह छोटा-सा घर सचमुच के बड़े घर को भूत-प्रेतों और दुर्भाग्य से बचायेगा।

नमूने में प्रवेशद्वार के दाईं ओर एक भट्ठी है और बाईं तरफ़ एक ऊंचा मंच है, जिस पर खाने की विभिन्न चीज़ें रखने के लिए बड़े-बड़े बर्तन हैं। मंच के पास

चक्की पर झुकी एक औरत की मूर्ति है। प्रवेशद्वार के सामने एक खिड़की के पास एक वेदी है। दूसरी स्त्री – चूल्हे की रखवालिन – की मूर्त्ति भट्ठी के पास है।

यह घर हर तरह से घर कहला सकता था। छत कड़ियों पर टिकी हुई थी। सोने के चबूतरेवाली भट्ठी आज भी हमारे देश के गांवों में पाई जानेवाली भट्ठियों की तरह थी। फ़र्श मकान के बनाये जाते समय फ़र्श पर जलाई गई आग से पकी मिट्टी का बना था। मिट्टी से पुती दीवारों पर डिज़ाइन बने हुए थे।

हर घर में विभाजक दीवारों से अलगाये हुए कई-कई कमरे थे।

लेकिन गांवों में बड़े-बड़े खाईनुमा घर भी थे।

अब गांवों के निवासियों के बीच कुशल कुम्हार, लोहार और कसेरे मौजूद थे। कुम्हारों ने एक-एक मीटर ऊंचे बर्तन बनाना और उनको रंग-बिरंगे बेलबूटों से अलंकृत करना सीख लिया था। पुरातात्त्विक खोजों में गुलाबी मिट्टी के बने बर्तन भी हैं, जिन पर फ़ीतों, कुंडलों और लहरों के कलापूर्ण डिज़ाइन हैं, जो कहीं-कहीं बड़ी-बड़ी आंखोंवाले किसी आदमी के चेहरे, किसी पशु या सूर्य से मिलते हैं।

अगर हम धरती में परिरक्षित औज़ारों की परीक्षा करें, तो हम चकमक के औज़ारों से तांबे के औज़ारों तक के परिवर्तन-क्रम को स्पष्ट देख सकते हैं।

सबसे पुराने औज़ार – चाकू, खुरचनियां, भालों तथा तीरों के फल – ये सब चकमक या हड्डी के बने हुए थे।

कुदालें चकमक की या बारहसिंघे के सींग की बनी हुई थीं। कुदाल को लकड़ी के हत्थे से लगाने के लिए उसमें छेद कर दिया जाता था।



अनाज गाय की स्कंधास्थि या लकड़ी की बनी दरांतियों से काटा जाता था। लकड़ी की दरांती चूंकि मोटे तनों को नहीं काट सकती थी, इसलिए उसमें चकमक के दांते लगा दिये जाते थे।

इन्हीं गांवों में हम तांबे के सबसे पहले औज़ारों – चौड़े फलवाले कुल्हाड़ों – को ढालने के लिए काम में लाये जानेवाले सांचे भी पाते हैं।

हम यह तक जानते हैं कि कौनसी धान्य घासें बोई जाती थीं। पुरातत्त्वविदों ने कोलोमियश्चिनो गांव के मकानों की दीवारों पर पुताई करने में प्रयुक्त मिट्टी में गेहूं, जौ, रई और बाजरे के दाने पाये।

हमारे कृषक आखिर कृषि विज्ञान में पारंगत हो रहे थे। उनके पीछे थोड़ा-बहुत अनुभव भी था ही – ठीक कहें, तो यही पांच हज़ार साल का।

मानव-उद्योग का पंचांग

हम वर्षों, शताब्दियों और सहस्राब्दियों में समय की गणना करने के आदी हैं। लेकिन जो लोग प्रागैतिहासिक मानव के जीवन का अध्ययन करते हैं, उन्हें एक दूसरे ही प्रकार के पंचांग, समय की एक दूसरी ही माप का उपयोग करना पड़ता है। यह कहने के बजाय कि "इतने हज़ार साल हुए", हम कहते हैं कि "प्राचीन पाषाण युग में", "नव पाषाण युग में", "ताम्र युग में", "कांस्य युग में"। यह वार्षिक पंचांग नहीं है, बल्कि मानव-उद्योग का पंचांग है। यह हमें सही-सही बता देता है कि मानव-जाति विकास की किस मंज़िल पर पहुंच गई थी।

पंचांग में समय की छोटी या बड़ी मापें होती हैं – सदी, साल, महीना, दिन, घंटा।

मानव-उद्योग के पंचांग की भी अपनी बड़ी-छोटी मापें हैं। उदाहरण के लिए, हम कह सकते हैं: "पाषाण युग, काटने और तोड़नेवाले औज़ारों का समय", या "पाषाण युग, पॉलिशदार औज़ारों का समय।"

हमारी कहानी हमें अब मानवजाति के इतिहास में उस काल तक ले आई है, जब चकमक के औजारों की जगह धातु के औजार आ गये थे, जब कृषि और पशुपालन का पहले-पहल उदय हुआ था। श्रम के इस विभाजन ने वस्तुओं के विनिमय को जन्म दिया। अगर तांबे के कुल्हाड़े एक जगह बनते थे, तो वे धीरे-धीरे अन्य क़बीलों को भी पहुंचने लगे।

लोग अपनी डोंगियों में बैठकर नदियों को पार करके अनाज के बदले चमड़े या कपड़े के बदले मिट्टी के बर्तनों की अदला-बदली करते गांव-गांव जाया करते थे। एक क़बीले के पास तांबे की बहुतायत हो सकती थी, जबकि दूसरे का नाम अपने हुनरमंद कुम्हारों के लिए मशहूर था। कहीं किसी झील पर लकड़ी की बल्लियों पर बने किसी गांव के निवासी अपने पड़ोसियों से मिलते, जो अदला-बदली के लिए सामान लेकर आये थे। वस्तुओं के विनिमय ने अनुभव का, काम के नये तरीक़ों का भी विनिमय करवाया।



लोगों को इसमें इशारों की बोली का इस्तेमाल करना पड़ता था, क्योंकि हर क़बीले की अपनी अलग भाषा थी। फिर भी आगंतुक जब वापस जाते, तो वे अपने साथ केवल दूसरों द्वारा तैयार किया गया सामान ही नहीं, बल्कि उन अपरिचित नये शब्दों को भी ले जाते थे, जो उन्होंने यहां सीखे थे। इस प्रकार क़बीलों की बोलियां आपस में घुली-मिलीं। साथ ही हर शब्द के निहित अर्थ को नये शब्द के साथ-साथ ग्रहण कर लिया गया। किसी पड़ोसी क़बीले के देवी-देवताओं ने अपने देवी-देवताओं के साथ जगह ले ली। अनेकों विश्वासों में से कुछ ऐसे विश्वास पैदा हो रहे थे, जो भविष्य में पूरे-के-पूरे राष्ट्रों के लिए सामान्य हो जानेवाले थे।

देवी-देवता यात्रा कर रहे थे। नई जगहों पर उन्हें नये नाम दे दिये जाते थे, लेकिन उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है।

जब हम प्राचीन जातियों के धर्मों का अध्ययन करते हैं, तो बाबिल के ताम्मुज, मिस्र के ओसीरीस और यूनान के अदोनीस में हम एक ही देवता को पाते हैं। यह कृषि का वही प्राचीन देवता है, जो शरद में मर जाया करता था और जो हर वसंत में मृतक विश्व से वापस आ जाता था।

कभी-कभी तो हम किसी देवता विशेष की यात्राओं को नक़शे तक पर दिखा सकते हैं।

मिसाल के तौर पर, अदोनीस यूनान में शान से उन देशों से आया, जहां शामी नस्ल के लोग रहते थे। उसका नाम इस बात का प्रमाण है, क्योंकि शामियों की भाषा में "अदोनीस" का मतलब "साहब" है। यूनानियों को यह शब्द मालूम नहीं था और उन्होंने इसे नाम के रूप में स्वीकार कर लिया।

इस तरीक़े से वस्तुओं, शब्दों और धर्मों का विनिमय हो रहा था।

यह कहना गलत होगा कि यह विनिमय सदा ही शांतिमय होता था। अगर "आगंतुक" औरों के तैयार हुए तांबे, कपड़े और अनाज को बलपूर्वक पा सकते थे, तो वे ऐसा करने में झिझकते नहीं थे। इस प्रकार विनिमय, जो अकसर बेईमानी भरा होता था, खुली डकैती में बदल जाता था। आगंतुक और मेज़बान एक-दूसरे पर हमला करते थे, और फिर, जिसकी लाठी, उसकी भैंस। अजनबी को लूट लेने या मार डालने में कुछ भी अनुचित न था।

इसलिए अचरज की क्या बात है कि शीघ्र ही हर गांव एक क़िले जैसा दीखने लगा। अनचाहे आगंतुकों का अप्रत्याशित आगमन रोकने के लिए वह मिट्टी के परकोटे और कठघरे से घेर दिया जाता था।

अन्य क़बीलों के सदस्यों पर लोगों को बहुत कम भरोसा था। हर क़बीला अपने को "आदमी" कहता था, मगर दूसरे क़बीलों के सदस्यों को आदमी नहीं मानता था। जबकि अपने को वे "सूर्य की संतान" या "गगन-निवासी" कहते थे, दूसरे क़बीलों को वे अपमानजनक विद्रूप-नाम दिया करते थे, जो कभी-कभी उनके साथ चिपके ही रहते थे और उनके नाम ही बन जाते थे।

जब हम दूसरे क़बीलों के प्रति घृणा के बारे में इतिहासकारों और यात्रा करने-वालों की पुस्तकें पढ़ते हैं, तो हमें दूसरी जातियों के प्रति उस घृणा का खयाल आ जाता है, जिसे हमारे ज़माने में जातिवादी जानबूझकर फैला रहे हैं। वे केवल अपने को ही "आदमी" समझते हैं, जबकि उनकी राय में, अन्य लोग आदमी नहीं हैं, वरन किसी निम्न वर्ग के प्राणी हैं।

इतिहास ने हमें सिखाया है कि संसार में श्रेष्ठ जाति जैसी कोई चीज़ नहीं है। कुछ जातियां ऐसी हैं, जो अधिक उन्नत हैं और कुछ जातियां ऐसी हैं, जो सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं। मानव-उद्योग के पंचांग के अनुसार सभी समकालिक जातियों की ऐतिहासिक आयु समान नहीं है। महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के पहले रूस की सभी जातियां विकास की एक ही मंज़िल पर नहीं पहुंच गई थीं। कुछ जातियां यंत्र युग में रह रही थीं, जबकि अन्य जातियां अभी तक लकड़ी के हलों से ही खेतों की जुताई करती थीं और करघों पर कपड़ा बुनती थीं। ऐसी जातियां तक थीं, जो अपने औज़ार हड्डी से बनाती थीं और यह भी नहीं जानती थीं कि लोहा भी कुछ होता है।

अब सोवियत संघ की उन्नत जातियां उन लोगों की सहायता करती हैं, जो अतीत में पिछड़ गई थीं। तीन दशकों के भीतर मध्य एशिया, साइबेरिया और सुदूर उत्तर की जातियां सदियों आगे आ गई हैं।

मानव-उद्योग के पंचांग के अनुसार हमारे देश के सभी लोग समाजवादी युग के लोग हैं और हमारे देश के सभी लोग समान हैं।



दो क़ानून

ऐसा अकसर हुआ है कि समुद्रों को पार करनेवाले अन्वेषकों ने नये देशों की ही नहीं, बल्कि इतिहास में ऐसे युगों की भी खोज की है, जिन्हें कभी का भुलाया जा चुका था।

जब यूरोपवासियों ने आस्ट्रेलिया की खोज की, तो यह एक महान विजय थी, क्योंकि उन्होंने एक पूरे-के-पूरे महाद्वीप को खोज और जीत लिया था।

लेकिन उनकी खोज आस्ट्रेलियाइयों के लिए एक बड़ा दुर्भाग्य था। मानव-इतिहास के पंचांग के अनुसार वे अभी तक एक और ही युग में रह रहे थे। वे यूरोपीय परंपराओं को नहीं समझते थे और यूरोपीय तौर-तरीक़ों के आगे झुकना नहीं चाहते थे। उनको उनके इस "अपराध" के लिए क्षमा नहीं किया गया और जंगली जानवरों की तरह उन्हें खदेड़ा और उत्पीड़ित किया गया। आस्ट्रेलियाई जबकि तंबुओं में ही रह रहे थे, यूरोप के नगरों में बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी हो रही थीं। आस्ट्रेलियाई निजी संपत्ति का मतलब भी नहीं जानते थे, जबकि यूरोप में अगर कोई आदमी किसी धनी ज़मींदार के जंगल में एक हिरन को भी मार देता, तो उसे जेल में ठूंस दिया जाता था।

आस्ट्रेलियाइयों के लिए जो क़ानून था, वह यूरोपीयों के लिए एक अपराध था।

आस्ट्रेलियाई शिकारियों को जब भेड़ों का रेवड़ मिल जाता, तो वे ख़ुशी से किलकारियां मारते हुए उसे घेर लेते। वे रेवड़ पर अपने भाले और बूमरैंग फेंकते। लेकिन आम तौर पर यह मौक़ा आने के साथ ही यूरोपीय फ़ार्मस्वामियों की बंदूक़ें दख़ल दे देती थीं।

यूरोपीय फ़ार्मस्वामी भेड़ों को अपनी निजी संपत्ति समझता था, जबकि आदिम आस्ट्रेलियाई शिकारी के लिए यह सौभाग्य से मिला शिकार होता था। "भेड़ उस फ़ार्मस्वामी की है, जिसने उसे ख़रीदा है या पाला है", यह यूरोपीयों का क़ानून था। "जानवर उस शिकारी का है, जिसने उसे पकड़ा", आस्ट्रेलियाइयों का क़ानून था।

और क्योंकि आस्ट्रेलियाई अपने ज़माने के क़ानून का पालन करते थे, इसलिए यूरोपीय उन्हें इस तरह गोली से उड़ा दिया करते थे, मानो वे मनुष्य नहीं, भेड़ों के बाड़े में घुस आनेवाले भेड़िये हैं।

इन दोनों क़ानूनों की तब फिर टक्कर होती, जब आस्ट्रेलियाई औरतें आलू के किसी खेत पर पहुंच जातीं। क्षण भर की भी झिझक के बिना वे इन सुस्वादु कंदों को खोदने लग जातीं। और इसमें आश्चर्य की क्या बात थी – यहां इतने सारे खाने योग्य कंद थे, और सो भी एक ही जगह! जितने कंद यहां वे एक घंटे के भीतर चुन सकती थीं, उतने वे महीने भर में भी नहीं चुन सकती थीं।

लेकिन उनका आकस्मिक सौभाग्य ही उनका दुर्भाग्य था। गोलियां छूटने लगतीं

और औरतें इस बात को कभी समझ पाये बिना अपने बोझों सहित ज़मीन पर गिरने लगतीं कि किसने उनकी जान ली है और किसलिए।

अमरीका की खोज के बाद भी इन दोनों दुनियाओं के बीच ठीक ऐसी ही लड़ाई हुई।

पुरानी "नई दुनिया"

अमरीका की खोज करनेवाले यूरोपीयों ने समझा कि उन्होंने एक नई दुनिया ढूंढ़ ली है।

कोलंबस को इस घटना के उपलक्ष्य में एक वंशचिह्न तक प्रदान किया गया था जिस पर लिखा गया था :

> कोलंबस ने नई दुनिया की खोज की
> कस्तीलिय और लिओन के लिए।

लेकिन यह "नई दुनिया" असल में एक पुरानी दुनिया थी। यूरोपीयों ने अमरीका में अनजाने ही ख़ुद अपने अतीत को खोज लिया था, जिसे वे कब का भूल चुके थे।

उनका ख़याल था कि अमरीकी आदिवासियों के रीति-रिवाज जंगली और अजीब हैं। आदिवासियों के घरों, पोशाकों और तौर-तरीक़ों की उनके घरों, पेशाकों और तौर-तरीक़ों से तनिक भी समानता न थी।

उत्तर के आदिवासी अपनी गदाएं और अपने बाणों के फल चकमक और हड्डी के बनाया करते थे। वे लोहे के बारे में कुछ भी न जानते थे। पर वे कृषि से परिचित थे – वे मक्का, कद्दू, सेम और तंबाकू बोते थे। उनका मुख्य उद्यम शिकार था। वे लकड़ी के घरों में रहते थे और अपने गांवों को ऊंचे-ऊंचे कटहरों से घेर लेते थे।



दक्षिण की तरफ़, मेक्सिको में, आदिवासियों के पास तांबे के औज़ार और सोने के गहने थे, उनके कच्ची ईंटों के बड़े-बड़े मकान थे।

अमरीका के प्रारंभिक उपनिवेशकों और विजेताओं ने अपनी डायरियों में इन सब बातों का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है।

लेकिन वस्तुओं का वर्णन करना जीवन की प्रणाली का वर्णन करने से आसान है।

अमरीका में जीवन की जो प्रणाली थी, वह यूरोपीयों के लिए अजीब थी, वे इसे नहीं समझ सकते थे और उन्होंने इसके जो वर्णन किये हैं, वे बड़े अस्पष्ट और भ्रांतिपूर्ण हैं।

"नई दुनिया" मुद्राहीन, व्यापारीहीन और धनी-निर्धनहीन दुनिया थी। कुछ आदिवासी क़बीले थे, जो सोने की चीज़ें बनाना जानते थे, लेकिन सोने का महत्व वे नहीं जानते थे।

कोलंबस के जहाजियों ने जिन पहले आदिवासियों को देखा, उनकी नाक में सोने की सलाइयां और गले में सोने के हार थे। लेकिन उन्होंने इन गहनों को कांच के मनकों और सस्ते सजावटी ज़ेवरों से ख़ुशी-ख़ुशी बदल लिया।

समुद्र पार से आनेवाले ये अजनबी जानते थे कि दुनिया में सभी लोग मालिकों और चाकरों, ज़मींदारों और किसानों में बंटे हुए हैं, लेकिन यहां सभी लोग बराबर थे। जब कोई क़बीला किसी दुश्मन को क़ैद कर लेता, तो वह उसे गुलाम या नौकर नहीं बनाता था। वह या तो उसे तुरंत मार देता था, या उसे गोद ले लेता था।

यहां किसी के पास कोई महल, मकान या जायदाद न थी। लोग सामूहिक आवासों में रहा करते थे, जिन्हें वे "लंबे घर" कहते थे। पूरे-के-पूरे कुल एक साथ रहते थे और इस विशाल परिवार के लिए सभी समान रूप से उत्तरदायी थे। ज़मीन किसी एक आदमी की नहीं, बल्कि पूरे क़बीले की थी। मालिक के लिए उसकी ज़मीन पर काम करनेवाले भूदास नहीं थे। यहां सभी लोग आज़ाद थे।

सामंती युग में, जिसमें भूदासत्व क़ानूनी था, रहनेवाले यूरोपीयों को चकराने के लिए यही काफ़ी था।

यूरोप में हर कोई जानता था कि अगर उसने किसी और की चीज़ को ले लिया, तो शहर कोतवाल उसका गरीबान पकड़कर उसे जेल घसीटकर ले जायेगा। यहां न कोतवाल था, न निजी संपत्ति और क़ैदखाने ही थे। इसके बावजूद यहां सभी चीज़ों में व्यवस्था थी। लोग इस व्यवस्था को क़ायम रखते थे, यद्यपि यूरोप की अपेक्षा भिन्न तरीक़े से।

यूरोप में क़ानून इस तरह से बने हुए थे कि इनसे यह सुनिश्चित होता था कि ग़रीब कभी अमीर की किसी चीज़ को न लें, कि नौकर सदा अपने मालिकों की आज्ञा मानें, कि भूदास ज़िंदगी भर अपने ज़मींदारों के लिए काम करते रहें। लेकिन यहां हर आदमी की रक्षा उसका परिवार और उसका क़बीला करता था। अगर कोई आदमी मारा जाता, तो पूरा कुल उसका बदला लेता। अगर हत्यारे के संबंधी मरे हुए आदमी के संबंधियों से क्षमा याचना कर लेते और उनके पास सुलह की सौग़ातें लेकर आते, तो हत्या का अंत शांतिमय हो सकता था।



यूरोप में राजा, महाराजा और राजकुमार थे। मगर यहां न राजा थे, न राज-सिंहासन। सरदारों की परिषद सारे क़बीले की मौजूदगी में क़बीले के सभी मामले तय करती थी। सरदारों को उनकी योग्यताओं के कारण चुना जाता था और अगर वे काम चलाने के योग्य सिद्ध न होते, तो उन्हें पदच्युत कर दिया जाता था। सरदार क़बीले का स्वामी नहीं होता था। कुछ आदिवासी भाषाओं में "सरदार" शब्द का अर्थ मात्र "वक्ता" था।

पुरानी दुनिया में राष्ट्र का प्रमुख राजा और परिवार का प्रमुख पिता होता था। राज्य मनुष्य का सबसे बड़ा और परिवार सबसे छोटा समुदाय था। राजा अपनी प्रजा का न्याय करता और उसे दंड देता था। पिता अपने बच्चों का न्याय करता और उन्हें दंड देता था। राजा अपने बाद देश अपने बेटे को देता था, पिता अपने बाद अपनी जायदाद अपने पुत्र को दे जाता था।

लेकिन यहां, "नई" दुनिया में, बाप की अपने बच्चों पर कोई सत्ता न थी।



बच्चे मां के होते थे और उसी के पास रहते थे। "लंबे घर" में सारी व्यवस्था स्त्रियों के ही हाथ में होती थी। यूरोपीय परिवारों में बेटे घर पर रहते थे, जबकि बेटियां अपने पतियों के परिवारों के साथ जाकर रहती थीं। यहां इसका उलटा होता था – पत्नी अपने पति को अपनी मां के घर लेकर आती थी। और पत्नी ही परिवार की प्रमुख होती थी।

एक अन्वेषक ने लिखा था :

"औरतें ही आम तौर पर घर की व्यवस्था करती थीं और वे सदा एक-दूसरे का साथ देती थीं। वे अपने सामान को साझे में रखती थीं। मगर उस अभागे पति की शामत थी कि जो ज़्यादा नहीं जुटा पाता था। घर में उसकी चाहे कितनी ही चीज़ें और बच्चे क्यों न हों, उसे मिनट भर में अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर निकल जाने को कहा जा सकता था। और अगर कहीं वह इसका विरोध करने की कोशिश करता, तब तो उसकी ख़ैर नहीं थी। उसका जीना जंजाल हो जाता था। अगर कोई मौसी या नानी उसकी हिमायत न करती, तो उसे या तो अपने कुल लौटकर जाना पड़ता था, या किसी और कुल की औरत से शादी करनी पड़ती थी। औरतों को तब बड़ी सत्ता प्राप्त थी। जब वे ज़रूरी समझतीं थीं, तो (जैसा कि वे ख़ुद कहती थीं) किसी सरदार को 'सींग मारकर गिरा देने' में वे कोई आगा-पीछा न करती थीं, और इसका मतलब होता था कि वह अब सरदार नहीं रहेगा, बल्कि क़बीले के हर दूसरे आदमी की तरह एक सामान्य योद्धा बन जायेगा। इसी तरह से, नये सरदार का चुनाव सदा औरतों पर ही निर्भर करता था।"

पुरानी दुनिया में औरत अपने पति की सेविका होती थी। लेकिन आदिवासी क़बीलों में औरत परिवार की प्रमुख होती थी। कभी-कभी तो वह क़बीले तक की प्रमुख होती थी। जॉन टैनर नामक अमरीकी के बारे में कवि पुश्किन का एक लेख है, जिसे आदिवासियों ने पकड़ लिया था और नेट-नौ-क्वा नामक आदिवासी स्क्वा (पत्नी) ने जिसे गोद ले लिया था। यह एक सच्ची कहानी है। नेट-नौ-क्वा ओटा-वुअव क़बीले की सरदार थी, और उसकी जंगी डोंगी पर सदा एक पताका लहराती रहती थी। जब वह अंग्रेज़ों के क़िले पर पहुंचती थीं, तो उसे हमेशा तोपों की सलामी दी जाती थी। केवल आदिवासी ही नहीं, बल्कि गोरे लोग भी इस स्त्री का सम्मान करते थे।

अचरज की बात नहीं कि इन परिवारों में जनकता पिता से नहीं, माता से निर्धारित की जाती थी। यूरोप में बच्चों के नाम में उनके पिता का अंतिम नाम जुड़ा होता था, लेकिन यहां वे अपनी मां का नाम लेते थे। अगर पिता 'हिरन' क़बीले का होता और मां 'रीछ' क़बीले की, तो बच्चे 'रीछ' क़बीले के ही होते थे। हर कुल में औरतें और उनके बच्चे, उनकी बेटियों के बच्चे और उनकी पोतियों और नातिनों के बच्चे होते थे।

यूरोपीयों के लिए यह सब बड़ा चकरानेवाला था। वे कहते थे कि आदिवासियों के तौर-तरीक़े जंगली हैं और वे ख़ुद असभ्य हैं।

तब तक वे इस बात को पूरी तरह भूल चुके थे कि धनुषों और बाणों के ज़माने

में, पहली डोंगियों और कुदालों के जमाने में उनके अपने पूर्वजों के भी यही रिवाज थे।

अमरीका के बारे में अपने लेखों में पहले उपनिवेशकों और विजेताओं ने आदिवासी क़बीलों के सरदारों को कुलीन लोग यानी ज़मींदार बताया है। उनका ख़याल था कि "सरदार" की उपाधि ख़िताब है और टॉटेम (गणचिह्न) कोई राज्यचिह्न है। उनके कथनानुसार सरदारों की परिषद विधानमंडल है और मुख्य सरदार राजा है। यह बात इतनी ही ग़लत है, जैसे कि आज फ़ौज के सेनापति को राजा कहना।

सदियां बीत गईं, मगर अमरीका के गोरे अधिवासी देशी आबादी के रीति-रिवाजों को अब भी नहीं समझे।

यह ग़लतफ़हमी तब तक चली जब तक लेविन एच० मोर्गन नामक एक अमरीकी ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन समाज' में अमरीका की एक बार फिर खोज नहीं की। इसमें उन्होंने सिद्ध किया कि इरोक़ुओ तथा अज़्टेक आदिवासियों की जीवन-प्रणाली विकास की वह मंज़िल है, जिसे यूरोपीय कभी का भूल चुके हैं।

लेकिन मोर्गन की किताब १८७७ में आई, जबकि हम अमरीका के पहले विजेताओं की बात कर रहे हैं।

गोरे आदमी आदिवासियों को नहीं समझते थे। और, इसी तरह, आदिवासी गोरों को नहीं समझते थे। वे इस बात को नहीं समझ सकते थे कि मुट्ठी भर सोने के पीछे एक गोरा दूसरे का गला घोंटने को क्यों तैयार रहता है। वे इस बात को नहीं समझ सकते थे कि गोरे लोग अमरीका क्यों आये हैं और "किसी और के प्रदेश को जीतना" क्या मतलब रखता है।

प्रागैतिहासिक लोगों का विश्वास था कि ज़मीन सारे क़बीले की होती है और रक्षक आत्माएं उसकी रक्षा करती हैं। किसी और की ज़मीन को लेने का मतलब दूसरे क़बीले के देवताओं के कोप को जगाना था।

आदिवासी एक-दूसरे से युद्ध भी करते थे। लेकिन जब एक क़बीला दूसरे को हरा देता था, तो वह हारे हुए क़बीले के लोगों को ग़ुलाम नहीं बना लेता था, वह उन्हें अपने तरीक़ों और रीति-रिवाजों पर चलने के लिए मजबूर नहीं करता था या उनके सरदारों को पदच्युत नहीं कर देता था। वह उससे सिर्फ़ ख़िराज वसूल करने लगता था। सरदार को उसका अपना कुल या क़बीला ही पदच्युत कर सकता था।

दो दुनियाएं, दो सामाजिक व्यवस्थाएं टकराईं। अमरीका की विजय का इतिहास दो दुनियाओं के संघर्ष का इतिहास है।

स्पेनियों का मेक्सिको पर क़ब्ज़ा करना एक अच्छे उदाहरण का काम दे सकता

है।

ग़लतियों की श्रृंखला

१५१६ में तीन मस्तूलवाले ग्यारह जहाज़ों का एक बेड़ा मेक्सिको के तट पर पहुंचा।



जहाज़ों के बाज़ू गोलाकार थे, उनके अगले-पिछले सिरे पानी से ख़ूब ऊपर उठे हुए थे और तोपों की नालें चौकोर झरोखों से निकल रही थीं, जबकि सिपाहियों की बंदूक़ें और भाले बाज़ुओं के ऊपर चमचमा रहे थे। अपनी आंखों तक खिंची हुई बेरेट टोपी पहने एक चौड़े कंधोंवाला दढ़ियल आदमी ध्वज-पोत के पूर्वभाग पर खड़ा था। उसकी पैनी आंखें सपाट तट और किनारे पर एकत्र हुए अधनंगे आदिवासियों की भीड़ को देख रही थीं।

इस आदमी का नाम कोर्तेज़ था। वह स्पेन से मेक्सिको को जीतने के लिए भेजे गये एक अभियान का प्रमुख था। ठीक है, उसके पास एक पत्र भी था, जिसमें स्पेनी गवर्नर ने उसकी नियुक्ति को रद्द कर दिया था। लेकिन कोर्तेज़ जैसे दुस्साहसी आदमी को बर्ख़ास्तगी के हुक्मनामे की क्या परवाह थी! उसके और स्पेन के बीच एक महासागर था। यहां, अपने जहाज़ों पर वही शहंशाह था।

जहाज़ों ने लंगर डाले। रास्ते में पड़नेवाले टापुओं पर कोर्तेज़ के पकड़े हुए आदिवासी ग़ुलामों ने तोपों की नलियों, तोपगाड़ियों, सामान के बक्सों और बंदूक़ों को नावों में उतारना शुरू किया। डरे हुए और पिछली टांगों पर खड़े होते घोड़ों को मालख़ानों से निकालकर डेकों पर लाया गया। सबसे मुश्किल काम था उन्हें नावों में लाना और तट पर पहुंचाना।

आदिवासी इन तैरते घरों और पीले चेहरेवाले इन आदमियों को, जो अपने बदन को कपड़े के नीचे छिपाये हुए थे, और उनके विचित्र हथियारों को चकित होकर देखने लगे। लेकिन झबरे अयालों और दुमोंवाले इन फुफकारते जानवरों को देखकर वे सबसे ज़्यादा चकित हुए। उन्होंने ऐसे जीव पहले कभी नहीं देखे थे।

गोरे आदमियों के आगमन के बारे में जल्दी ही तटवर्ती प्रदेशों और भीतरी प्रदेश में होते हुए पहाड़ी इलाक़ों तक अफ़वाहें फैल गईं। वहां, ऊंचे पहाड़ों की दीवार के पीछे, एक घाटी में पुएब्लो – अज़्टेकों के गांव – थे। टेनोहटिटलान सबसे बड़ा पुएब्लो था। यह एक झील के बीच में स्थित था और पुलों द्वारा तटों से जुड़ा हुआ था। इसके चमकते, प्लास्टर की पुताई किये हुए ईंटों के बने मकान और सोना मढ़ी छतोंवाले मंदिर दूर से देखे जा सकते थे। अज़्टेकों का शूर सरदार मोंटेज़ूमा अपने योद्धाओं के साथ सबसे बड़े मकान में रहता था।

जब गोरों के आने की ख़बर मोंटेज़ूमा के पास पहुंची, तो उसने सरदारों की परिषद की बैठक बुलाई। क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करने की कोशिश में सरदारों ने लंबा और गहरा विचार किया। मुख्य समस्या यह समझना था कि ये गोरे लोग उनके देश में क्यों आये हैं और चाहते क्या हैं।

सरदारों को अफ़वाहों से मालूम था कि गोरे लोगों को सोना पसंद है। और इसलिए परिषद ने गोरों के पास सोने की भेंटें भेजने और उनसे अपने देश लौट जाने के लिए कहने का निश्चय किया।

यह एक भयानक ग़लती थी। सोना गोरों को लालच के मारे पागल ही बना सकता था। मगर अज़्टेक यह नहीं जानते थे, क्योंकि आदिवासी और गोरे अलग-अलग युगों के लोग थे।

मोंटेज़ूमा ने गाड़ियों के पहियों के बराबर सोने की तश्तरियों, सोने के ज़ेवरों और मनुष्यों और जानवरों की सोने की मूर्त्तियों के साथ अपने दूत रवाना किये।

इन मूल्यवान चीज़ों को अगर वे ज़मीन में गाड़ देते, तो यह ज़्यादा होशियारी की बात होती!

जब कोर्तेज़ और उसके आदमियों ने इस सोने को देखा, तो अज़्टेकों की क़िस्मत का फ़ैसला हो गया।

दूतों ने व्यर्थ ही कोर्तेज़ से समुद्र के पार लौट जाने की खुशामद की, व्यर्थ ही उन्होंने अनचाहे आगंतुकों को उन मुश्किलों और ख़तरों का डर दिखाया, जो देश के भीतर जाने पर उनके सामने आते।

पहले स्पेनियों ने मेक्सिको के सोने के बस क़िस्से ही सुने थे, मगर अब वे उसे अपनी आंखों से देख रहे थे। और उनकी आंखें लालच से जलने लगीं, क्योंकि क़िस्से सच्चे थे।

दूतों की बातें उन्हें पागलपन भरी लगीं। उनका लक्ष्य जब इतने पास है, तो वे समुद्र पार क्यों लौटें!

वे इसे पागलपन ही समझते, क्योंकि उन्होंने लंबी समुद्र यात्रा में कितनी-कितनी तकलीफ़ें झेली थीं! पत्थर जैसे कड़े बिस्कुट खाना, भीड़ भरे केबिनों में लकड़ी के सख़्त तख़्तों पर सोना, तारकोल-पुते जहाज़ के वस्त्र पहनकर कमरतोड़ काम करना, तूफ़ानों और पानी के नीचे डूबी चट्टानों से टक्कर लेना, आदि-आदि – यह सब उन्होंने भविष्य में मिलनेवाली दौलत के लिए ही सहा था।

कोर्तेज़ ने अपने आदमियों को डेरा उखाड़ने और कूच करने का आदेश दिया। उन्होंने अपने हथियारों और सामान को अपने ग़ुलामों की पीठों पर लादा। लदू जानवरों में परिणत ये आदमी दम लेने को हांफते और कराहते हुए सड़क पर लड़-खड़ाते चल पड़े। लेकिन वे विरोध कैसे कर सकते थे? जो पीछे रह जाते थे, उन्हें गोरों की तलवारें आगे भगातीं और जो विरोध करते, उनके सिर उड़ा दिये जाते।

एक अज़्टेक चित्र मिला है, जिसमें इस पहले अभियान को चित्रित किया गया है। हमें सड़क पर लंगोटियां पहने तीन आदमी जाते हुए दिखाई देते हैं। एक आदमी पीठ पर एक तोपगाड़ी के पहिये को लिए जा रहा है, दूसरा एक साथ बंधी कई बंदूक़ों को, और तीसरा सामान के एक बक्से को। एक स्पेनी अफ़सर ने एक आदि-वासी के सिर के ऊपर अपना डंडा उठा रखा है। उसने आदिवासी के बाल पकड़ रखे हैं और उसके पेट में लात मार रहा है। पास ही एक चट्टान है, जिस पर सलीब पर टंगे ईसा मसीह का चित्र बना है।

विजेता लोग अपने को "अच्छे ईसाई" समझते थे और विजित प्रदेशों में सलीब के साथ जाते थे।



पूरे चित्र पर आदिवासियों के कटे हुए सिर और हाथ बिखरे हुए हैं।

इस तरह आज़ाद आदिवासियों को मनुष्य द्वारा मनुष्य के ग़ुलाम बनाये जाने के मतलब का पहले-पहल पता चला।

स्पेनी लोग धीरे-धीरे, मगर निश्चित रूप से बढ़ते चले गये। और फिर, एक ऊंचे पहाड़ी दर्रे से उन्होंने एक झील और उसके बीच एक शहर को देखा।

अज़्टेकों ने चूंकि कोई मुक़ाबला नहीं किया, इसलिए "मेहमान लोगों" ने शहर में प्रवेश कर लिया। उन्होंने पहला काम यह किया कि अपने मेज़बान, शूर सरदार मोंटेज़ूमा को गिरफ़्तार कर लिया।

कोर्तेज़ की आज्ञा से मोंटेज़ूमा को बेड़ियों में जकड़ दिया गया। कोर्तेज़ ने अपने क़ैदी से कहा कि वह स्पेन के बादशाह के प्रति निष्ठा की शपथ ले। क़ैदी ने आज्ञाकारितासे उन सभी शब्दों को दुहरा दिया, जिन्हें दुहराने के लिए उससे कहा गया। उसे नहीं मालूम था कि बादशाह क्या होता है या शपथ का क्या मतलब होता है।

कोर्तेज़ ने सोचा कि वह जीत गया है। उसका ख़याल था कि उसने मेक्सिको के बादशाह को क़ैद कर लिया है। और क्योंकि क़ैदी बादशाह ने अपना राज स्पेन के बादशाह को दे दिया है, इसलिए सभी कुछ ठीक है। यह कोर्तेज़ का ख़याल था। मगर यह बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी थी। वह मेक्सिको के तौर-तरीक़ों से उतना ही अपरिचित था, जितना मोंटेज़ूमा स्पेनी तौर-तरीक़ों से। उसका ख़याल था कि मोंटेज़ूमा एक बादशाह है, जबकि असल में वह मात्र एक सरदार था, जिसे अपने देश के भविष्य का निश्चय करने का कोई अधिकार न था।

कोर्तेज़ ने अपनी जीत का जश्न जरा जल्दी ही मना लिया।

फिर अज़्टेकों ने एक ऐसी बात की, जिसकी कभी अपेक्षा नहीं की जा सकती थी – उन्होंने एक नया सरदार चुन लिया – मोंटेज़ूमा के भाई को।

नये सरदार ने अपने योद्धाओं का नेतृत्व करते हुए उस बड़े मकान पर हमला किया, जिसमें स्पेनी लोग ठहरे हुए थे।

स्पेनी लोगों ने तोपों और बंदूकों से लड़ाई की।

अज़्टेक लोग पत्थरों और तीर-कमानों से लड़े।

तोप के गोले और बंदूक़ की गोलियां तीर या पत्थर से ज्यादा शक्तिशाली होती हैं। लेकिन अज़्टेक लोग अपनी आज़ादी के लिए लड़ रहे थे और कोई चीज़ उन्हें नहीं रोक सकती थी। जहां दस मरते, वहां उनकी जगह सौ आ जाते। भाई भाई का, चाचा भतीजे का बदला ले रहा था। मौत का किसी को भी भय न था। अज़्टेक के लिए उसके जीवन का तब कोई मोल नहीं होता था, जब उसके कुल या क़बीले पर ज़रा भी ख़तरा होता था।

जब कोर्तेज़ ने देखा कि मामला बस के बाहर होता जा रहा है, तो अज़्टेकों के साथ बातचीत करने का निश्चय किया। उसने सोचा कि मोंटेज़ूमा ही सबसे अच्छा बिचौलिया रहेगा, क्योंकि वह मेक्सिको का बादशाह है। वह चाहता था कि मोंटेज़ूमा अपनी प्रजा को हथियार डाल देने की आज्ञा दे दे।

स्पेनियों ने उसकी बेड़ियां खोल दीं। उसे एक घर की सपाट छत पर ले जाया

गया, मगर लोग उसके साथ एक ग़द्दार और कायर की तरह पेश आये। उस पर पत्थरों और तीरों की बौछार की गई। सभी तरफ़ से एक ही आवाज़ उठी :

"चुप रह ग़द्दार! तू योद्धा नहीं है! तू तो औरत है! औरतों की तरह कताई और बुनाई कर! इन कुत्तों ने तुझे क़ैदी बना रखा है! तू डरपोक है!"

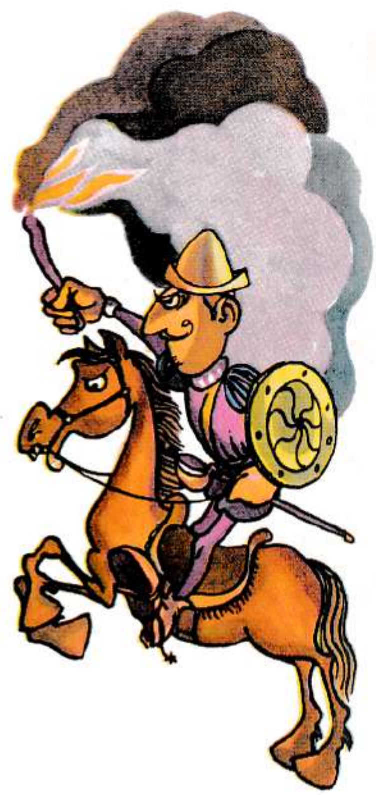
और सांघातिक रूप से घायल मोंटेज़ूमा गिर पड़ा।

कोर्तेज़ बड़ी मुश्किल से हमलावरों की क़तारों से निकल पाया। उसके आधे आदमी मारे गये। उसकी ख़ुशक़िस्मती से अज़्टेकों ने उसका पीछा नहीं किया, वरना वह वहां से ज़िंदा न निकल पाता।

लेकिन जब अज़्टेकों ने उसे जिंदा निकल भागने दिया, तो उन्होंने फिर एक बड़ी ग़लती की। कोर्तेज़ ने एक फ़ौज और जुटाई और टेनोहटिटलान पर घेरा डालने के लिए लौट आया।

अज़्टेकों ने स्पेनियों से महीनों अपने नगर की रक्षा करते हुए डटकर लड़ाई की। लेकिन उनके तीर-कमान तोपों के आगे क्या करते? टेनोहटिटलान को आख़िर जीत लिया गया और लूटमार के बाद धूल में मिला दिया गया।

लौह-युग के लोगों ने ताम्र-युग के लोगों को जीत लिया। प्राचीन सामुदायिक व्यवस्था को नई व्यवस्था के आगे से हटना पड़ा।





जादुई जूते

उन्नीसवीं सदी में लिखी एक कहानी है—एक आदमी को मामूली जूतों के बजाय एक जोड़ा जादुई जूते बेच दिये गये, जिनका एक-एक क़दम दस-दस कोस का पड़ता था। इस कहानी का नायक ज़रा खब्तुलहवास आदमी था और इसलिए इस विचित्र घटना की तरफ़ फ़ौरन उसका ध्यान ही नहीं गया। मेले से घर लौटते समय वह गहरे विचार में डूबा हुआ था कि अचानक उसे बहुत ठंड लगी। उसने आस-पास देखा और पाया कि वह बर्फ़ से घिरा हुआ था और हलके लाल रंग का सूरज क्षितिज के कुछ ऊपर टंगा हुआ था। हुआ यह था कि उसके जादुई जूते उसे आर्कटिक प्रदेश में ले गये थे और इसका उसे पता भी नहीं चला था!

कोई और आदमी होता, तो वह इस अद्भुत उपलब्धि का अधिक-से-अधिक लाभ उठाता। लेकिन कहानी के नौजवान की पैसा बनाने में तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। उसकी सबसे अधिक रुचि विज्ञान में थी। और इसलिए उसने निश्चय किया कि अपने इस सौभाग्य का उपयोग वह दुनिया को अधिक-से-अधिक देखने और जानने में करेगा। अपने जादुई जूते पहने-पहने वह उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर सारी दुनिया में भागता रहता। सर्दियों में वह साइबेरियाई तैगा की ठंड से अफ़्रीकी रेगिस्तान की गरमी में पहुंच जाता और रात में वह पूर्वी गोलार्ध से पश्चिमी गोलार्ध चला जाता।

अपना जीर्ण-शीर्ण काला कोट पहने और अपने संग्रहों के थैले को अपने कंधे पर लटकाये वह टापू से टापू लांघता हुआ आस्ट्रेलिया से एशिया, एशिया से अमरीका चला जाता था।

एक पहाड़ की चोटी से दूसरी पर आहिस्ता से क़दम धरते हुए, आग उगलते ज्वालामुखियों और बर्फ़ से ढंके पहाड़ों के ऊपर से गुज़रते हुए वह खनिजों और घासों को इकट्ठा करता जाता, प्राचीन मंदिरों और गुफाओं की जांच करता और पृथ्वी और सभी सजीव वस्तुओं का अध्ययन करता जाता।

इतिहासकार को भी जादुई जूतों की ही ज़रूरत है। इस पुस्तक के पृष्ठों पर हम एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप और एक युग से दूसरे युग में गये हैं।

कभी-कभी हम तेज़ी से गुज़रते अवकाशों और काल की सतत उड़ान से चकराने भी लगे। लेकिन हम बिना ठहरे चलते ही चले गये। मामूली जूते पहने आदमियों की तरह हम रास्ते में ठहरते हुए सामान्य ब्यौरों का अध्ययन नहीं कर सकते थे।

हमारे सदियों को फांदते समय शायद कुछ चीज़ें अनदेखी रह गई हों। लेकिन अगर हमने अपने जादुई जूते मिनट भर के लिए भी उतार दिये होते और सामान्य गति से चलने लगते, तो हम कभी ब्यौरों के विस्तार के पार न देख पाते। अगर तुम जंगल में हर पेड़ का बारीकी से अध्ययन करने लगो, तो तुम पाओगे कि पेड़ों के कारण तुम जंगल को भी नहीं देख सकते।



अपने जादुई जूतों में हम एक युग से दूसरे युग में ही नहीं, बल्कि एक विज्ञान से दूसरे विज्ञान में भी चले गये।

हम पौधों और प्राणियों के विज्ञान से भाषा के विज्ञान में, भाषा के विज्ञान से औज़ारों के इतिहास में, औजारों के इतिहास से विश्वासों के इतिहास में और धर्मों के इतिहास से पृथ्वी के इतिहास में चले गये।

यह कोई आसान काम न था, मगर रास्ता भी और कोई नहीं था। मनुष्य ने विज्ञानों को इसलिए पैदा किया है कि वे उसके काम आयें, और जब हम पृथ्वी पर मनुष्य के जीवन की, संसार में उसके स्थान की बात करते हैं, तब सभी विज्ञान आवश्यक हो जाते हैं।

हम अभी-अभी स्पेनी विजय के समय अमरीका गये हुए थे।

अब हमें ४०००–३००० ई० पू० के यूरोप में वापस आ जाना चाहिए। हम उसी तरह के कुल पायेंगे, जैसे इरोक़ुओं क़बीलेवालों और अज़्टेकों के थे।

स्त्रियों का यहां आदर किया जाता था, क्योंकि वे घरों की निर्मात्री और कुलों की जन्मदात्री थीं। स्त्रियां सर्दियों के लिए खाद्यभंडार का प्रबंध करती थीं, ज़मीन की जुताई करती थीं, फ़सल को बोती और काटती थीं।

स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक काम करती थीं, मगर उनका सम्मान भी अधिक किया जाता था। यही कारण है कि हर गांव और हर घर में हड्डी या चकमक की तराशी हुई स्त्री की एक मूर्त्ति हुआ करती थी, जो कुल-माता का प्रतीक थी। उसकी आत्मा घर की रक्षा करती थी। लोग भरपूर फ़सल के लिए और अपने शत्रुओं से रक्षा के लिए उसकी प्रार्थना किया करते थे।

सदियों बाद घर की यह रक्षाकारिणी माता यूनान के एथेंस नगर में प्रकट हुई। वहां वह भाले से लैस, नगर की संरक्षिका यूनानी देवी एथेना बन गई। उसके नाम को धारण करनेवाली नगरी एथेंस का संरक्षण करनेवाली देवी की अब वहां कोई छोटी-सी मूर्त्ति नहीं, एक विशाल प्रतिमा थी।

पुरानी इमारत में पहली दरारें

हमारी भाषाओं में हमारी भूतपूर्व सामुदायिक जीवन-प्रणाली के अवशेष अभी तक वर्तमान हैं, यद्यपि स्वयं इस प्रणाली का हमारी स्मृतियों में कुछ भी बाक़ी नहीं है।

रूसी बच्चे अपरिचितों को जब "चाचा" या "चाची" अथवा बुज़ुर्ग अजनबियों को जब "नाना" या "नानी" कहते हैं, तो यह उस समाज का अवशेष है, जिसमें कुल के सभी सदस्य संबंधित होते थे।

और हम कुछ आदमियों को संबोधित करते हुए अकसर "भाइयो" और ऐसे बच्चे को "बेटा" कहते हैं, जो हमारा बेटा क़तई नहीं होता।

दूसरी भाषाओं में भी प्राचीन अतीत के ये अवशेष क़ायम हैं। जर्मन भाषा में "मेरे भांजे-भांजियां" के बजाय "मेरी बहन के बच्चे" कहा जाता है। इसका कारण यह है कि कभी के विस्मृत उस काल में बहन के बच्चे कुल में ही रहते थे, जबकि भाई के बच्चे उसकी पत्नी के कुल के होते थे। बहन के बच्चे रिश्तेदार होते

थे, वे "भांजे और भांजियां" होते थे, जबकि भाई के बच्चे संबंधी नहीं होते थे, क्योंकि वे दूसरे कुल के होते थे।

शाक नामक प्राचीन राज्य में राजा का उत्तराधिकारी उसका अपना पुत्र नहीं, बहन का पुत्र होता था।

अभी हाल – पिछली शताब्दी – तक अफ़्रीका में एक अशांती जाति थी, जिसके राजा को "नाने" कहा जाता था, जिसका मतलब है "मांओं की मां"।

मध्य एशिया में समरक़ंद में बादशाह को "आफ़शीन" कहते थे, जिसका प्राचीनकाल में मतलब होता था "घर की मालकिन"।

इस बात के हम कई और उदाहरण प्रस्तुत कर सकते थे कि लोगों के दिमाग़ों ने प्राचीन मातृसत्तात्मक समाज की, जिसमें मां ही घर की मालकिन और शासिका होती थी, स्मृति को किस तरह क़ायम रखा है।

इसका मतलब यही हो सकता है कि अगर लोग इसे इतने लंबे समय तक याद रखते हैं, तो कुल बहुत शक्तिशाली होना चाहिए था। लेकिन उसे नष्ट किसने किया?

अमरीका में यह जीवन-प्रणाली यूरोपीय विजेताओं के आगमन के साथ नष्ट हुई। और यूरोप में अमरीका के खोजे जाने के हज़ारों वर्ष पहले यह उसी प्रकार स्वयं ढह गई जिस प्रकार दीमकों का खाया मकान ढह जाता है।

इसकी शुरुआत तब हुई, जब पुरुषों ने कुल के अधिकाधिक आर्थिक मामलों को अपने हाथ में लेना शुरू कर दिया।

बिलकुल प्रारंभ से ही धरती को जोतने का काम स्त्रियां करती थीं, जबकि पुरुष पशुओं के झुंडों की देखभाल करते थे। जब तक झुंड बहुत छोटे ही थे, धरती की काश्त करनेवालियों – स्त्रियों – का काम सबसे महत्वपूर्ण था। गोश्त बहुत कम होता था और काम चलाने लायक़ काफ़ी दूध कभी नहीं होता था। औरतों द्वारा इकट्ठा किये और उपजाये अनाज के बिना खाने को कुछ न होता। कभी-कभी तो पूरा भोजन मुट्ठी भर सूखा अनाज या जौ की बनी एक चपाती का ही होता था। इसमें स्त्रियों द्वारा ही इकट्ठा किये जंगली शहद या बेरियों को शामिल कर लिया जाता था। औरतें घर को चलाती थीं और इसलिए वे ही उस पर शासन भी करती थीं।

लेकिन हमेशा यही नहीं होता था। स्तेपी में धान्य घासें उगाना बहुत कठिन था। मैदानों की रसीली जंगली घासें अनाजों के लिए जगह छोड़ना न चाहती थीं, वे अपनी मज़बूत जड़ों को धरती में गहरा घुसा देतीं। और जब कुदाल धरती को फाड़ती, तो उसे नरम मिट्टी नहीं, बल्कि ठोस सतृण भूमि, अछूती भूमि मिती, जिसे तोड़ना बहुत मुश्किल था।

और इसलिए तीन-तीन चार-चार औरतें मिलकर कुदाल चलातीं। लेकिन इतने पर भी वे बस सतह को ही खुरच पाती थीं।

गहरी ज़मीन में न बोये गये बीजों को सूरज सुखा देता और पक्षी चुग लेते। कम ही हरे, नये अंकुर उग पाते। फिर खेत में सूखा अपना ही वरण करता –



यह सुकुमार धान्य घासों को जला देता और बलवान, सहिष्णु घासपात को ज़िंदा रहने देता।

जब कटाई का समय आता, तो स्त्रियां देखतीं कि काटने को कुछ भी नहीं है। ऊंचे घासपात में अनाज की बालियां उन्हें मुश्किल से ही मिल पातीं। स्तेपी की घासें हवा में उस शत्रु-सेना की पताकाओं की तरह झूमती, जो परास्त होने के बाद फिर लौटकर विजयी हुई हो।

अनाज की जगह घासपात! क्या इतनी परेशानी और कमरतोड़ काम किसी मतलब का था?

लेकिन आदमियों के लिए जो घास है, वही ढोरों के लिए दाना है। गायें और भेड़ें मैदान में चैन से रहती थीं। हर क़दम पर उनके लिए भर-पेट खाना तैयार था।

हर वर्ष के बीतने के साथ झुंड बड़े होते जाते थे। कुल के पुरुष अपनी पेटियों में कटार खोंसे उनके पीछे-पीछे लगे रहते थे। चरवाहे का सबसे अच्छा दोस्त, उसका कुत्ता, झुंडों को इकट्ठा करने और उनका बिखरना रोकने में उसकी सहायता करता था। झुंड और भी तेज़ी से बढ़ते गये और हर साल लोगों को ज़्यादा दूध, मांस और ऊन प्रदान करते रहे।

घर में अनाज काफ़ी न होता, मगर भेड़ के दूध से बने पनीर की भरमार होती और घर की पतीलियों में मेमने का शोरबा खुदबुदाता रहता।

स्तेपी में पुरुष का काम, चरवाहे का काम ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होने लगा।

जल्दी ही उत्तरी वनों में भी पुरुष कुल के प्रमुख के रूप में अपना स्थान लेने लगा।



स्वीडन में एक हलवाहे का प्राचीन चट्टान-चित्र मिला है। यह गवाह हमें बताता है कि हलवाहा एक हल के पीछे जा रहा है और हल को बैलों की जोड़ी खींच रही है।

मानव-जाति के इतिहास में यह संभवतः पहला हल है। यह अभी तक बहुत कुछ कुदाल जैसा ही है। अकेला अंतर यह है कि इसमें एक लंबी बल्ली लगी हुई है और इसे आदमी नहीं, बैल खींच रहे हैं।

तो मनुष्य ने अपने पहले "इंजन" की खोज कर ली! हल में जुता बैल निस्संदेह एक ज़िंदा इंजन है–हमारे फ़ौलाद के ट्रैक्टर का ज़िंदा पूर्वज। जब आदमी ने बैल की गर्दन पर जुआ रखा, तो उसने अपना बोझ जानवर पर डाल दिया। इस तरह जिन ढोरों ने पहले उसे सिर्फ़ मांस, दूध और चमड़ा दिया था, उन्होंने अब उसे अपनी शक्ति भी दे दी।

अपनी गर्दनों पर लकड़ी के जुए लिये मंदगति किंतु शक्तिशाली बैल पहले हलों को खींचने लगे। ये हल मिट्टी में कुदालों की अपेक्षा ज़्यादा गहराई तक जाते थे। और उनके पीछे-पीछे खुदकर निकली मिट्टी एक काले फ़ीते जैसी दिखाई देती थी।

पहले हलवाहे ने अपनी सारी शक्ति हल के हत्थे पर लगा दी थी।

अब बैल ने उसका बोझ ले लिया। वह जुताई करता था और दाने को अलग

करता था और उसके अनाज को ढोता था। शरद में बैलों को खलिहान पर ले जाया जाता और वे अनाज को अपने खुरों से अलग कर देते। इसके बाद उन्हें बेपहिया गाड़ी में जोत दिया जाता और वे अनाज के बोरों को खेतों से खींचकर घर ले आते।



पशु-पालन कृषि की अनुपूर्त्ति करता था। चरवाहा हलवाहा भी हो गया। और इससे उसे घर में और ज़्यादा शक्ति प्राप्त हो गई।

ठीक है, काम में औरतों का भी पूरा हिस्सा था। वे कताई और बुनाई करती थीं, फ़सल काटती थीं और बच्चों को पालती-पोसती थीं।

लेकिन वे अपनी पुरानी शक्ति और सम्मानित स्थान को गंवा चुकी थीं। चरागाह में और घर में पुरुषों की ही चलती थी।

अब औरतें पुरुषों पर किसी चीज़ से नाराज़ हो जाने पर इतना नहीं चीखती-चिल्लाती थीं, जितना कि वे पहले करती थीं। और अब आदमी जवाब देने लगे थे – और केवल सफ़ाई देने के लिए ही नहीं। पहले सासों, मौसिया सासों और ननिया सासों के लिए किसी आदमी को घर से निकाल बाहर करना बहुत आसान था। अब वे उसकी परवाह करने लगीं, क्योंकि दूसरे कुल का यह अजनबी आदमी, जिसने उनके परिवार में शादी कर ली थी, उन सभी के लिए काम कर रहा था, वह कुल का पेट भरने में सहायता दे रहा था। अब वे खुद अपने पुरुषों को दूसरे कुलों को दे देने के लिए पहले की तरह तैयार न थीं।

कुलों पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए पुरुषों ने आपस में सैनिक समझौते कर लिये।

पहले, जब कोई आदमी मरता था, तो उसकी बहन के बच्चे उसके न्यायपूर्ण उत्तराधिकारी होते थे। अब पुरुषों ने इस क़बीलाई क़ानून को बदलने की कोशिश की।

तुआरेग क़बीले के अफ़्रीकी खानाबदोशों में उत्तराधिकार को "न्यायपूर्ण" भाग और "अन्यायपूर्ण" भाग में बांटा जाता था। विरासत का "न्यायपूर्ण" भाग बहन के बच्चों को मिलता था और इसमें हर वह चीज़, जो मृतक ने अपने जीवनकाल में अपनी मां से प्राप्त की थी और हर वह चीज़ शामिल होती थी, जो सामूहिक घर में काम करते समय संचित हुई थी। "अन्यायपूर्ण" भाग में लड़ाई में जीता माल और व्यापार से संचित हर चीज़ सम्मिलित होती थी। यह भाग उसके अपने बच्चों को मिलता था।

मातृसत्तात्मक समाज हज़ारों वर्ष चला था। और इसके बाद पुरानी जीवन-प्रणाली में बलूत के पुराने पेड़ की तरह दरारें नज़र आने लगीं।

कुल के लोगों ने अधिकाधिक अवसरों पर पुराने तरीक़ों के खिलाफ़ जाना शुरू कर दिया। पहले पत्नी पति को अपने परिवार में ले जाती थी। अब पति पत्नी को अपने घर में लाता था।

चूंकि यह बात पुराने तरीक़ों के खिलाफ़ थी, इसलिए जो इस रिवाज को तोड़ता था, उसे अपराधी समझा जाता था।



कोई नौजवान किसी दूसरे कुल से पत्नी को सीधे-सीधे लेकर नहीं चला आ सकता था। उसे पत्नी को चुराना, उसका अपहरण करना पड़ता था।

आधी रात को नौजवान और उसके मर्द रिश्तेदार भालों और कटारों से लैस होकर उस नवयुवती के मकान के पास तक छिपकर जाते, जिसे लड़के के कुल ने उसकी पत्नी के रूप में चुना था।

भौंकते कुत्ते सारे ख़ानदान को जगा देते थे। दुलहिन का श्वेतकेशी नाना भी और बिना दाढ़ी-मूंछवाले भाई भी, सभी लोग अपने हथियारों की तरफ़ लपकते; लड़ाई में उलझे पुरुषों की ज़बरदस्त चिल्लाहटें औरतों के क्रंदन को डुबा देतीं। आख़िर, दूल्हा अपने कुलवालों की आड़ में अपनी ज़िंदा लूट – अपनी दुलहिन – को लिये-लिये वापस आ जाता।

अनेक वर्ष बीत गये। कालांतर में क़बीलाई पुराने क़ानून का यह उल्लंघन एक नया क़बीलाई रिवाज बन गया। तब दूल्हा और दुलहिन के रिश्तेदारों में "लड़ाई" एक संस्कार बन गई।

रक्तपात की जगह भेंटों और मुक्ति-मूल्य ने ले ली। दुलहिन की रोती मां, बहनें और सहेलिया भी विवाह-संस्कार का एक अंग बन गईं, जिसके अंत में दावत होती थी।

अभी तक ऐसे लोग हैं, जिन्हें वे प्राचीन शोकपूर्ण गीत याद हैं, जिनमें एक अजनबी कुल और अजनबी घर में आनेवाली युवा वधू अपने दुर्भाग्य पर विलाप करती है।

और उसका हाल था भी ऐसा ही। अनजान घर में युवती पूर्णतः अपने पति की दया पर आश्रित होती। कोई ऐसा न था, जिसके आगे वह अपना दुखड़ा रो पाती, क्योंकि उसकी सास और ससुर दोनों और उसके पति के सभी संबंधी सदा उसके पति का ही पक्ष लेते। जब कोई आदमी घर में एक जवान दुलहिन को लेकर आता, तो यह लड़की परिवार में एक और काम करनेवाली की हैसियत से आती थी और हर कोई इस बात का ध्यान रखता था कि वह क्षण भर को भी ख़ाली न बैठे और अपने थोड़े से हिस्से से ज़रा भी ज़्यादा न खा ले। परिवार, जिसमें हर बात में माता की ही चलती थी, हर बात में पिता की ही चलनेवाला परिवार बन गया।

अब बच्चे अपनी मां के परिवार के साथ नहीं रहते थे, वे अपने पिता के परिवार के साथ रहने लगे। संबंध अब मां के परिवार से नहीं, पिता के परिवार से निर्धारित किया जाता था। रूस में लोग आदमी के पहले नाम के साथ उसके पिता का पहला नाम और "का बेटा" जोड़ने लगे।

पितृनामों का उपयोग यहीं से आया है, यही कारण है कि हम किसी को "प्योत्र इवानोविच" कहते हैं, जिसका पुराने जमाने में मतलब था, "प्योत्र, इवान का बेटा"।

पहले खानाबदोश

मनुष्य ने जिस अद्भुत भंडारघर की खोज की थी, उससे वह अधिकाधिक भेंटें पाता रहा। स्तेपी में हज़ारों ही भेड़ें चरती थीं। खेतों में नरम काली ज़मीन में ज़ोर लगाकर चलते बैलों को हलवाला हांकता था।

उर्वर घाटियों में पहले फलोद्यान और द्राक्षोद्यान मीठी गंध के साथ मुकुलित हो रहे थे। शाम के समय लोग अंजीरों के पेड़ों के नीचे इकट्ठा होकर बातचीत किया करते थे।

मनुष्य के श्रम ने उसे कितने ही वर दे दिये थे, लेकिन अब उसे सख़्त मेहनत से और ज़्यादा काम करना पड़ता था। अंगूर का हर गुच्छा, गेहूं की हर बाली मानव श्रम से लबालब भरे हुए थे।

अंगूरवाटिकाओं की देखभाल में बड़ा कठिन काम करना पड़ता था। जब अंगूरों के भारी-भारी गुच्छे चुन लिये जाते, तो उनका रस निकालने के लिए उन्हें पत्थर के कोल्हुओं में रखकर कुचला जाता था। अंगूर दब-पिस जाते और उनका स्याह ख़ून बकरे की खाल के थैलों में चला जाता था। लोग बकरे की खाल से लैस एक अद्भुत देवता और उसकी व्यथाओं के बारे में भक्तिपूर्ण गीत गाते थे, जो सभी शराब की श्रेष्ठता के लिए होते थे।

नदियों के निचले मैदानों में, जहां हर वसंत में बाढ़ का पानी धरती को उपजाऊ बनाता था, प्रकृति स्वयं अच्छी फ़सल पैदा करने में हाथ बंटाती लगती थी।

लेकिन यहां भी काश्तकार के हाथ आराम नहीं करते थे। लोग पानी को खेतों में रोक रखने और जहां उसकी ज़्यादा ज़रूरत हो, उसे वहां भेजने के लिए नालियां खोदते और बांध बनाते थे।

लोग नदी की प्रार्थना किया करते थे, जो उनकी मिट्टी को उपजाऊ बनाती थी और वे इसी बीच इस बात को पूरी तरह से भुला देते थे कि अगर उन्होंने ज़मीन पर कमरतोड़ मेहनत न की होती, तो उस पर घासपात के अलावा और कुछ न उगता।

जैसे-जैसे समय गुज़रता गया, काश्तकार की परेशानियां बढ़ती गईं। पशुपालक को भी दम लेने की फ़ुरसत न थी। झुंड जितना बड़ा होता, चरवाहे के लिए उतना ही अधिक काम होता। दर्जन भर भेड़ों की देखभाल एक बात है, लेकिन हज़ारों का ध्यान रखना और बात है। बड़ा झुंड चरागाह का ज़्यादा तेज़ी के साथ सफ़ाया कर देता था और इसलिए उसे गांव से अधिकाधिक दूरी पर दूसरे चरागाहों की तरफ़ ले जाना पड़ता था।



अंत में, पूरे के पूरे गांव अपने डेरे-डंडे उखाड़ते और झुंडों के पीछे चल देते। लोग अपने तंबू और सामान अपने ऊंटों की पीठ पर लाद लेते और अपनी ज़िंदा दौलत को अपने आगे-आगे हांकते हुए चल पड़ते।

पीछे वे उजाड़ खेतों को छोड़ जाते, जो शीघ्र ही घासपात से भर जाते। मगर उन्हें इन खेतों को छोड़ने का असल में कोई दुःख न था, क्योंकि शुष्क स्तेपी में अच्छी फ़सल बड़ी ही विरल बात थी।

इतिहास में पहली बार केवल एक ही क़बीले के लोगों में नहीं, बल्कि विभिन्न क़बीलों के बीच भी श्रम का विभाजन हुआ।

स्तेपी में चरवाहों के ऐसे क़बीले प्रकट हुए, जो ढोर पालते थे और अनाज से उनका विनिमय करते थे। वे कभी एक ही जगह नहीं रहते थे, बल्कि एक चरागाह से दूसरे चरागाह जाते हुए जगह-जगह घूमते रहते थे।

ख़ानाबदोशों की ज़िंदगी तूफ़ानी और आज़ाद थी।

वे अपने डेरे खुले स्तेपी में डाल देते थे, ऊपर तारों-भरे असीम आकाश के अलावा और कुछ न होता था, विराट स्तेपी ही उनका घर था। उनकी लंबी-लंबी यात्राओं में बच्चे ऊंटों की भूलती पीठों पर झोंके खाते-खाते ही सो जाते थे उन्होंने बस एक इसी पालने को जाना था।

फिर भी, जिस ज़माने की हम बात कर रहे हैं, उसमें चरवाहे क़बीलों में अभी तक बहुत कम असली ख़ानाबदोश थे।

ज़िंदा औज़ार

ख़ानाबदोश क़बीले की ज़िंदगी न शांतिमय थी और न ही शांत। अपनी घुमक्कड़ी के दौरान ख़ानाबदोश जब काश्तकारों के खेतों और झुंडों पर आ पहुंचते, तो वे अकसर उस चीज़ को बलात ले लेते थे, जिसे वे ख़ुद नहीं बोते थे। किसी नदी की घाटी से नीचे आकर या स्तेपी में जाते-जाते जंगल के छोर की तरफ़ बढ़कर वे रास्ते में पड़नेवाले गांवों को जलाते और लूटते हुए, फ़सल को रौंदते हुए, जानवरों को हांकते हुए और ग्रामवासियों को क़ैदी बनाते हुए आगे बड़ते थे।

उन्हें क़ैदियों की ही सबसे ज्यादा ज़रूरत थी, क्योंकि लोगों को काम करने के लिए, झुंडों की देखभाल करने के लिए मजबूर किया जा सकता था।

ख़ानाबदोश चरवाहे इस तरह रहते थे। लेकिन किसान भी कोई विशेष शांति-प्रेमी नहीं थे।

शरद में, जब फ़सल घर आ जाती थी, तो उन्हें अपने पड़ोसियों के खाद्य-भंडारों, कपड़ों, गहनों और हथियारों को लूटने के लिए उन पर हमला करने में ज्यादा संकोच न होता था। यहां भी सबसे मूल्यवान जयचिह्न उनके क़ैदी ही होते थे, क्योंकि किसानों को भी नालियां खोदने, बांध बनाने और बैल हांकने के लिए अतिरिक्त काम करनेवालों की ज़रूरत पड़ती थी।

आरंभ में क़ैदियों को ग़ुलाम नहीं बनाया जाता था, क्योंकि एक जोड़ा फ़ालतू हाथों से कोई विशेष लाभ न प्राप्त किया जा सकता था। आदमी यद्यपि काम करता पर वह जितना कमाता था, उतना ही खा लेता था।

जब बड़े-बड़े झुंड पैदा हो गये, जब एक आदमी जितने अनाज, मांस तथा ऊन का उपयोग कर सकता था, उसका काम उससे ज्यादा पैदा करने लगा, तो सभी कुछ बदल गया। किसान अपने अनाज का ऊन से विनिमय करने के लिए अपनी आवश्यकता से अधिक धान्य घासें पैदा करने लगे। इसी प्रकार चरवाहों को अपने कपड़ों और मांस के लिए भेड़ों के जितने बड़े रेवड़ की ज़रूरत थी, वे उससे बड़े रेवड़ रखने की कोशिश करते थे, क्योंकि अतिरिक्त ऊन को अनाज और हथियारों से बदला जा सकता था।

इस विनिमय और आये दिन की डकैती ने कुछ क़बीलों और परिवारों को औरों से ज़्यादा धनी बना दिया। उनके झुंड ज़्यादा बड़े थे और वे ज़्यादा धान्य घासें बोते थे। लेकिन उनके पास इन झुंडों की देखभाल, इन ज़मीनों की जुताई के लिए काफ़ी मज़दूर न होते थे। इसीलिए कुछ लोग औरों को ग़ुलाम बनाने लगे। ग़ुलाम का काम उसके मालिक का और ख़ुद उसका पेट भर देता था। मालिक को बस यह देखना होता था कि ग़ुलाम काम ज़्यादा करे और खाये कम। और इसलिए एक आदमी ने दूसरे आदमी को अपना ज़िंदा औज़ार बना लिया।



मनुष्य को गिराया गया, उसके गले में यों जुआ डाल दिया गया, मानो वह कोई बैल हो।

आज़ादी के रास्ते में, प्रकृति की शक्तियों पर अपना प्रभुत्व पाने के रास्ते में मनुष्य स्वयं अपने ही जैसे व्यक्ति का दास हो गया।

पहले ज़मीन उन सबकी संयुक्त संपत्ति थी, जो उस पर काश्त करते थे। अब ग़ुलाम उस ज़मीन की काश्त करने लगा, जो उसकी नहीं थी।

जिस बैल को वह हांकता था, वह उसका बैल नहीं था। जिस फ़सल को वह काटता था, वह उसकी फ़सल नहीं थी।

प्राचीन मिस्र में बैलों की जोड़ी को हांकते समय ग़ुलाम गुनगुनाता था :

गेहूं की बालियों को रौंद दे, रे बैल!
बालियों को रौंद दे!
फ़सल यह मेरे मालिक की है।

मानव-जाति के इतिहास में पहली बार मालिक और दास प्रकट हुए।

याद और यादगार

अतीत की हमारी यात्रा ख़ासी मुश्किल रही है, क्योंकि हम गुफाओं की भूलभुलैयाओं में पर्यटकों की भांति नहीं, अन्वेषकों की तरह घूमे हैं। हर नई चीज़ जो हमें मिली, वह एक रहस्य थी, जिसे हल करना था। रास्ते पर कहीं कोई पथचिह्न नहीं थे, हमें हमारी खोज में सहायता देने के लिए सही दिशा दिखानेवाले तीर के निशान नहीं थे। और पाषाण युग में रहनेवाला मानव छोड़ता भी तो हमारे लिए किस प्रकार के निशान छोड़ सकता था? उसे तो लिखना भी नहीं आता था!

अब आख़िर हम एक ऐसी सड़क पर आ गये हैं, जिस पर सारे रास्ते निशान लगे हुए हैं। हमें पहले शिलालेख समाधि प्रस्तरों और मंदिरों की दीवारों पर मिलते हैं। अब ये जादू-टोने के वे संकेत नहीं रहे हैं, जो भूत-प्रेतों को दूर रखने के लिए बनाये जाते थे। इन चित्रों में पूरी की पूरी कहानियां हैं – लोगों के लिए और लोगों के बारे में कहानियां।

अभी तक हमारे अक्षरों से मिलती-जुलती भी कोई चीज़ नहीं है। बैल के लिए बैल की तसवीर है, पेड़ को अपनी सभी डालियों के समेत बनाया गया है।

लिखने का इतिहास चित्र-शब्दों के साथ शुरू होता है। इन चित्रों के सरल बनने और संकेतों में परिवर्तित होने में कई सदियां लग गईं।

उन चित्रों का अनुमान करना कठिन है, जिनसे हमारी वर्णमालाओं के अक्षर निकले हैं। यूरोपीय वर्णमालाओं का उपयोग करनेवालों में कौन यह सोच सकता है कि "A" अक्षर बैल का सिर है? लेकिन अगर तुम "A" का सिर नीचे और पैर ऊपर कर दो, तो तुम देखोगे कि यह सींगदार सिर से मिलता-जुलता है। प्राचीन शामियों की भाषा में यह सींगदार सिर "A" के लिए – उनकी वर्णमाला के पहले अक्षर "अलिफ़" के लिए था, जिसका मतलब था "बैल"।

इसी प्रकार हम वर्णमाला के सभी अक्षरों के इतिहास का पता चला सकते हैं। हमें पता चलेगा कि "O" आंख के लिए था और "P" लंबी गर्दनवाले सिर के लिए।

लेकिन हमारे जादुई जूते हमें बहुत दूर ले आये हैं।

असल में, हम अपनी कहानी में अभी उसी जगह पहुंचे हैं, जब पहली चित्र-लिपि प्रकट हुई थी।

मनुष्य ने लिखना बहुत धीरे-धीरे और बड़ी अनिश्चितापूर्वक सीखा।

फिर भी, अब समय आ गया था कि वह लिखना सीखे।

जब तक कि प्राप्त करने के लिए अधिक जानकारी या तथ्य नहीं थे, मनुष्य जितनी भी बातों को जानते थे, उन्हें याद रखा जा सकता था। आख्यायिकाएं, पौराणिक कथाएं और परियों की कहानियां एक आदमी से दूसरे आदमी के पास चली जाती थीं। हर बूढ़ा आदमी एक ज़िंदा किताब था। लोग कहानियों, पौराणिक कथाओं और सामान्य आचार के नियमों को याद कर लेते और अपने बच्चों को एक मूल्यवान धरोहर के रूप में दे जाते, ताकि अपनी बारी में उनके बच्चे उन्हें अपने बच्चों तक पहुंचा दें। लेकिन यह धरोहर जितनी भारी होती गई, इसे पूरी तरह से याद करना उतना ही मुश्किल होता गया।

और इसलिए याद की मदद को यादगार आई। एक के अनुभव को दूसरे तक पहुंचाने में लिखित भाषा बोली जानेवाली भाषा की सहायता करने लगी। किसी सरदार की विजय यात्राओं और लड़ाई के कारनामों को बाद की पीढ़ियों के दिमाग़ों में ताज़ा रखने के लिए उन्हें उसकी समाधि पर चित्रित कर दिया जाता था।



जब अन्य मित्र क़बीलों के पास दूत भेजे जाते थे, तो भोजपत्र के टुकड़े पर या मिट्टी की तख्ती पर याद दिलाने का काम करने के लिए कितने ही चित्र-शब्द बना दिये जाते थे।

समाधि-प्रस्तर पहली पुस्तक था; भोज की छाल का एक टुकड़ा पहला पत्र था।

हमें अपने टेलीफ़ोनों, रेडियो और टेप रेकार्डरों पर अभिमान है, जो दिक्-काल पर पार पाने में हमारी सहायता करते हैं। हमने आवाज़ों को सैकड़ों और हजारों किलोमीटर की दूरियों पर भेजना सीख लिया है। टेपों और रेकार्डों पर अंकित हमारी आवाज़े अबसे सैकड़ों साल बाद भी साफ़-साफ़ बोलेंगी। हमने बड़ी भारी प्रगति कर ली है, लेकिन हमें अपने से पहले-

वाले लोगों की उपलब्धियों को भूल नहीं जाना चाहिए। हमारे पैदा होने के बहुत पहले हमारे पूर्वजों ने पहले-पहले भोज की छाल पर पत्र लिखकर अवकाश को और पत्थर के स्मारकों पर संदेश खोदकर काल को जीत लिया था।



इनमें से कई स्मारक हज़ारों वर्ष पहले के महान अभियानों और युद्धों की अपनी कहानी सुनाने के लिए अभी तक बचे रहे हैं। भाले और तलवार चलाते योद्धाओं की आकृतियां पत्थर पर नक़्श है। ये विजयोत्सव मनाते घर लौटते विजेता हैं, जबकि उनके पीछे सिर झुकाये और कमर के पीछे बंधे हाथ उनके क़ैदी घिसटते चले आ रहे हैं। और यहां, चित्र-लिपियों में, हमें हथकड़ी का एक चित्र मिलता है, जो दासता और असमानता का निशान है। यह निशान हमें मानव-जाति के इतिहास में एक नये अध्याय के प्रारंभ के बारे में, दास-प्रथा के आरंभ के बारे में बताता है।

बाद में मिस्र के मंदिरों की दीवारों पर हमें ऐसे कितने ही चित्र-साक्षी मिलेंगे।

एक चित्र में एक निर्माणस्थली के लिए ईंटें ले जाते ग़ुलामों की एक लंबी क़तार दिखाई गई है। एक ग़ुलाम ने कुछ ईंटें अपने कंधे पर जमा ली हैं और वह इस ढेर को दोनों हाथों से सहारा दे रहा है। दूसरा एक बहंगी में ईंटें ले जा रहा है, जैसे किसान पानी की दो बाल्टियों को ले जाते हैं। राजगीर एक दीवार बना रहे हैं। ईंटों के ढेर पर एक सर्वेक्षक को बैठा दिखाया गया है। उसने अपनी कुहनियों को अपने घुटनों पर टेक रखा है और उसके हाथ में एक लंबी छड़ी है। उसे काम नहीं करना पड़ता। उसका काम औरों से काम करवाना है। एक दूसरा सर्वेक्षक निर्माणस्थली के पास इधर-उधर घूम रहा है। उसने एक ग़ुलाम के सिर पर अपनी छड़ी तान रखी है, क्योंकि ग़ुलाम ने प्रत्यक्षतः उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ कुछ किया है।

प्याज से नहीं कली गुलाब की कभी उग सकती है,
नहीं दासी कभी स्वाधीन नर को जन सकती है।

दास और स्वाधीन लोग

यूनानी कवि थिओग्नीस ने यह एक ऐसे समय में लिखा था कि जब दास-प्रथा समाज की स्थापित प्रणाली बन गई थी।

फिर भी आरंभ में ग़ुलामों को नीचा नहीं समझा जाता था। आज़ाद आदमी और ग़ुलाम एक ही बड़े परिवार या बिरादरी के सदस्यों के रूप में साथ-साथ रहते और काम करते थे।

पिता – कुल-पिता – इस पारिवारिक बिरादरी का प्रमुख और शासक होता था। उसके बेटे, उनकी पत्नियां और बच्चे और उसके ग़ुलाम उसके आश्रय में रहते थे और पूर्णतः उसके आधीन होते थे। पिता जितनी सुगमता से अपने उद्दंड ग़ुलाम को कोड़ों से पीट सकता था, उसी तरह वह अपने उद्दंड पुत्र को भी पीट सकता था।

बूढ़ा गुलाम जब अपने मालिक से बात करता था, तो वह उसे सीधे "बेटा" कहता था, जबकि रिवाज के अनुसार मालिक बूढ़े गुलाम को "बाबा" कहता था।

अगर तुमने 'ओडिस्सी'* पढ़ा हो, तो तुम्हें शायद बूढ़े सूअर-पालक यूमीयस की याद हो, जो अपने मालिक के साथ ही खाता-पीता था। यूमीयस को "देवता तुल्य" कहा गया है, जैसे कि किसी क़बीले के मुखिया को "देवता तुल्य" कहा जाता है।

लेकिन गीत के बोलों पर सदा ही विश्वास नहीं किया जा सकता। सूअरों की देखभाल करनेवाला यूमीयस न किसी देवता के समकक्ष था और न अपने मालिक के ही। उसे काम करना पड़ता था, जबकि उसका मालिक काम करने के मामले में आज़ाद था। गुलाम से परिवार के किसी सदस्य के मुक़ाबले ज्यादा काम की अपेक्षा की जाती थी, जबकि उसे मिलनेवाला हिस्सा कहीं कम होता था। गुलाम अपने मालिक की संपत्ति होता था, जबकि उसका मालिक संपत्ति का स्वामी होता था।



जब पुराना मालिक मर जाता, तो उसके गुलाम उसके अन्य माल-मते, सामान के संग्रह, जानवरों के झुंडों सहित उसके बेटों की संपत्ति बन जाते थे।
इस पारिवारिक बिरादरी में समानता का कोई भी लेश बाक़ी न था।

यहां पिता अपने बच्चों पर शासन करता था, पति अपनी पत्नी पर हुकूमत करता था, सास अपनी बहुओं पर और बड़ी बहुएं छोटी बहुओं पर हुकूमत चलाती थीं। लेकिन गुलाम तो सीढ़ी पर सबसे नीचे था। उस पर हर कोई अपना हुक्म चलाता था।

कुलों और बिरादरियों में पहले जो बराबरी थी, वह भी जाती रही। किसी के पास ज़्यादा ढोर थे, तो किसी के पास कम। और ढोर संपत्ति के प्रतीक थे। बैल के बदले कपड़े और हथियार लिये जा सकते थे। कांसे के सबसे पहले सिक्कों के बैल की फैली हुई खाल की आकृति में ढाले जाने का यही कारण था।

पर एक गुलाम तो एक बैल से भी ज़्यादा क़ीमती था।

गुलाम सूअरों, गायों और भेड़ों की देखरेख करता था। शाम को उनके साथ दिन भर चरागाहों में रहने के बाद वह उन्हें बाड़ों और थानों में बंद करता था। दास फ़सल की कटाई में मदद देता था, दास ही अंगूर से रस और ज़ैतून से तेल निकाला करता था। धान्यागारों में सुनहरे अनाज के ढेर लगे हुए थे। मिट्टी के दोहरी मुठियावाले बड़े-बड़े बर्तनों में, जिन्हें अंफ़ोरा कहते थे, सुगंधित तेल इकट्ठा होता जाता था।

गुलाम स्वतंत्र आदमी की सहायता करता था, लेकिन गुलाम ही सबसे मुश्किल और सबसे गंदे काम को करता था।

अब लड़ाइयां लाभदायी हो गईं, क्योंकि लड़ाइयां गुलाम पैदा करती थीं और गुलाम अपने स्वामियों के लिए अपार संपदा पैदा करते थे।

---

* प्राचीन यूनानी महाकवि होमर का महाकाव्य। – सं०

और इसलिए स्वतंत्र लोग अपने जानवरों की देखभाल और पालन और अपनी ज़मीनों की जुताई करने के लिए ग़ुलामों को छोड़कर ख़ुद लड़ाई पर चले जाया करते थे।

लड़ाइयां और भी ज़्यादा काम लाती थीं। दूसरे क़बीले पर हमला करने के लिए लोगों को तलवारों और भालों और रथों की ज़रूरत थी। योद्धा अपने रथों में द्रुतगामी घोड़े जोतते और लड़ाई के मैदानों में तेज़ी के साथ घूमते थे।

लेकिन लड़ाई में हमला और बचाव, दोनों ही होते हैं। दुश्मन की तलवारों और भालों से बचने के लिए योद्धाओं को शिरस्त्राण पहनने पड़ते थे और ढालों का इस्तेमाल करना पड़ता था। अंततः सामूहिक निवासों को बड़े-बड़े पत्थरों की बनी मज़बूत दीवारों से घेर दिया गया।

कुल जितना धनी और शक्तिशाली होता था, अपनी प्रतिरक्षा पर वह उतना ही अधिक समय और श्रम लगाता था। बचाने के लिए उसके पास काफ़ी कुछ होता था।

जल्द ही भारी फाटकों और दीवारों पर बुर्जों से लैस दर्जनों कमरों और भंडार-घरोंवाले विशाल कोटले पहाड़ियों की चोटियों पर नज़र आने लगे।

तंबू मकान और मकान शहर कैसे बना

सोवियत पुरातत्त्वविद स० तोल्स्तोव ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन ख़्वारेज़्म' में उन क़िलों के खंडहरों का वर्णन किया है, जिनकी उन्होंने मध्य एशिया के रेगिस्तानों में खोज की थी।

ये क़िले आकार में मकानों की बनिस्बत क़सबों जैसे ही ज़्यादा थे।

कई किलोमीटर लंबी मिट्टी की बनी मोटी दीवारों ने एक विशाल ख़ाली चौक को घेर रखा था। बिरादरी के लोग दीवारों के भीतर ही, छत में छोटी-छोटी खिड़कियोंवाले मेहराबदार गलियारों में रहा करते थे।

यह बात अजीब थी कि हज़ारों लोग दीवारों में बने अंधेरे और तंग गलियारों में रहते थे, जबकि बीच का बड़ा चौक ख़ाली ही रहता था।

तोल्स्तोव ने एक बहुत ही सरल उत्तर पा लिया। उन दिनों ख़्वारेज़्म के निवासियों का मुख्य धन उनके ढोर थे। चौक असल में अनेकों झुंडों का एक विशाल बाड़ा था, जबकि झरोखों और पहरे की मीनारोंवाली दीवारें इस संपत्ति को दुश्मन के हमले से बचाती थीं।

जब कोई दुश्मन हमला कर ही देता, तो क़िले के सभी निवासी झरोखों में अपनी-अपनी जगह ले लेते और हमलावरों पर तीरों की बौछार करते।

लेकिन जिस दौलत की वे मिलकर रक्षा करते थे, वह अब उनकी संयुक्त संपत्ति नहीं रही थी, क्योंकि यद्यपि हर निवासी एक-दूसरे से संबंधित था, तो भी कुछ परिवारों के पास औरों से अधिक भेड़ें, बैल और घोड़े थे।

प्राचीन आख्यानों से हमें उस सुदूर काल का पता चलता है, जब "धनी' शब्द एक शब्दावली का अंग था। लोग महज यही नहीं कहते थे



कि कोई आदमी "धनी" है, वे कहते थे, "गाय-बैलों में धनी", "घोड़ों में धनी"।

पड़ोसी क़िलों पर हर नया हमला सरदारों के झुंडों को और अमीरों और ग़रीबों के बीच के फ़ासले को बढ़ाता जाता था।

तोल्स्तोव और उनके सहकर्मियों ने बाद के ज़माने में बने और भी घर और क़िलों जैसे क़सबे दोनों ही तरह का पता लगाया।

रेगिस्तान में उनकी खुदाइयां वर्षों चलीं। यह एक बड़ा कठिन और गंभीर कार्यभार था। एक कभी की लुप्त सभ्यता की खोज में सोवियत विद्वानों ने ऊंटों, मोटरकारों, मोटरनौकाओं और हवाई जहाजों पर सफ़र किये। कभी-कभी ऊंट की पीठ या पहाड़ी चोटी से उन्हें बस भूरी और खारी रेत की परत से ढंके टीले ही नज़र आते। मगर हवाई जहाज़ पर से वहीं उन्हें दीवारों, सड़कों और विशाल सामुदायिक मकानों की स्पष्ट रूपरेखाएं भी दिखाई देतीं।

इन सभी मकानों और क़सबों की तुलना करके उन्होंने आखिर आदिम सामुदायिक प्रथा से दास-प्रथा में रूपांतरण की कहानी को पूरा किया।

यह द्जान्बास-काला के पास मछियारों का एक डेरा है। यहां कोई अमीर-ग़रीब न था। सभी चूल्हे एक ही आकार के थे, सभी लोग बराबर थे, क्योंकि सभी समान निर्धन थे। यह घर बिना क़िलेबंदी का था। यहां बचाने को कोई धन न था।

इस शिविर-स्थल से कुछ ही दूरी पर वैज्ञानिकों को मिट्टी के बने एक "लंबे घर" के अवशेष मिले। दो पचास मीटर लंबे गलियारों की पूरी लंबाई में एक के बाद एक क़तार में चूल्हे बने हुए थे।

इस घर की भी क़िलेबंदी नहीं थी।

लेकिन सदियां बीत गईं। कई "लंबे घर" एक बड़े खाली चौक को बसी हुई दीवार से घेरते हुए एक-दूसरे से जुड़ गये।

कुइज़ेली-गिर का बाड़ेदार मकान इसी तरह का है। यहां हमें दीवारों में झरोखे और प्रहरी बुर्ज भी मिलते हैं। लोग अपने झुंडों को दुश्मनों के हमलों से बचाते थे, मगर उन्हें अपने पड़ोसियों पर हमला करने और दूसरों के माल को उड़ा लाने में कोई संकोच न था। यहां कुछ परिवार दूसरों की अपेक्षा अधिक धनी थे, यद्यपि इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। पुरातत्त्वविद अन्य देशों और संसार के अन्य भागों में रहनेवाले लोगों के रिवाजों के अध्ययन द्वारा केवल अनुमान ही कर सकते हैं कि यह असमानता विद्यमान थी।

अगला क़दम द्जान्बास-काला का क़िला है। दीवारों के भीतर का चौक खाली नहीं है, क्योंकि कई कमरोंवाले दो विशाल सामुदायिक मकानों ने खाली जगह को भर रखा है। दोनों मकानों के बीच से एक सड़क "अग्निगृह" को जाती है। प्रागैतिहासिक मछियारों के डेरे में जहां प्राचीन चूल्हे में अविराम अग्नि रहती थी, यहां मंदिर बन गया है।

क़िले में अब एक ही कुल नहीं रहता। यहां दो कुल रहते हैं और प्रत्येक का अपना घर है। यहां बाड़ा नहीं है, क्योंकि निवासियों का मुख्य उद्यम पशु-पालन

नहीं, कृषि है। क़िले की दीवारों के बाहर सिंचाई की आड़ी-तिरछी नालियों से भरे खेत हैं। क़िला खेतों और इन नालियों की खानाबदोशों से रक्षा करता है।

यह इससे भी बाद की मंज़िल है – तोप्राक-काला की गढ़ी। क़िले की दीवारों के भीतर कई कमरोंवाले लगभग दर्जन भर मकान हैं।

शहर को चारों तरफ़ से कई बुर्जियोंवाली दीवारों ने घेर रखा है। यात्री शहर में तुरंत ही नहीं घुस सकता, उसे पहले एक भूलभुलैया से गुज़रना होता है, जो प्रवेशद्वार की रक्षा करती है।

मुख्य सड़क, जो प्रवेशद्वार से प्रारंभ होती है, शहर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चली जाती है। इसके दोनों तरफ़ सैकड़ों कमरेवाले विशाल सामुदायिक भवन, छोटी-छोटी मीनारें और आंगन हैं। मुख्य सड़क "अग्नि-गृह" को और शहर के शासक के तीन मीनारोंवाले शानदार महल को जाती है।

आज इसके केवल खंडहर ही बाक़ी हैं, जो जगह-जगह रेत और मिट्टी से ढंके हुए हैं। पुरातत्त्वविदों को इस नगर की रूपरेखा की पुनर्रचना में बड़ा समय और श्रम लगाना पड़ा था।

उनके श्रम के फलस्वरूप खोजों का एक सतत प्रवाह बंध गया। सबसे दिलचस्प चीज़ें तीन मीनारवाले महल में मिलीं, जहां मुख्य कमरों की दीवारों पर निपुण कलाकारों के बनाये भित्तिचित्रों के अवशेष अभी तक मौजूद हैं। यहां, वीरान मरु-स्थल में, अतीत के दृश्य महल की दीवारों पर उतर आये, मानो वे सजीव हो उठी हों – वीणा बजाती एक लड़की, सिर पर टोकरी को जमाती हुई एक अंगूर तोड़नेवाली, काला लबादा पहने एक आदमी, घोड़े, शेर और मनाल। कुशल मूर्त्ति-कारों की बनाई मूर्त्तियों के टुकड़े भी थे।

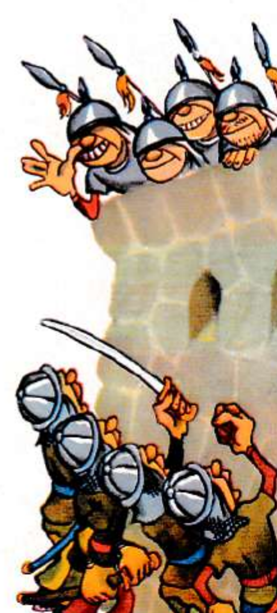
महल में मिली हर चीज़ इसी तथ्य की ओर इंगित करती थी कि इसके मालिक शहर के अन्य निवासियों की अपेक्षा कहीं धनी और उच्च कुलीन थे।

और अन्य मकानों से दर्पपूर्वक ऊंचा निकला हुआ महल स्वयं इस बात का प्रमाण था कि इसके निवासी औरों से बहुत समृद्ध थे।

यह शहर और पूरे देश के शासक ख्वारेज़मशाह का, उसके परिवार और उसके अनेक ग़ुलामों का निवास था।

शहर स्वयं एक राज्य जैसा था। राजा की एक सेना थी, जो ग़ुलामों और ग़रीबों को दबाये रखने, रईसों और अमीरों के अधिकारों की रक्षा करने, सिंचाई की नहरों के निर्माण के अधीक्षण में उसकी सहायता करती थी। एक सिंचाई की नहर बनाने में कई हज़ार ग़ुलाम लगते थे। और केवल एक ही गढ़ी नहीं, बल्कि कितनी ही गढ़ियां और एक नियमित सेना ख्वारेज़्म के खेतों, नहरों और किसानों के क़िलेबंदहीन मकानों की रक्षा करती थी।

इस प्रकार हज़ारों वर्षों में से गुज़रकर विद्वानों ने अपनी आंखों से देख लिया कि तंबू मकान में और मकान क़सबे में कैसे बदल गया, समान लोगों की बिरादरी दास-प्रथात्मक राज्य में कैसे परिणत हो गई।



पुरातत्त्वविदों ने ये विशाल क़िले मध्य एशिया के अलावा और जगहों में भी पाये हैं। उन्हें वे हर ऐसी जगह मिले, जहां लोगों को शत्रु-आक्रमण से अपनी धन-दौलत की रक्षा करनी थी।

क़िले का घेरा

क़िले की दीवारों के ऊपर से दूर-दूर तक देखा जा सकता है। जब दूरी पर धूल का एक बादल दिखाई देता है और धूप में भालों के फल चमचमाते हैं, तो गढ़ी तेज़ी के साथ अपनी रक्षा करने के लिए तैयार हो जाती है। हलवाहा अपने बैलों को फाटकों के भीतर रेलता है, चरवाहे अपने झुंडों को हांक लाते हैं। जब आख़िरी आदमी भी गढ़ी में आ चुका होता है, तो भारी फाटकों को बंद करके आगल लगा दी जाती है। योद्धा लोग दुश्मन का तीरों की बौछार से स्वागत करने के लिए उसके आगमन की प्रतीक्षा में दीवारों और बुर्जों पर अपनी-अपनी जगह संभाल लेते हैं।



हमलावर गढ़ी के पास आ जाते हैं और अपना डेरा गाड़ देते हैं। वे जानते हैं कि गढ़ी आसानी से आत्मसमर्पण न करेगी। इन ऊची दीवारों के ढहते-ढहते कई महीने बीत जायेंगे। हर सुबह गढ़ी के फाटक ज़ोरों से चर्राते हुए खुल जाते हैं। अपने भालों को हिलाता हुआ योद्धओं का एक दल तेज़ी से बाहर निकल आता है। ये लोग खुली लड़ाई में युद्ध के भाग्य का निर्णय करने आये हैं। वे शत्रु के घोड़ों की दुमों से अलंकृत शिरस्त्राणों पर क्रोधांध होकर अपनी तलवारें चलाते हैं। वे लड़ते-लड़ते बेदम हो जाते हैं, पर न अपनी परवाह करते हैं, न दुश्मन की।

एक पक्ष अपने घरों और परिवारों की रक्षा की भावना से उत्प्रेरित हो रहा है। दूसरा इसलिए ग़ुस्से के मारे जला जा रहा है कि जो दौलत इतनी पास है, वह फिर भी इतनी दूर है। जो रक्षक अभी तक जीवित हैं, वे रात के आगमन के साथ वापस लौट जाते हैं। सूर्य निकलने तक के लिए लड़ाई बंद हो जाती है।

दिन बीतते जाते हैं। घिरे हुए लोग हमलावरों के साथ हिम्मत से लड़ रहे हैं, लेकिन भूख उनके दुश्मनों के भालों और तीरों से भी ज़्यादा बुरी है।

जिन धान्यागारों में कभी अनाज था, उनमें अब धूल के अलावा और कुछ नहीं बचता। जब मिट्टी के बड़े-बड़े घड़ों में भरे तेल की अंतिम धारा बूंदों में बदल जाती है, तो गढ़ी में बिलाप शुरू हो जाता है। यह भूखे बच्चों के रोने की आवाज़ है, औरतें चुपके से अपने आंसू पोंछ लेती हैं कि मर्द कहीं नाराज़ न हो जायें।

हर लड़ाई के बाद गढ़ी में रक्षकों की संख्या कम होती जाती है। और आख़िर वह दिन आता है जब लौटते हुए योद्धाओं के ठीक पीछे हमलावर गढ़ी में घुस आते हैं। मजबूत दीवारों के भीतर वे एक पत्थर को भी खड़ा नहीं रहने देते। जहां लोग कभी रहते, काम करते और खाते थे, वहां अब खंडहरों और लाशों के सिवा कुछ नहीं बचता। विजेता जवान और बूढ़े—सभी ज़िंदा लोगों को आज़ाद आदमियों से नये ग़ुलाम बनाने के लिए ले जाते हैं।

ज़िंदा लोगों की कहानी, मुर्दों की ज़बानी

रूस के दक्षिण में जो स्तेपी फैले हुए हैं, उनमें कुछ जगहें ऐसी हैं जहां ऊंचे टीलों की लंबी क़तारें – दृष्टि के छोर तक – जाती दिखाई देती हैं। स्थानीय निवासियों में से किसी को भी याद नहीं कि सपाट स्तेपी में ये टीले कैसे आये या किसने उन्हें बनाया।

अगर तुम सचमुच ज़ोर दो, तो कोई पुराना बाशिंदा तुम्हें बतायेगा कि ये "ममाइयों" या "ममाइयों की बेटियों" की क़ब्रें हैं। लेकिन वह यह नहीं समझा पायेगा कि "ममाई" कौन थे या वे कब रहते थे।

अगर वह बातूनी है, तो वह तुम्हें ख़ुशी-ख़ुशी उस ज़मींदार के बारे में बता देगा जो कभी यहां रहा करता था और जो उसका मालिक था और जिसने छिपे ख़ज़ाने की खोज में नक़शा हाथ में लिये टीले की खुदाई में कितने ही बरस लगाये थे। लेकिन उसे कुछ न मिला। तभी क्रांति हो गई, "ज़मींदार को निकाल बाहर कर दिया गया" और उसे अपनी खोज को बंद करना पड़ा।

लेकिन इन बूढ़ों से टीलों के बारे में पूछना अपने वक़्त को बरबाद करना होगा। अगर तुम उनके बारे में सचमुच जानना चाहते हो, तो तुम्हें उन पुरतत्त्वविदों से पूछना चाहिए, जो यहां खुदाइयां कर रहे हैं।

बूढ़ा आदमी बस उन्हीं बातों को याद रखता है, जो उसके जीवनकाल में हुई हैं, जबकि पुरातत्त्वविद उन बातों के बारे में भी जानता है, जो कई सदी पहले हुई थीं।

ये टीले प्राचीन शव-स्तूप हैं – उन लोगों की क़ब्रें, जो कभी स्तेपी में रहा करते थे।

पुरातत्त्वविदों को इन टीलों के भीतर मानव-कंकाल मिलते हैं। उनके पास विभिन्न वस्तुएं पड़ी होती हैं – मिट्टी के घड़े, चकमक या कांसे के औज़ार, कई घोड़ों की हड्डियां। यह वह सामान है, जो मरनेवाले को अपनी लंबी यात्रा के लिए दिया जाता था।

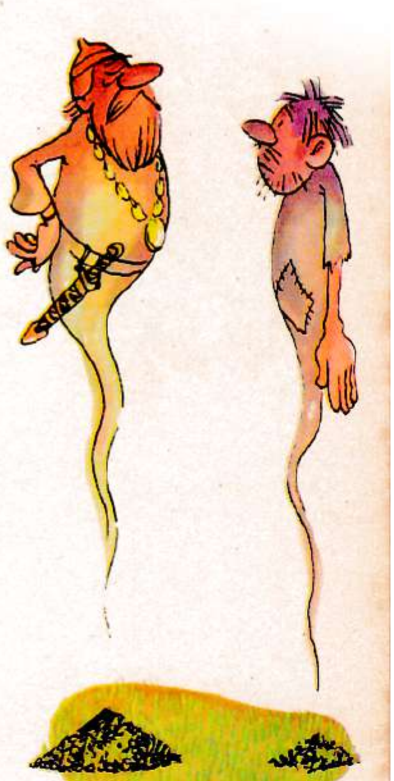
लोगों का विश्वास था कि मौत के बाद आदमी को खाना और काम करना पड़ेगा, कि स्त्री की प्रेतात्मा को उसकी तकली की, जबकि पुरुष की प्रेतात्मा को उसके भाले की ज़रूरत पड़ सकती है।

प्राचीनततम शव-स्तूप एक ही जैसे हैं। कई चीज़ें, जो मृत व्यक्ति की होती थीं, उसी के साथ रख दी जाती थीं, क्योंकि उन प्रारंभिक दिनों में आदमी के पास बहुत कम माल-मता होता था। वह अपना किस चीज़ को कह सकता था? बस, अपनी गर्दन में लटके तावीज़ को या लड़ाई में ले जानेवाले अपने भाले को।

घर में हर चीज़ सामूहिक संपत्ति होती थी, क्योंकि घर का कामकाज सामुदायिक आधार पर पूरे परिवार द्वारा किया जाता था। यही कारण है कि सबसे प्राचीन स्तूपों में अमीर-ग़रीब क़ब्रें नहीं हैं। सभी मृत व्यक्ति समान हैं।

मृतकों में ग़रीब-अमीर बाद में प्रकट हुए।

दोन नदी पर, येलीसावेतोव्स्काया गांव के पास शव-स्तूपों का एक समाधिस्थल



मिला। यहां तीन तरह की क़ब्रें थीं – वे, जिनमें रईसों के, मध्यम वर्ग के लोगों के और ग़रीबों के अवशेष थे।

सबसे बड़े शव-स्तूपों के बीच में एक बड़ा गढ़ा था। यह क़ब्र थी। इसके भीतर रंगीन चित्रोंवाले यूनानी कलश, सोने की जड़ाई के काम के ज़िरहबक्तर और बारीक नक़्क़ाशी की हुई कटारें थीं।

पहले से छोटे शव-स्तूपों में कदाचित ही सोना या चित्रित कलश होते हैं। फिर भी, इन्हें भी ग़रीबों की क़ब्रें नहीं कहा जा सकता। अगर मृतक ग़रीब होता, तो क़ब्र में उसके बराबर रोग़नदार काली तश्तरी या धातु की पट्टियों का निपुणता-पूर्वक बना हुआ ज़िरहबक्तर न होता।

सबसे छोटे शव-स्तूपों की संख्या ही सबसे ज़्यादा है। ये ग़रीबों की क़ब्रें हैं। इनमें पतली खाई में मृतक के दाहिने हाथ के पास बस एक भाला और बायें हाथ के पास एक घड़ा ही है, ताकि अगर वह प्यासा हो, तो पानी पी ले। ग़रीब अपनी क़ब्र में भी ग़रीब ही रहता था।

कहावत है "क़ब्र की तरह ख़ामोश"। लेकिन क्या ये क़ब्रें सचमुच ख़ामोश हैं? क्या ये हमें उस सुदूर काल के बारे में नहीं बतातीं जब पहले अमीर और ग़रीब पैदा हुए थे? मुर्दे हमें ज़िंदा लोगों के बारे में काफ़ी कुछ बता सकते हैं।

अगर हम शव-स्तूपों को छोड़ दें और बस्तियों के खंडहरों में जायें, जो दूर दिखाई दे रहे हैं, तो वहां भी हम पुरानी संपदा और पुरानी निर्धनता के चिह्न खोज लेंगे। पुरातत्त्वविदों ने पता लगाया है कि बस्ती की दो बाड़ें थीं। एक उसे बाहर से घेरे हुए थी, जबकि दूसरी ने बस्ती के केंद्रीय भाग के चारों ओर एक घेरा बना रखा था। यहां उन्हें बढ़िया बर्तनों और कलशों के कई टुकड़े मिले, जिन्हें सुदूर यूनान से लाया गया था। लेकिन दोनों बाड़ों के बीच की जगह में उन्हें जो कुछ टुकड़े मिले, वे मिट्टी के बहुत ही सामान्य बर्तन और घड़े थे। प्रकटतः बस्ती के केंद्रीय भाग के निवासी बाहरी भागों में रहनेवालों की अपेक्षा कहीं धनी थे, क्योंकि उनके पास इतने मूल्यवान कटोरे और प्लेटें ख़रीदने के साधन थे।

जो ऊंचे टीले दूर से ही नज़र आ जाते थे, वे उनकी क़ब्रों पर बने थे।

क़ब्रें हमें उन लोगों के बारे में भी बताती हैं, जिन्हें उनमें दफ़नाया गया था। कभी-कभी वे उन दासों की, जिन्हें अपने मालिक के साथ-साथ दफ़नाने के लिए मार डाला गया था, या क़ब्रों में भी अपने पतियों का अनुगमन करनेवाली पत्नियों की लोमहर्षक कहानियां भी बताती हैं।

ये क़ब्रें धनी कुल के प्रमुख, पिता की निर्मम शक्ति के बारे में किसी भी पुस्तक की अपेक्षा ज़्यादा अच्छी तरह से बताती हैं। जब वह मरता था, तो वह अपनी पत्नियों और दासों को भी अपने साथ क़ब्र में घसीट ले जाता था, क्योंकि उसके मूल्यवान कांसे और सोने के गहनों की तरह ये भी उसी की संपत्ति थे।

एक नई धातु का जन्म

इन क़ब्रों के अंधकार या क़िलों के खंडहरों में जो अमूल्य वस्तुएं सदियों से पड़ी हुई थीं, वे अब संग्रहालयों में प्रदर्शित की जा रही हैं। जो चीज़ें इतनी सदियों से आंख से छिपी हुई थीं, उन्हें प्राचीन अतीत के बारे में ज़्यादा जानने की इच्छा रखनेवाला हर व्यक्ति देख सकता है।

संग्रहालय के दर्शक कांच के हर केस के पास खड़े होकर सोने की मूठोंवाली तलवारों को, अति सुंदर मनकों की मालाओं को, जिनमें से प्रत्येक सोने का एक छोटा-सा बछड़े का सिर है, बटी हुई ज़ंजीरों को, बैलों और बारहसिंघों के आकार के चांदी के बर्तनों को देखते हैं।

इन वस्तुओं में से प्रत्येक के बनाने में कितना श्रम और कितना कौशल लगा होगा!

कांसे की मामूली से मामूली कटार के बनाने में भी कई-कई दिन लग जाते थे।

सबसे पहले तो खनिज का ही खनन करना पड़ता था। वह ज़माना बीत चुका था, जब प्रकृत तांबा पैरों तले पड़ा मिल जाया करता था। अब मनुष्य को खनिज तांबे की खोज में ज़मीन के नीचे गहराई में जाना पड़ता था। अंधेरी सुरंगों के पेंदों में खनिक खनिज को अपनी गैंतियों से तोड़ते और उसे चमड़े के थैलों में रखकर ऊपर सतह पर भेजते थे।

बड़े पत्थरों को तोड़ने के काम को आसान बनाने के लिए वे ज़मीन के नीचे आग जलाया करते थे। जब पत्थर लाल हो जाते, तो वे उन पर ठंडा पानी डाल देते थे। पानी छन-छन करता और भाप के बादलों में बदल जाता और पत्थर तड़क जाते और छोटे-छोटे टुकड़ों में टूट जाते। इस प्रकार आग और पानी खनिक की गैंती की सहायता को आ गये।

तब खान ज्वालामुखी जैसी लगती। नीचे की आग से दमकते भाप के बादल ज्वालामुखी के मुख की तरह खान के मुंह से निकलते। यही कारण है कि ज्वालामुखी को अभी तक रोमन देवता वुल्कन (अग्नि देव) के नाम पर वोल्कैनो कहा जाता है।

खनिज के खनन के बाद धातु को पिघलाया जाता। इसके लिए भी बड़े हुनर की ज़रूरत थी। धातु को सख़्त करने और पिघली धातु को सांचों में ढालने का काम आसान बनाने के लिए उसमें टीन (खनिज रांगा) मिलाया जाता था।

पिघले हुए खनिज और टीन से तांबे और टीन की एक मिश्रधातु बन जाती थी। यह बस तांबा ही न था, यह कांसा था – स्वयं मनुष्य द्वारा उत्पन्न की गयी नये गुणोंवाली एक नई धातु।

पहले एक ऐसे युग में जब मनुष्य के पास जो अकेले भद्दे औज़ार थे, वे चकमक के बने हुए थे, आवश्यक होने पर एक आदमी दूसरे का काम आसानी से कर सकता था। प्रागैतिहासिक मानव जिन थोड़े से हुनरों को जानता था, उन्हें सीखना कठिन नहीं था। हर प्रागैतिहासिक शिकारी क़बीले में सभी आदमी शिकारी होते थे और हर कोई अपना धनुष और बाण बना सकता था।

लेकिन एक शाखा को झुकाकर चाप के आकार में लाना और उसके सिरों को प्रत्यंचा से बांध देना एक बात थी और खनिज के एक टुकड़े को कांसे की चमचमाती हुई तलवार में बदल देना एकदम भिन्न बात थी।



एक शागिर्द को शस्त्रनिर्माता का काम सिखाने में वर्षों लग जाते थे। शस्त्र-निर्माता अपने बेटे को वह सब सिखाता था, जो वह खुद जानता था, क्योंकि यह हुनर कुल की संपत्ति था, उसकी पुश्तैनी दौलत था। कुम्हारों, शस्त्रनिर्माताओं और ठठेरों की कभी पूरी बस्तियां ही बस जाती थीं और उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल जाती थी।

मेरा और तेरा

आरंभ में हर कारीगर अपनी बिरादरी के ही लिए, अपने गांव के ही लिए काम किया करता था।

लेकिन कालांतर में शस्त्रनिर्माता या कुम्हार अधिकाधिक अवसरों पर अपनी बनाई चीज़ों को अनाज, कपड़े या अन्य कारीगरों द्वारा बनाई हुई चीज़ों से बदलने लगे।

प्राचीन क़बीलाई व्यवस्था में दरारें पड़ने लगी थीं, जिस तरह खान में गरम किये हुए पत्थर पर ठंडा पानी डालने से पड़ने लगती हैं।

आरंभ में, गांव के सभी निवासी बराबर थे। अब एक दरार ने अमीर परिवारों को ग़रीब परिवारों से अलग कर दिया, जबकि दूसरी ने कारीगरों को किसानों से अलग कर दिया।

कारीगर जब तक बिरादरी के लिए काम करता था, बिरादरी उसका पेट भरती थी। लोग साथ-साथ काम करते थे और अपनी बनाई और पैदा की हुई सभी चीज़ों को बांट लेते थे।



लेकिन जब कारीगर अपनी देगचियों और तलवारों की दूसरे गांवों में अदला-बदली करने लगा, तो वह विनिमय में पाये अनाज या कपड़े का अपने अनेक संबंधियों के साथ हिस्सा-बांट नहीं करना चाहता था।

आखिर, जब उसने और उसके बेटों ने इस अनाज और इस कपड़े को अर्जित किया था, तो किसने इसमें उनकी सहायता की थी?

इस प्रकार आदमी "मेरे" और "तेरे" में फ़र्क करने लगा, खुद अपने परिवार को अपने संबंधियों के परिवारों से अलग करने लगा।

लोग छोटे-छोटे परिवारों में रहने लगे।

प्राचीन यूनान के मिसेनाएं और तिरीन्स नामक नगरों में पुरातत्त्वविदों ने ऐसी बस्तियों के खंडहरों की खोज की, जो इस विच्छेद की ओर इंगित करते हैं।

सबसे धनी और सबसे शक्तिशाली परिवार मोटी दीवारों के पीछे पहाड़ी की चोटी पर रहता था। और इस परिवार के पास पत्थर की इन दीवारों के पीछे छिपाने के लिए था भी काफ़ी कुछ! यहां क़बीले का सरदार अपने बेटों, उनकी पत्नियों और बच्चों के साथ रहता था।

किसान, जो कहीं ग़रीब थे, नीचे मैदान में अपनी झोंपड़ियों में रहते थे। कारीगरों, शस्त्रनिर्माताओं, कुम्हारों और ठठेरों के घर बाहरी पहाड़ियों पर बिखरे हुए थे।

यहां, इस गांव में, लोग अब एक-दूसरे से बराबरीवालों की तरह बात नहीं

करते थे। जब किसान क़बीले के धनी और शक्तिशाली सरदार को पास से गुजरते देखते, तो वे आदरपूर्वक उसका अभिवादन करते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि देवता स्वयं शक्तिशालियों के संरक्षक होते हैं।

पुरोहित लोग उन्हें ये बातें सिखाते थे, बचपन से ही ये विचार उनके मस्तिष्क में बैठा दिये जाते थे।

कारीगर या खनिक को किसान भी अपनी बराबरी का या अपना भाई नहीं समझता था। क्या यह कालिख लगा आदमी जादूगर नहीं है, जो ज़मीन के नीचे से तांबा निकालता है, जहां से लपटें और भाप ऊपर फूटकर आती हैं? किसान को कैसे मालूम होता कि खान में क्या होता है? खनिक खनिज कैसे पाता है? उसे कोई बताता होगा कि वह कहां है, उस तक पहुंचने में और किसी चमत्कार से उसे तांबे और कांसे में बदलने में मदद करता होगा। ज़रूर ज़मीन के नीचे खनिक के रहस्यमय संरक्षक होंगे, जिनसे सीधे-सादे आदमी का बचकर रहना ही अच्छा!

ये विचार केवल यूनान के लोगों के ही मन में नहीं थे, सभी जगह प्रागैतिहासिक लोगों के यही विचार थे।

ठठेरे-जादूगरों की कहानियां हम तक प्राचीन काल से आई हैं।

हमारी भाषाओं में अभी तक ऐसे शब्द मौजूद हैं, जो हमें बताते हैं कि धन और निर्धनता के बारे में क्या समझा जाता था। प्रागैतिहासिक लोग नहीं समझते थे कि बिरादरियां अमीर और ग़रीब परिवारों में कैसे बंट गईं। उनका ख़याल था कि देवता पहले से मनुष्य के भाग्य का निर्णय कर देते हैं।

मसलन रूसी भाषा में "बोगाती" शब्द का अर्थ है "धनी"। यह "बोग" शब्द से निकला है, जिसका मतलब "देवता" है। यह शब्द रूसी भाषा में तब आया, जब लोग इसी बात पर विश्वास करते थे कि देवता अमीरों की सहायता करते हैं, जबकि "बेदनी" (ग़रीबों) को वे केवल "बेदी" (चिंताएं और दुख) ही देते हैं।

एक नई व्यवस्था का जन्म

मनुष्य द्वारा तय किये गये रास्ते पर एक बार फिर मुड़कर देखना चाहिए।

एक ज़माना था कि जब न अमीर थे और न ग़रीब, न दास थे और न दास-स्वामी। अपनी दयनीय खाइयों में सिमटकर बैठनेवाले सभी प्रागैतिहासिक शिकारी समान निर्धन थे। चकमक और हड्डी के बने उनके हथियार बेहद भद्दे थे। बस, जिस चीज़ ने उन्हें जंगली जानवरों, भूख और ठंड से बचाया, वह यह तथ्य था कि वे सब साथ-साथ रहते थे, साथ-साथ शिकार करते थे, ख़तरे के ख़िलाफ़ अपनी शक्तियों को एकजुट करके अपना साथ-साथ बचाव करते थे और सामूहिक आवास बनाते थे।

एक आदमी अकेला न केवल मैमथ को मारने में अक्षम था, वह एक रीछ को भी नहीं मार सकता था।

एक आदमी अकेला चूल्हे के लिए अपने आवास तक भारी पत्थर को खींचकर



नहीं ला सकता था या ऊपर निकली चट्टान के नीचे पत्थर की सिल्लियों की दीवार नहीं बना सकता था।

लोग तब हर चीज़ को साझे की मानते थे। जब शिकार सफल होता, तो बूढ़े आदमी मांस को काटते और उन सबको बांट देते थे, जिन्होंने जानवर का पीछा करने और उसे मारने में हिस्सा लिया था।

लेकिन हज़ारों वर्ष बीत गये। मकानों ने प्रागैतिहासिक तंबुओं और खाइयों की जगह ले ली, चकमक और हड्डी के औज़ारों की जगह धातु के हथियार आ गये।

लोगों ने जुताई शुरू कर दी – पहले कुदालों से, और फिर लकड़ी के हलों से। उन्होंने घोड़े, गाय और भेड़ को पालतू बना लिया। लोहारखानों से निहाई पर पड़ते हथौड़ों की आवाज़ सुनी जा सकती थी। कुम्हारों के चाक घूमने लगे। श्रम का विभाजन हो रहा था। लोहार के ज़मीन जोतने में कोई तुक न थी, जबकि वह एक कुल्हाड़ी या दरांती के बदले आसानी से अनाज ले सकता था। किसान जब अपने अनाज के बदले अपनी आवश्यकतानुसार ऊन ले सकता था, तो उसे भेड़ों के रेवड़ की देखभाल के पचड़े में पड़ने की ज़रूरत नहीं थी।

और इसलिए, पहले नावें और फिर पालवाले जहाज़ एक गांव से दूसरे गांव को जाने लगे। वे अनाज और ऊन, कुल्हाड़ियों और बर्तनों से लदे होते थे। दूर के "यात्री" प्रायः डाकुओं में बदल जाते थे, क्योंकि डकैती और अदला-बदली साथ-साथ चलते थे।

पहले कोई व्यक्ति अपने रिश्तेदारों से ज़्यादा धनी नहीं हो सकता था। सभी समान निर्धन थे।

लेकिन, समयांतर में, ग़रीबों की झोंपड़ियों के ऊपरवाली पहाड़ियों पर पत्थरों की ऊंची दीवारें उठ खड़ी हुईं, जिन्होंने अमीर और शक्तिशाली परिवारों के मकानों को घेर रखा था। अमीरों के भंडारघरों में इतना सामान था कि तिल धरने को जगह न थी। साल-दर-साल उनकी दौलत बढ़ती और फैलती ही जाती थी।

धनवानों ने बिरादरी में सत्ता को अपने हाथों में ले लिया और ग़रीबों को अपने अधीन कर लिया। ग़रीब आदमी को अधिकाधिक अवसरों पर अपने अमीर पड़ोसी से मदद मांगने के लिए मजबूर होना पड़ता था। यह सहायता बहुत महंगी थी, क्योंकि निर्धन आदमी को सख़्त जाड़े में उधार लिया गया अनाज अमीर आदमी को लौटाने के लिए वर्षों काम करना पड़ता था।

इस प्रकार कुछ लोग औरों को दास बनाने लगे।

लेकिन दास-प्रथा केवल इसी तरीक़े से विकसित नहीं हुई। लड़ाइयों के दौरान लोग पकड़े जाते थे और आज़ाद आदमियों को ग़ुलाम बना लिया जाता था।

किसी ज़माने में हर कोई काम करता था। कालांतर में, कुछ लोगों ने काम करना एकदम बंद कर दिया, जबकि औरों को कोड़ों की मार से काम करने के लिए मजबूर किया जाता था।

किसी ज़माने में शिकार के हथियार और पकड़ा हुआ शिकार भी – सभी चीज़ें – सभी की सामान्य संपत्ति थीं। अब दास-स्वामी बड़ी-बड़ी ज़मीनों, जानवरों के झुंडों और शिल्पगृहों का ही नहीं, बल्कि ग़ुलामों का भी एकमात्र मालिक था।

गुलाम उसकी ज़मीन को जोतते थे, उसके झुंडों की देखभाल करते थे और उसके शिल्पगृहों में काम करते थे।

किसी ज़माने में जो लोग एक ही बिरादरी के होते थे, वे आपस में नहीं लड़ते थे। वे शांति के साथ रहते थे। रूसी भाषा में "मीर" शब्द "शांति" और "बिरादरी" दोनों के लिए है।

लेकिन दास-प्रथा के प्रकट होने के साथ हर गांव, हर क़सबे में लड़ाई शुरू हो गई।

दास-स्वामी गुलामों से घृणा करते थे, गुलामों को दास-स्वामियों से नफ़रत थी।

गुलाम बच भागने के सपने देखा करता था। और उसका मालिक अपने माल को, अपने ज़िंदा और बोलते हुए औज़ार को हर क़ीमत पर रखे रखने पर तुला हुआ था। दास-स्वामित्व पर आधारित राज्य स्वतंत्र मनुष्यों की संपत्ति की रक्षा सशस्त्र बल से करता था। और अगर दास अपने मालिकों के ख़िलाफ़ खड़े होने की कोशिश करते, तो उन्हें बलात आज्ञा मानने पर मजबूर किया जाता था और निर्मम दंड दिया जाता था।

इस प्रकार प्राचीन आदिम सामुदायिक प्रणाली की जगह एक नई, दास-स्वामित्व-वाली प्रणाली ने ले ली।



विज्ञान का प्रारंभ

एक ज़माना था, जब सारा संसार ही मनुष्य के लिए एक रहस्य था। हर चीज़ चकरानेवाली और विचित्र थी।

उसके द्वारा उठाया गया हर क़दम, उसकी बांह की हर हरकत अज्ञात शक्तियों को गतिशील कर देती थी, जो उसे बना या बिगाड़ सकती थीं।

मानव-जाति को इतना कम अनुभव था कि लोगों को यह भी विश्वास नहीं था कि रात के बाद दिन होगा या नहीं या सर्दियों के बाद वसंत आयेगा या नहीं।

प्रागैतिहासिक लोग आकाश में सूर्य के उदित होने में सहायता करने के लिए टोने किया करते थे। मिस्र में फ़िरऔन (बादशाह), जिसे सूर्य का अवतार माना जाता था, यह सुनिश्चित करने के लिए नित्य मंदिर की परिक्रमा करता था कि सूर्य अपना दैनिक चक्र पूरा कर लेगा।

शरद में मिस्री लोग "सूर्य के डंडे" का त्यौहार मनाया करते थे। उनका ख़याल था कि शरद में सूर्य इतना कमज़ोर हो जाता है कि अपनी यात्रा जारी रखने में सहायता देने के लिए उसे डंडे की ज़रूरत पड़ती है।

लेकिन मनुष्य ने काम किया और वह संसार और वस्तुओं के विभिन्न गुणों के बारे में अधिकाधिक जानता गया।

चकमक को घिसने और चिकना करनेवाले प्रागैतिहासिक कारीगर ने इसके गुणों के बारे में स्वयं जानकारी हासिल की। वह जानता था कि पत्थर सख़्त होता है और अगर उस पर दूसरे पत्थर से चोट की जाये, तो वह टूट जायेगा, मगर चोट से वह रोने नहीं लगेगा। ठीक है कि पत्थर भी भांति-भांति के होते हैं। यह पत्थर तोड़े जाते समय नहीं रोया था, लेकिन कोई दूसरा पत्थर रोने लगे, तो? ऐसी बातों पर हमें हंसी आती है। लेकिन प्रागैतिहासिक मानव के लिए वे ज़रा भी हंसने की बातें नहीं थीं।

अभी तक उसे नियमों के अस्तित्व का पता नहीं था। और यही कारण था कि उसके लिए जीवन अपवादों से ओत-प्रोत था। उसने देखा कि कोई दो पत्थर एक जैसे नहीं होते। और इसीलिए वह यह भी समझता था कि उनमें गुण भी अलग-अलग ही होंगे। जब वह चकमक की नई कुदाल बनाता, तो वह उसे बिलकुल पहली कुदाल जैसा ही बनाने की कोशिश करता, ताकि वह भी ज़मीन को उतनी ही अच्छी तरह से तोड़े।



सैकड़ों और हज़ारों साल गुज़र गये। मनुष्य के हाथों से जो भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्थर निकले थे, उनसे उसे पत्थरों के बारे में एक सामान्य समझ होने लगी। चूंकि सभी पत्थर सख़्त थे, इसलिए वह निश्चित रूप से कह सकता था कि पत्थर सख़्त होता है। चूंकि कोई पत्थर कभी नहीं बोला था, इसलिए वह कह सकता था कि पत्थर नहीं बोलते।

इस तरह विज्ञान के पहले कणों, वस्तुओं की संकल्पना, का जन्म हुआ।

जब कारीगर कहता था कि चकमक एक सख़्त पत्थर है, तो उसका आशय

12*

जिस टुकड़े पर वह उस समय काम कर रहा होता था, उसी से नहीं, चकमक के किसी भी टुकड़े से होता था।

अतः उसे प्रकृति के किसी क़ानून की, पृथ्वी पर प्रचलित किसी नियम की जानकारी प्राप्त हो चुकी थी।

"वसंत सर्दियों के बाद आता है"। इसमें सचमुच आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह बिलकुल प्रत्यक्ष है कि सर्दियों के बाद शरद नहीं, वसंत ही आता है। लेकिन ऋतु-परिवर्तन हमारे पूर्वजों द्वारा लंबे पर्यवेक्षण के बाद की गई सबसे पहली वैज्ञानिक खोजों में एक है। लोगों ने वर्षों की गणना करना इस बात को समझने के बाद ही सीखा कि सर्दी और गरमी अकस्मात ही नहीं आ जाती हैं, बल्कि वसंत सदा सर्दियों के बाद आता है और फिर वसंत के बाद गरमी और शरद का आगमन होता है।

मिस्रियों ने यह खोज नील नदी की बाढ़ों को देख-देखकर की। वे एक बाढ़ से अगली बाढ़ तक के समय को पूरा एक वर्ष मानते थे।

पुरोहित लोग नदी पर निगरानी रखते थे, क्योंकि लोगों का ख़याल था कि नदी भी कोई देवता है। आज तक मिस्री मंदिरों की दीवारों पर, जो नील तक पहुचती थीं, छोटी-छोटी लकीरें बनी हुई हैं जिनकी सहायता से पुरोहित लोग पानी के स्तर को नापा करते थे।



जुलाई के महीने में, जब खेतों की ज़मीन गरमी से चिटकने लगती थी, किसान लोग उस समय की बेचैनी के साथ प्रतीक्षा करने लगते थे, जब नील नदी का पीला, गादभरा पानी सिंचाई की नालियों में होकर बहने लगेगा। लेकिन शायद इस साल वह आयेगा ही नहीं? अगर देवता लोगों से नाराज़ हो गये हों और वे उनके खेतों में पानी न भेजें, तो?

सभी तरफ़ से मंदिरों में भेंटें और चढ़ावे लाये जाते। किसान अपने अनाज के आख़िरी मुट्ठे लेकर पुजारियों के पास आते और उनसे अनुनय करते कि ज़रा ज़ोर से देवताओं की स्तुति करें।

हर दिन उषा काल में पुजारी यह देखने के लिए नदी पर जाते कि पानी ने चढ़ना शुरू किया या नहीं।

हर शाम को वे मंदिर की चौरस छत पर चढ़कर घुटने टेककर तारों को निहारते। तारों भरा आकाश उनका पंचांग था।

और फिर एक दिन पुरोहित लोग मंदिर में गंभीरतापूर्वक घोषणा करते: "देवताओं ने तुम पर कृपा की है—आज से तीन रात बाद तुम्हारे खेतों में पानी आ जायेगा।"

धीरे-धीरे, क़दम-ब-क़दम, लोगों ने उस विचित्र दुनिया को जानना शुरू किया, जिसमें वे रहते थे—परियों की कहानियों और जादू-टोने की दुनिया को नहीं, बल्कि ज्ञान की दुनिया को। मंदिरों की छतें पहली ज्योतिष वेधशालाएं थीं। कुम्हारों और ठठेरों के ठीहे पहली प्रयोगशालाएं थीं, जिनमें पहले प्रयोग किये गये थे।

लोग प्रेक्षण करना, गणना करना और निष्कर्ष निकालना सीख रहे थे।

इस प्राचीन विज्ञान की आधुनिक विज्ञान से बहुत कम समानता थी। यह अभी तक उस जादू-टोने से बहुत मिलता था, जिसका यह एक अंग भी था। लोग तारों का केवल प्रेक्षण ही नहीं करते थे, वे उनसे भाग्यफल भी बताते थे। आकाश और धरती का अध्ययन करते समय वे आकाश और धरती के देवताओं की भी आराधना करते थे। फिर भी, अज्ञान का घना कुहरा छंटने लगा था।

देवताओं ने देवलोक का रास्ता पकड़ा

जादू-टोने की दुनिया के कुहासे में से वस्तुओं की वास्तविक रूपरेखाएं धीरे-धीरे मनुष्य के आगे उभरने लगीं।

एक ज़माना था, जब प्रागैतिहासिक लोगों को विश्वास था कि हर कहीं – हर पत्थर में, हर पेड़ में, हर जीव में – आत्माओं का वास है।

लेकिन समय के साथ यह विश्वास ग़ायब हो गया।

मनुष्य ने यह सोचना बंद कर दिया कि हर जानवर में कोई आत्मा रहती है। उसकी कल्पना में अब वन-देवता ने, जो घने जंगल में रहता था, सभी जानवरों की आत्माओं की जगह ले ली।

किसान ने यह सोचना बंद कर दिया कि गेहूं के हर पूले में आत्माओं का वास है। उसके दिमाग़ में अनाज में रहनेवाली सभी आत्माएं उर्वरता की देवी में एकाकार हो गईं, जो हर चीज़ को उगाती थी।

इन देवी-देवताओं ने पुरानी आत्माओं की जगह ले ली। अब वे सामान्य मर्त्य-धर्मा मनुष्यों के साथ नहीं रहते थे। ज्ञान उनको मनुष्य के निवास से अधिकाधिक दूर धकेलता गया। इसके कारण उन्हें ऐसी जगहें तलाश करनी पड़ीं, जहां मनुष्य ने कभी पैर नहीं धरा था – अंधेरे और पवित्र वन या पेड़ों से भरे पर्वत शिखर।

लेकिन कुछ समय के बाद मनुष्य इन जगहों में भी पहुंच गया। ज्ञान ने अंधेरे जंगलों को आलोकित कर दिया, पर्वतों की ढालों पर छाये कुहरे को इसने छिन्न-भिन्न कर दिया।

और इसलिए देवताओं को एक बार फिर उनके नये निवासस्थान से निकाल दिया गया। अब वे आकाश पर जा चढ़े, समुद्रों के पेंदे पर चले गये और पृथ्वी की सतह के नीचे अंधकारमय पाताल में जा विलीन हो गये।

देवताओं का पृथ्वी पर अवतरण अधिकाधिक विरल होता गया। उस समय के बारे में आख्यायिकाएं पीढ़ी-से-पीढ़ी को मिलती रहीं जब वे किसी युद्ध या क़िले की घेरेबंदी में भाग लेने के लिए स्वर्ग से पृथ्वी पर आते रहते थे।

तलवारों और भालों से लैस होकर देवता मर्त्यधर्मा मनुष्यों के झगड़ों में भाग लिया करते थे। निर्णायक घड़ी में वे नेता को घने बादल की आड़ में कर देते थे और शत्रु को वज्राघात से मार दिया करते थे। लेकिन – कथाकार कहते हैं – यह सब बहुत-बहुत पहले हुआ करता था।

इस तरह मानविक अनुभव दीप्ति के घेरे को लगातार प्रसारित करता, देवताओं



को पास से दूर, वर्तमान से भूतकाल और इहलोक से "परलोक" की तरफ़ हटाता अधिकाधिक आगे बढ़ता गया।

देवताओं के साथ कोई भी व्यवहार-संचार करना कठिन हो गया। पहले हर कोई "चमत्कार" और जादू-टोने के अनुष्ठान कर सकता था। अनुष्ठान स्वयं कहीं सरल होते थे। मिसाल के तौर पर, वर्षा लाने के लिए आदमी का मुंह में पानी भरकर एक विशेष नृत्य करते हुए उसे चारों तरफ़ फुहारकर छोड़ देना ही काफ़ी था। बादलों को बिखेरने के लिए आदमी छत पर चढ़ जाता और पवन के अनुकरण में फूंक मारता।

अब हम जानते हैं कि न हम इस तरह पानी बरसा सकते हैं और न फूंक मारकर बादलों को बिखरा सकते हैं। और आदमी भी इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि देवता उसकी प्रार्थनाओं को आसानी से नहीं सुनेंगे। तभी पुजारी ने सामान्य जनों और देवताओं के बीच अपनी जगह ले ली, क्योंकि वह सभी दुर्बोध संस्कारों और विधि-विधानों को, देवताओं की सभी गुप्त कथाओं को जानता था।

पहले समय में सयाना शिकार नृत्य का मात्र निदेशक ही हुआ करता था। अपने कुल के सदस्यों के मुक़ाबले वह आत्माओं के ज्यादा पास नहीं होता था।

लेकिन अब पुरोहित एक बिलकुल ही अलग हस्ती बन गया। वह देवताओं के निकट एक पवित्र वाटिका में रहा करता था। सितारों की पोथी में से देवताओं की इच्छा को पढ़ने के लिए वह मंदिर की छत पर जाता था। इस पोथी को केवल वही पढ़ सकता था। लड़ाई के पहले वह बलि के जीव की अंतड़ियों को ही देखकर उसका परिणाम – जीत या हार – बता सकता था। अंत में पुरोहित मनुष्यों और देवताओं के बिचौलिये बन गये।

लेकिन साधारण मनुष्यों से देवता दूर और दूर ही जाते रहे। वह समय बीत चुका था जब देवता सभी मनुष्यों को बराबर समझते थे। अब लोग ख़ुद अपनी और अपने पास-पड़ोस की तरफ़ देखते थे और अनुभव करते थे कि समानता की पुरानी अवस्था अब बाक़ी नहीं रही है। "होना भी ऐसा ही चाहिए," पुजारियों ने कहा। "मनुष्य को हर बात देवताओं पर ही छोड़ देनी चाहिए। जिस तरह राजा और सरदार मनुष्यों पर राज करते हैं, उसी प्रकार देवता दुनिया पर शासन करते हैं।" लेकिन पुजारियों के उपदेशों को विनम्रतापूर्वक सुनने से सभी लोगों को संतोष नहीं होता था। ऐसे भी लोग थे, जो देवताओं की इच्छा के आगे झुकने को तैयार न थे।

आगे चलकर एक यूनानी कवि को ज़ोरों से यह पूछना था कि जब धर्मात्मा लोग कष्ट सहते हैं और पापी मज़े करते हैं, जब बच्चे को अपने पिता के पापों का दंड दिया जाता है, तो ज़ियस (देवराज) का न्याय कहां चला जाता है? जो अकेली बात रह गई है, वह यह कि आशा की उपासना की जाये – वह देवी, जो अभी तक लोगों के साथ ही रह रही है। अन्य सभी देवता ओलिंपस (देवलोक) चले गये हैं।

क्षितिज विस्तीर्ण हुआ

प्रागैतिहासिक मानव सत्य और कथा, ज्ञान और अंधविश्वास के भेद को नहीं जानता था।

दूध अगर रखा रहे, तो जिस तरह उससे मलाई को अलग होने में समय लगता है, उसी तरह ज्ञान को अंधविश्वास से अलग होने में हज़ारों वर्ष लग गये।

हम तक जो गीत और महाकाव्य आये हैं, उनमें देवताओं और वीरों के क़िस्सों से विभिन्न क़बीलों और सरदारों के इतिहास को, गढ़े हुए भूगोल से सही भौगोलिक ज्ञान को और प्राचीन आख्यानों से तारों के बारे में पहली जानकारी को अलग करना कठिन है।

यूनानी हमारे लिए 'इलियड' और 'ओडिस्सी' – दो महाकाव्य छोड़ गये हैं, जिनमें उनके प्राचीनतम गीत और आख्यान आ जाते हैं। ये यूनानी सेनाओं द्वारा विजित ट्रॉय के घेरे और पतन की और ओडिस्सिअस नामक यूनानी सरदार के अपने जन्मस्थान इथाका लौटकर आने तक विदेशों और समुद्रों में भटकने की आख्यायिकाएं हैं। ट्रॉय के परकोटे पर देवता मनुष्यों के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर लड़े थे – कुछ हमलावरों की तरफ़ थे, तो कुछ रक्षकों के साथ थे। यदि देवताओं का कोई चहेता सांघातिक आपदा में होता, तो वे उसे उठाकर सुरक्षित स्थान पर ले जाते थे। ओलिंपस पर्वत पर भोज के समय वे इस बात पर विचार करते थे कि लड़ाई को जारी रखा जाये या युद्धरत पक्षों में मेल करा दिया जाये।

इन आख्यानों में सत्य कल्पना के साथ घुला-मिला हुआ है। लेकिन कल्पना का अंत और सत्य का प्रारंभ कहां होता है? क्या यूनानियों ने ट्रॉय पर कभी घेरा डाला भी था? और क्या ट्रॉय का शहर असल में था भी?

विद्वान लोग वर्षों तक इसी पर बहस करते रहे जब तक कि अंत में पुरातत्त्वविद की कुदाल ने उनके संदेहों को दूर नहीं कर दिया। 'इलियड' में दिये संकेतों पर चलते हुए पुरातत्त्वविदों ने एशिया-ए-कोचक की तरफ़ कूच किया और ट्रॉय के खंडहरों को वहीं जाकर खोद निकाला, जहां उनके होने का विश्वास किया जाता था।

सत्य 'ओडिस्सी' में भी था। इसे भूगोलवेत्ताओं ने प्रमाणित किया, जिन्होंने ओडिस्सीअस की यात्राओं का एक नक़्शे पर अनुसरण किया। अगर तुम अपना नक़्शा खोलो, तो तुम स्वप्नविलासियों के देश, इओलुस के द्वीप और सील्ला और कारीब्डीस तक को पा लोगे, जो अपने बीच से गुज़रते हुए ओडिस्सीअस के जहाज़ को नष्ट करने के लिए तैयार थे।

स्वप्नविलासियों का देश असल में अफ़्रीका में त्रिपोली का तट है, इओलुस के द्वीप वे हैं, जिन्हें हम लिपारी द्वीपसमूह के रूप में जानते हैं, जबकि सील्ला और कारीबडीस सिसिली और इटली के बीच का जलडमरूमध्य है।

'ओडिस्सी' में सचाई थी, लेकिन अगर तुम प्राचीन विश्व के भूगोल का 'ओडिस्सी' से ही अध्ययन करने की सोच थी, तो तुम भारी ग़लती करोगे।

कारनामों और यात्राओं की इस सबसे पहली पुस्तक में भूगोल को अद्‌भुत

परिधान पहना दिया गया है। पर्वतों को दैत्यों में बदल दिया गया है, द्वीपों पर रहनेवाले असभ्य लोग विराट एकनेत्री नरभक्षी बन गये हैं।

उस जमाने में लोग अपने एकदम पास के परिवेश से ही परिचित हुआ करते थे। ठीक है कि व्यापारी लोग जहाज़ों में बैठकर यात्राएं किया करते थे। लेकिन वे भी कभी तट से ज़्यादा दूर जाने की हिम्मत नहीं करते थे, क्योंकि खुले समुद्र में जाना बड़ा भयावह होता था। उन दिनों में न नक़्शे थे और न दिक्सूचक यंत्र; मल्लाह अटकल से सूर्य और तारों की सहायता से अपना रास्ता पहचानते थे। तट पर खड़ी ऊंची चट्टान या कोई ऊंचा पेड़ उनके मार्गदर्शक थे।

समुद्र में हज़ारों ही खतरे छिपे पड़े थे। हलकी सी हवा के चलने पर भी चौड़े, सपाट पेंदेवाले जहाज़ लहरों पर डगमगाने लगते थे। अनम्य पालों पर पार पाना कठिन था। हवा मनुष्य की आज्ञा का पालन नहीं करना चाहती थी और उसके जहाज़ों के साथ खेलती थी, मानो वह लहरों पर पड़ी लकड़ी की खपची हो।



लेकिन जहाज़ आखिर तट पर पहुंच ही जाता था। थके हुए जहाज़ी उसे तट तक खींच लाते थे। अब यहां, सूखी ज़मीन पर, वे आखिर आराम कर सकते थे। पर उन्हें चैन नहीं था। जिस अनजान देश में वे आये थे, वह समुद्र से भी अधिक डरावना था। जहाज़ियों को लगातार अपने पर नरभक्षियों के टूट पड़ने का अंदेशा बना रहता, क्योंकि दूसरे मल्लाहों से उन्होंने जंगली लोगों के क़िस्से सुने थे। उनकी भयग्रस्त आंखों में हर अनजान नया जानवर एक भयानक दैत्य बन जाता था। उनकी देश के भीतर जाने की हिम्मत न होती भी।

तिस पर भी, हर नई यात्रा मनुष्य के क्षितिज को विस्तृत करती थी। अज्ञात की सीमाएं, कहानी-क़िस्सों की सीमाएं अधिकाधिक पीछे की तरफ़ धकेली जाती थीं। सबसे साहसी समुद्रयात्री समुद्र के द्वार तक चले जाते थे, जिसके आगे महासागर आरंभ होता था। इस महासागर को वे विश्व जैसा असीम समझते थे। जब वे अपने घरों को लौटते, तो वे अपने मित्रों से कहते कि वे दुनिया के छोर तक हो आये हैं और यह कि ज़मीन सभी तरफ़ एक महासागर से घिरी हुई है।

हज़ारों वर्षों के बाद लोग यूरोप से भारत और चीन से यूरोप की यात्रा करेंगे। समुद्रयात्री महासागर को पार करेंगे और दूसरे छोर पर ज़मीन पायेंगे – ज़मीन, जिस पर मनुष्य रहते हैं।

फिर भी, पृथ्वी के विज्ञान में कई और युगों तक क़िस्से-कहानियों की छापें जमी रहीं।

क्रिस्टोफ़र कोलंबस, जिसने अमरीका की खोज की, सचमुच विश्वास करता था कि पृथ्वी पर कहीं कोई बहुत ऊंचा पहाड़ है और उसी पर स्वर्ग स्थित है। उसने स्पेन की महारानी को इस आशय का पत्र लिखा कि वह स्वर्ग के बहुत निकट पहुंचने और उसके परिवेश की खोज करने की आशा करता है।

अभी पंद्रहवीं शताब्दी तक रूसी लोगों को पक्का विश्वास था कि उराल पर्वत के उस पार ऐसे लोग रहते हैं, जो रीछों की ही तरह सर्दियों में शीतनिद्रा लेते हैं। एक प्राचीन पांडुलिपि हमारे समय तक बच रही है। इसका शीर्षक है 'पूर्वी देश के अज्ञात लोग'। यह पांडुलिपि बड़े विस्तार के साथ ऐसे आदमियों का, जिनके मुंह उनकी खोपड़ी के ऊपर थे और बिना सिर के ऐसे आदमियों का वर्णन करती है, जिनकी आंखें उनकी छातियों पर थीं।

यह सब हमें बड़ा मज़ेदार लगता है। लेकिन आज भी वैज्ञानिक गल्पकथाओं के लेखक अपनी पुस्तकों को बाह्य अंतरिक्ष की अज्ञात दुनियाओं के भयानक दैत्यों से बसवाते हैं।

पृथ्वी की सतह का विस्तृत अध्ययन कर लिया गया है: यही कारण है कि ये लेखक अपने पात्रों को धरती के केंद्र की ओर, और मंगल गृह या चंद्रमा पर भेजते हैं।



पहले गायक

हर सदी के बीतने के साथ जीवन के बारे में कम रहस्य, कम विचित्र और अज्ञात तथ्य बाक़ी बचते गये। दस्तकारों का अपने पर अधिकाधिक विश्वास बैठने लगा और देवताओं की प्रार्थना में वे कम और कम लगते गये। जिस प्रकार सूर्य के निकलने पर घाटी से कुहरा उठ जाता है, उसी प्रकार दैनिक जीवन से जादू-टोने के संस्कार भी उठते जा रहे थे।

जादू-टोने की जड़ विभिन्न रिवाजों, सांस्कारिक खेलों, नृत्यों और गानों में ही सबसे गहरी थी। लेकिन मनुष्य के प्रबुद्ध मस्तिष्क ने जल्दी ही उसे यहां से भी – कहो कि उसी के घर से – भगाना शुरू कर दिया।



जादू-टोने के संस्कारों, नृत्यों और गानों से जादू तेज़ी के साथ निकलता जा रहा था और बस गाने और नाच ही बाक़ी रह रहे थे।

जब यूनानी लोग डायोनीसुस (बाकस – सुरादेव) का त्यौहार मनाया करते थे, जो उन्हें फल देता था, तो आरंभ में ये पवित्र, जादू-टोने के खेल हुआ करते थे। गायकवृंद लोगों को अनाज, फल और शराब देने के लिए प्रकृति को अपनी शीतकालीन गहन निद्रा से फिर जागने में सहायता करने के लिए डायोनीसुस की मृत्यु और पुनर्जन्म के गीत गाता था।

इस उत्सव के दौरान मूकाभिनेता जानवरों के मुखौटे लगाये होते थे और ग्राम-वेदी के इर्द-गिर्द नाचते थे।

पहला गायक डायोनीसुस की यंत्रणाओं का गीत गाता था और गायकवृंद टेक में सम्मिलित होकर उसका उत्तर देता था।

जादू का यह प्राचीन नाच बहुत कुछ नाटक जैसा है। मूकाभिनेताओं में और पहले गायक में हम भावी अभिनेताओं को देख सकते हैं। पहले गायक ने न केवल देवता की यंत्रणाओं का ही वर्णन किया, बल्कि उसने उन्हें वस्तुतः चित्रित भी किया। उसने अपनी छाती पीटी और याचना में आसमान की तरफ़ अपने हाथ फैलाये।

13-633

जब देवता का पुनर्जन्म हो गया, तो मूकाभिनेता उल्लसित हो गये, उन्होंने एक-दूसरे को चिढ़ाया और आपस में हंसी-मज़ाक किया।

कई सदियों के बाद इस जादुई प्रदर्शन से सारा जादू जाता रहा।

लेकिन प्रदर्शन स्वयं शेष रहा। पहले ही की तरह, लोग अभिनय करते, गाते और नाचते थे। लेकिन अब वे देवताओं की यंत्रणाओं को चित्रित नहीं करते थे, वे मानवों की पीड़ाओं को व्यक्त करते थे। और उन्हें अभिनय करते देख लोग हंसते और रोते थे, साहस और शूरतापूर्ण कारनामों की प्रशंसा करते थे और मूर्खता और अनाड़ीपन का उपहास करते थे।

इस प्रकार प्राचीन गायकवृंद का पहला गायक त्रासदी का अभिनेता बन गया, जबकि हंसोड़ मूकाभिनेता विदूषक, मसखरे और भांड बन गये।



लेकिन पहला गायक केवल पहला अभिनेता ही नहीं था, वह प्रमुख गायक भी था। आरंभ में वह गायकवृंद के साथ गाता था। इसके बाद वह अकेले गाता था।

कालांतर में गाने को संस्कार से अलग कर दिया गया। गायक धार्मिक खेलों के दौरान और सामंत और उसके सरदारों के उत्सव-भोज में गाया करता था। गायक अपनी वीणा के तारों को झनझनाता हुआ गाता था। और प्राचीन परिपाटी के अनुसार शब्द, संगीत और अभिनय को मिलाते हुए कभी-कभी नाचता तक था। वह पहला गायक और गायकवृंद, दोनों बन गया। वह गीत भी गाता, और टेक भी।

लेकिन वह गाता किसके बारे में था? वह देवताओं और वीरों के बारे में, अपने ही क़बीले के सरदार के बारे में, जिसके सामने से वीर-से-वीर मनुष्य भी भाग जाता था, गाता था। वह लड़ाई में खेत रहे योद्धाओं के बारे में, जिन भाइयों का प्रतिशोध लिया जाना था, उनके बारे में गाता था।

यह गाना न प्रार्थना था, न जादू। यह वीर कार्यों की कहानी थी, जो वस्तुतः और भी वीर कार्यों का आह्वान करती थी।

और प्यार और वसंत और दुख के गीत! ये कहां से आये? ये भी किसी समय उन संस्कारों के अंग थे, जो विवाह और मृत्यु के अवसरों पर, कटाई के समय, अंगूरों की चुनाई के समय किये जाते थे। तब दो गायकवृंद बारी-बारी से लघु गीत गाते थे।

चरखा कातती नवयुवती इन गीतों को याद करती। बच्चे को सुलाने के लिए झुलाती मां इन गीतों को गाती।

आज वसंत के गीतों का वसंतकाल में ही या प्रेम के गीतों का विवाहों में ही गाया जाना आवश्यक नहीं है।

वीरों के बारे में और प्रेम के पहले गीतों की रचना किसने की?

इसका उत्तर हम नहीं जानते, जैसे हम यह भी नहीं जानते कि पहली तलवार या पहले चरखे को वस्तुतः किसने बनाया। किसी एक आदमी ने नहीं, बल्कि सैकड़ों ही पीढ़ियों ने हमारे औज़ारों, गीतों और शब्दों को जन्म दिया है। गायक ने अपने

गीत की रचना नहीं की, उसने जो पहले सुना था, उसे बस औरों को दे दिया। लेकिन एक गायक से दूसरे गायक तक जाते-जाते गीत बड़े होते और बदलते चले गये। जिस प्रकार नदी कितने ही नालों से पोषित होती है, उसी प्रकार महान महाकाव्य भी इन प्रारंभिक गीतों से ही विकसित हुए।

हम कहते हैं कि 'इलियड' होमर की रचना है। लेकिन होमर कौन था? उसके बारे में केवल आख्यानों से ही पता चलता है। और होमर का व्यक्तित्व स्वयं उतना ही काल्पनिक है, जितने कि वे वीर, जिनकी गौरव गाथा उसने गाई है।

जब वीर नायकों के बारे में पहले गीत बनाये गये, तब गायक का अभी तक अपने कुल और क़बीले से घनिष्ठ संबंध था। तब लोग हर काम मिलकर किया करते थे और गीतों की रचना भी पीढ़ियों के सामान्य प्रयासों से ही हुई थी।

गायक पुरानी पीढ़ियों से प्राप्त गीत में परिवर्तन या सुधार करते समय भी अपने को उस गीत का लेखक या रचयिता नहीं मानता था।

लेकिन कालांतर में आदमी "मेरा" को "तेरा" से अलग करने लगा। कुल टूट गये, पुरानी एकता जाती रही। दस्तकार अब अपने लिए काम करता था, वह अब यह अनुभव नहीं करता था कि वह कुल की इच्छा की पूर्त्ति करनेवाला मात्र एक औज़ार है।

कई सदियों के बाद मेगारा के कवि थिओग्नीस ने लिखा:

अपनी कला के फल, इन कविताओं पर
मैंने अपनी मुहर लगा दी है।
कोई इन्हें चुरायेगा या बदलेगा नहीं।
हर कोई यही कहेगा:
"ये रहीं मेगारा के थिओग्नीस की कविताएं!"

सामुदायिक व्यवस्था का कोई आदमी ऐसा कभी नहीं कह सकता था।

धीरे-धीरे मनुष्य "मैं" शब्द का अधिक उपयोग करने लगा। वह समय कभी का बीत चुका था, जब वह यह विश्वास करता था कि काम करनेवाला वह नहीं है, बल्कि उसके ज़रिये कोई और काम करता था। यहां गायक यह कहते हुए कि "गीत का वरदान" उसे देवताओं से मिला है, अभी तक कला की उन प्रेरक देवियों की ही चर्चा करता है, जिन्होंने उसे गीत की प्रेरणा दी, किंतु वह अपने बारे में भी नहीं भूलता।

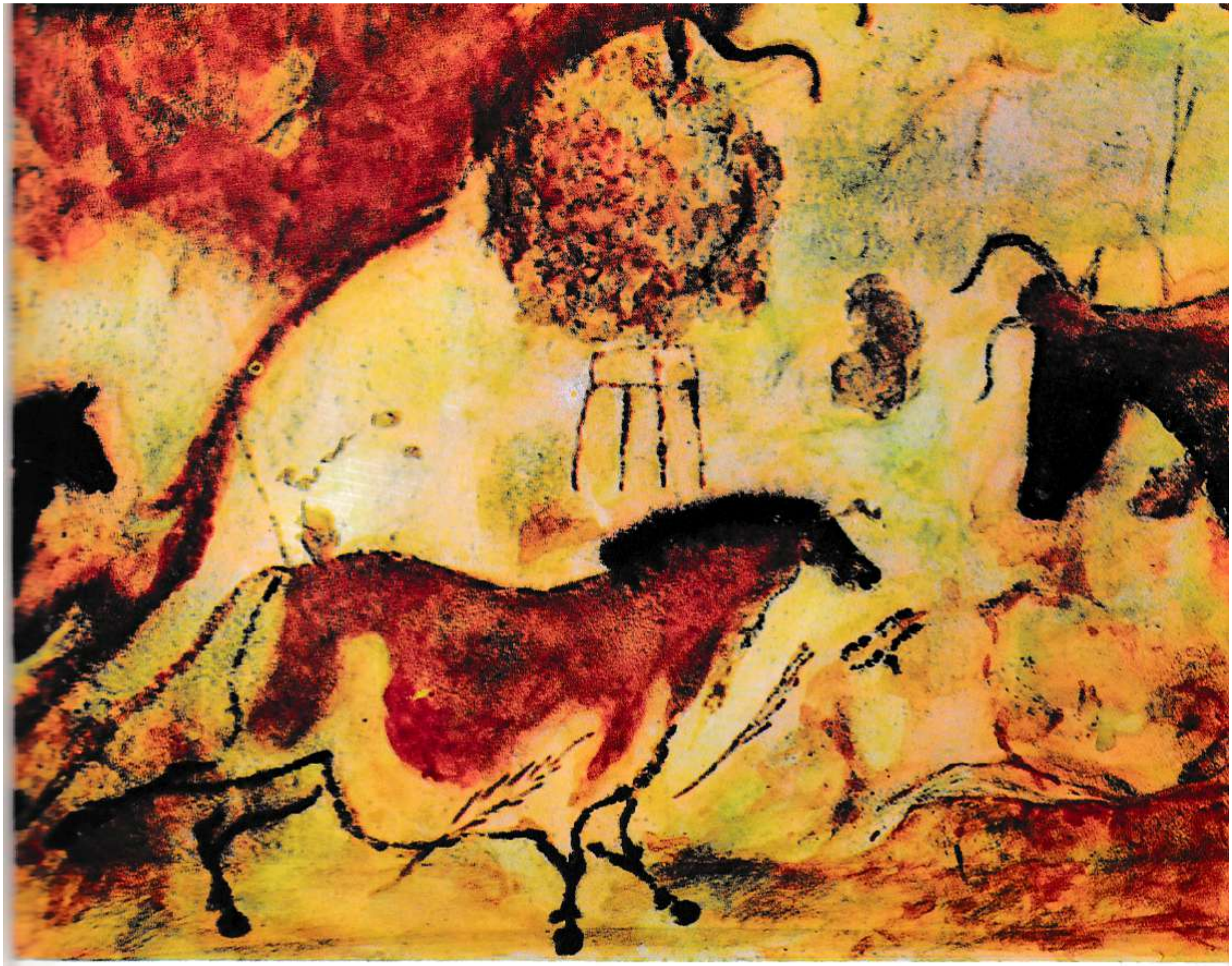
देवताओं ने मुझे शब्द दिया है
मैं भुलाई नहीं जाऊंगी।

प्राचीन यूनानी कवयित्री साफ़ो की इस पंक्ति में पुराना नये के साथ मिल

गया है। उसका विश्वास था कि शब्दों का यह वर उसे देवियों ने दिया है, न कि उसने स्वयं इसे अपनी भाषा में खोजा है, जैसे कि खनिक पहाड़ों में खनिज की खोज करता है। किंतु इसी पंक्ति में हम रचयिता के गर्व को, एक कवि के गर्व को भी पाते हैं, जिसे मालूम है कि उसका नाम भुलाया नहीं जायेगा।

इस तरह मनुष्य बड़ा हो रहा है। और वह जितना ही ऊपर चढ़ता जाता है, उसका क्षितिज भी उतना ही विस्तृत होता जाता है।

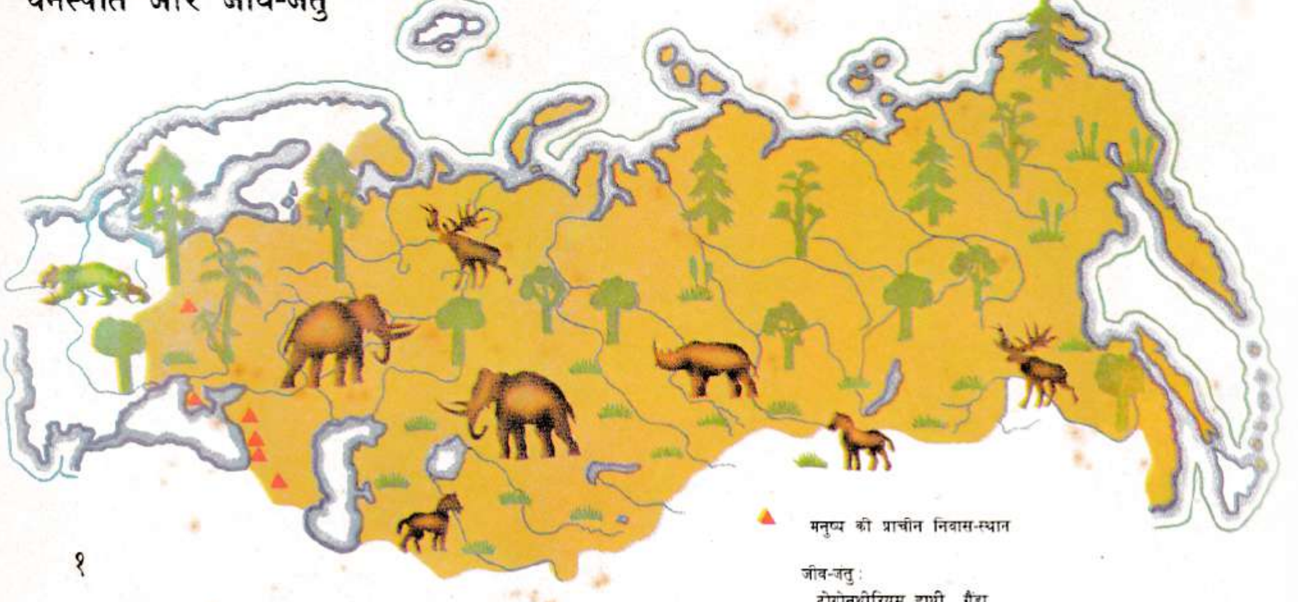




हमारा संग्रहालय

प्रिय पाठको, तुम लोगों ने यह पुस्तक पढ़ी और शायद इसमें सम्मिलित अनोखे चित्रों को देखकर तुम्हें हंसी भी आई होगी। यह पुस्तक बड़े प्रतिभाशाली लेखकों ने लिखी है, जो मानवजाति के इतिहास को बड़ी ही रोचक और लोकप्रिय शैली में प्रस्तुत कर पाये। सब विज्ञानों की तरह इतिहास भी प्रमाणित तथ्यों पर आधारित है। इन तथ्यों में सम्मिलित हैं भौतिक संस्कृति की वस्तुएं जो विश्व के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। अपनी किताब में भी हमने एक छोटे-से संग्रहालय की आयोजना की है। हम आपको इस संग्रहालय को देखने के लिए निमंत्रित करते हैं।

चतुर्थ युग के आरंभ की वनस्पति और जीव-जंतु



१

यूरोप के प्राचीन लोग अपेक्षाकृत गरम जलवायु की परिस्थितियों में रहते थे





२

१. एक मानचित्र : "चतुर्थ युग के आरंभ की वनस्पति और जीव-जंतु (सोवियत संघ का क्षेत्र)"।

२. स्त्री की लघु प्रतिमा। पक्षी की आकृति। पत्थर। पुरापाषाण युग। (प्राचीन प्रस्तर युग)। १ लाख से ४० हजार वर्ष पूर्व तक।

३. एक मानचित्र : "हिम-युग की वनस्पति और जीव-जंतु (सोवियत संघ का क्षेत्र)"।

४. एक मानचित्र : (सोवियत संघ का यूरोपीय भाग) : "हिम युग के बाद के जीव-जंतु और मध्यपाषाण युग के मुख्य मानव के निवास-स्थान"।

५. प्राणियों की आकृतियां। पत्थर। पुरापाषाण युग की प्रारंभिक, सहज यथार्थ कलाकृतियां।

हिम युग की वनस्पति और जीव-जंतु



३
जीव-जंतु :
मैमथ, बालदार खालवाला गैंडा, गुफा में रहनेवाला रीछ, बाइसन, उत्तरी हिरन, जंगली घोड़ा

हिम युग बाद के जीव-जंतु और मध्यपाषाण युग के मुख्य मानव के निवास-स्थान



४

मानव के निवास-स्थान

१. कुंदा
२. वेरेत्ये
३. त्सन्यातिनो
४. वसील्येव्स्काया
५. वेलिन बोर
६. ग्रेम्यान्येये
७. पोत्रोव्शिना
८. पेत्रोव्स्कोये
९. ग्रेबेन्निकी
१०. जुल्ल इल्ल-कोबा
११. निज्नेआदीशेव्स्काया
१२. कामा-जुलानोव्स्काया
१३. शिगीर्स्क पीट की दलदल





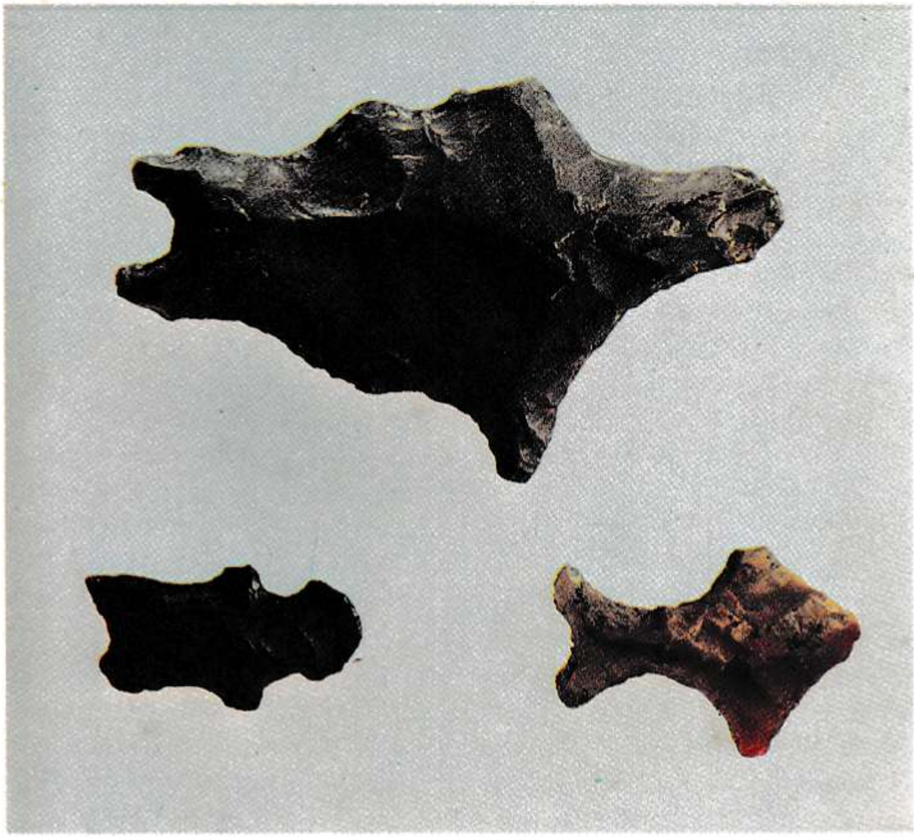


५

६. पुरापाषण युग की पत्थर की आकृतियां।

७. सजावट का सामान। हड्डी। पुरापाषाण युग।

८. रगड़ से आग पैदा करना। पाषाण युग।



६



७

९. आग पैदा करने के लिए छोटी तख्ती।

१०. पत्थर की कुल्हाड़ी और हथौड़ी।

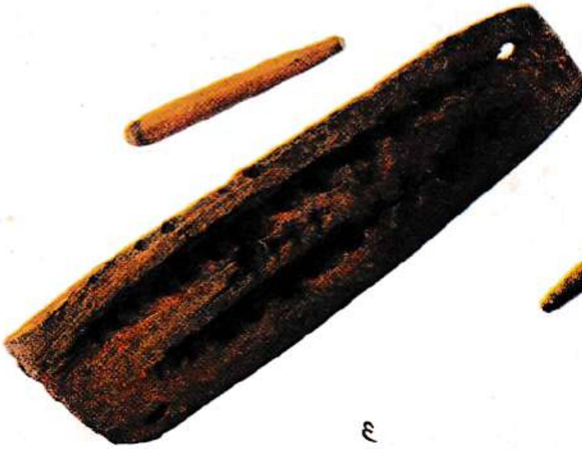
११. पत्थर को काटकर गढ़ी गयी आकृतियां तथा सजावटी चीज़ें। सोवियत संघ के एशियाई भाग में मानव के निवास-स्थान। उत्तर पुरापाषाण युग। ३५,००० से १०,००० वर्ष पूर्व तक।



८



१०



९



११



१२



१३



१४



१६



१५

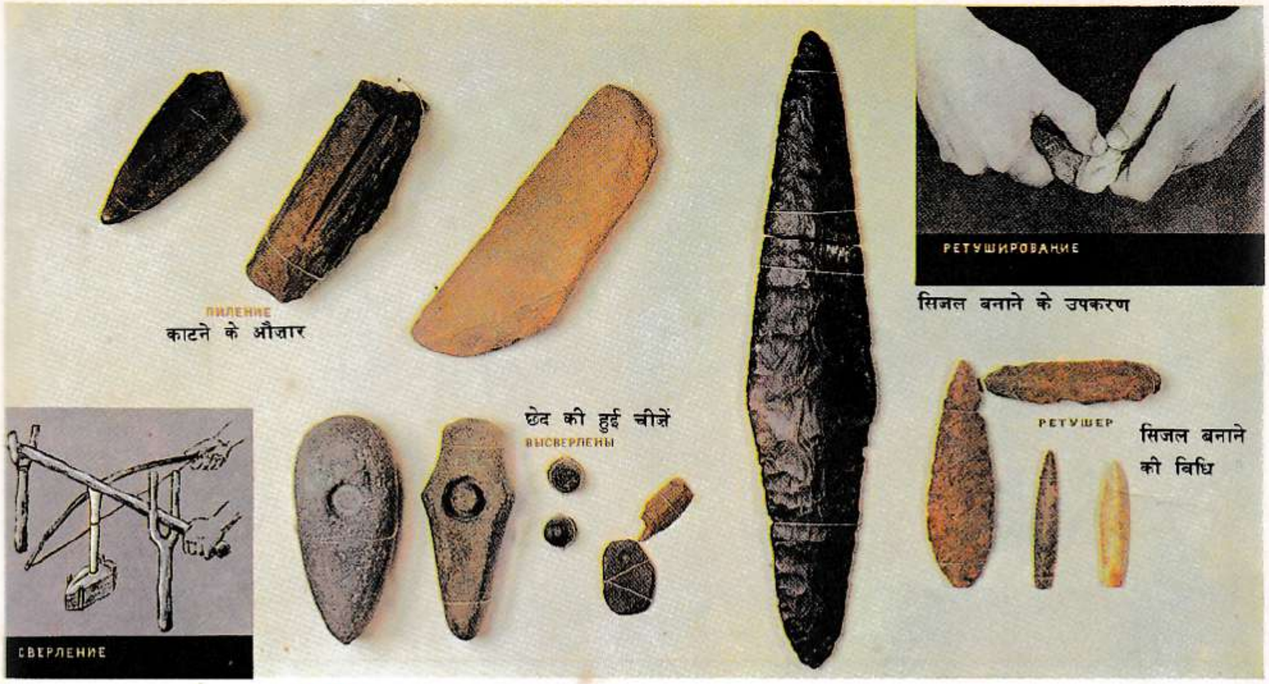
१२. कुल्हाड़ियां। पत्थर। मध्यपाषाण युग। १०,००० से ५,००० वर्ष पूर्व तक।

१३. बसूले। (विभिन्न प्रकार के पत्थरों के)। मध्यपाषाण युग।

१४. गंड़ासे। पत्थर। मध्यपाषाण युग।

१५. तीरों और बरछी की नोकें। पत्थर। मध्यपाषाण युग।

१६. भालों की अनी। पत्थर। मध्यपाषाण युग।



१७





१८



१६



२०

१७. पत्थर की चीजें बनाने की विभिन्न प्रक्रियाएं। छेद करने और सिजल बनाने की विधियां।

१८. खुरचनी। पत्थर। मध्यपाषाण युग।

१६. मछली पकड़ने की कंटियां। हड्डी। मध्यपाषाण युग।

२०. मछली का शिकार करने की कांटेदार बर्छियां। हड्डी। मध्यपाषाण युग।



२१



२४



२२



२३



२५

२१. बर्तन। (६०००–५००० वर्ष ई० पू०)। पट्टियां जोड़कर मिट्टी के बर्तन बनाने की प्रणालियां।

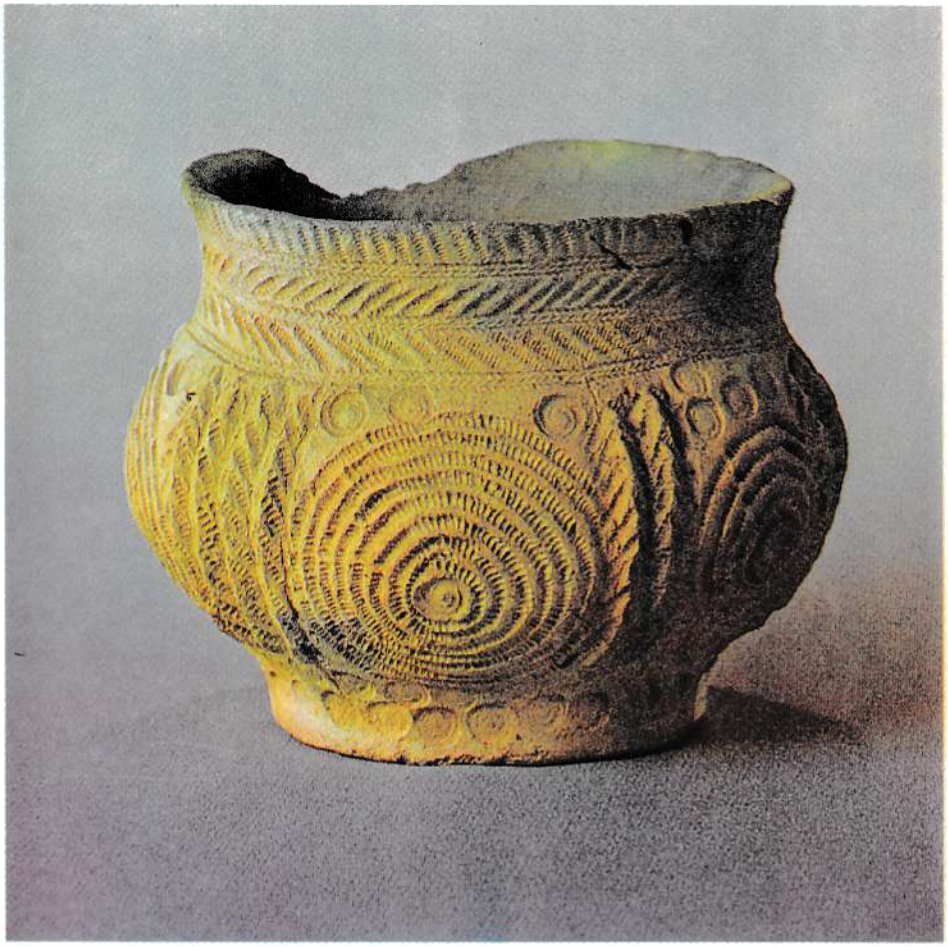
२२,२३,२५,२७,२६. मिट्टी के बर्तन। नवपाषाण युग। ५०००–२००० वर्ष ई० पू०।

२४,२६,२८. खनिज धातु की बनी चीजें। उत्तर कांस्य-युग। २०००–१५०० वर्ष ई० पू०।

२६



२७





२८



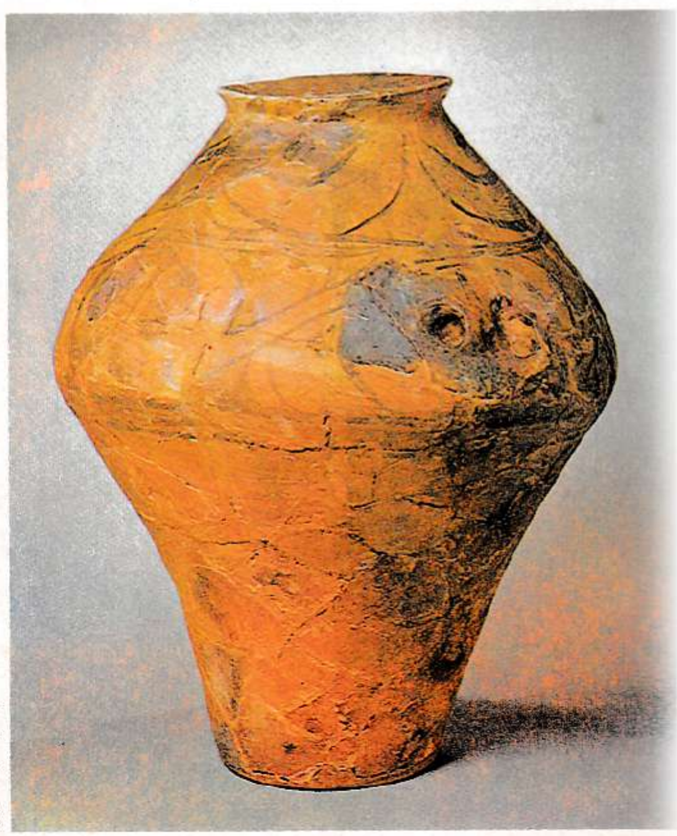
२९

३०



३१





३०,३६,३७. पशु और शिकार के दृश्य। नवपाषाण युग के चट्टानों पर खुदे चित्रों की प्रतिलिपियां। अज़ोव सागर के उत्तरी तटवर्ती क्षेत्र में "पत्थर की क़ब्र" (३०) और करेलिया में मानव का निवास-स्थान (३६,३७)।

३२

३३



३४



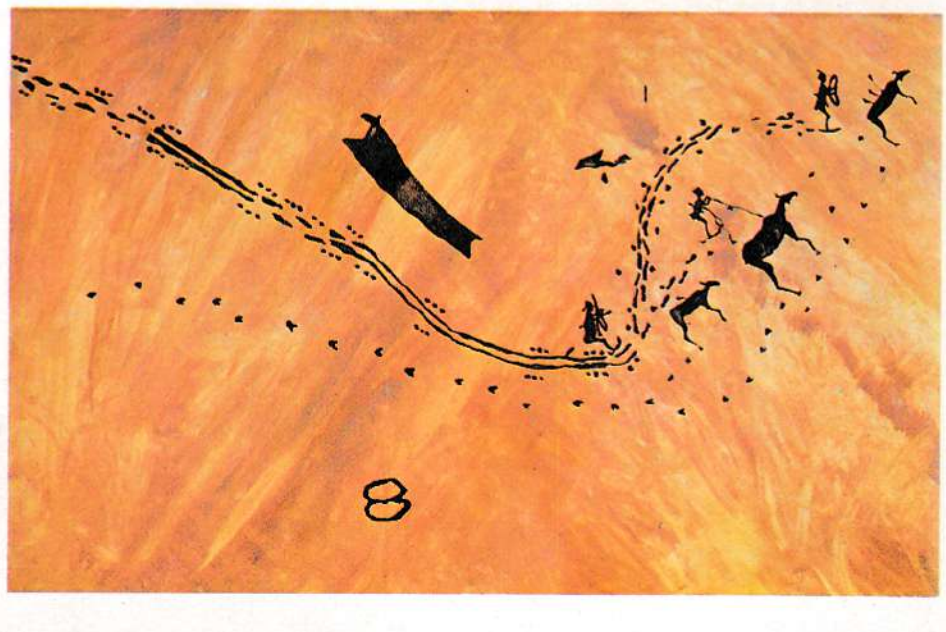
३५



३६



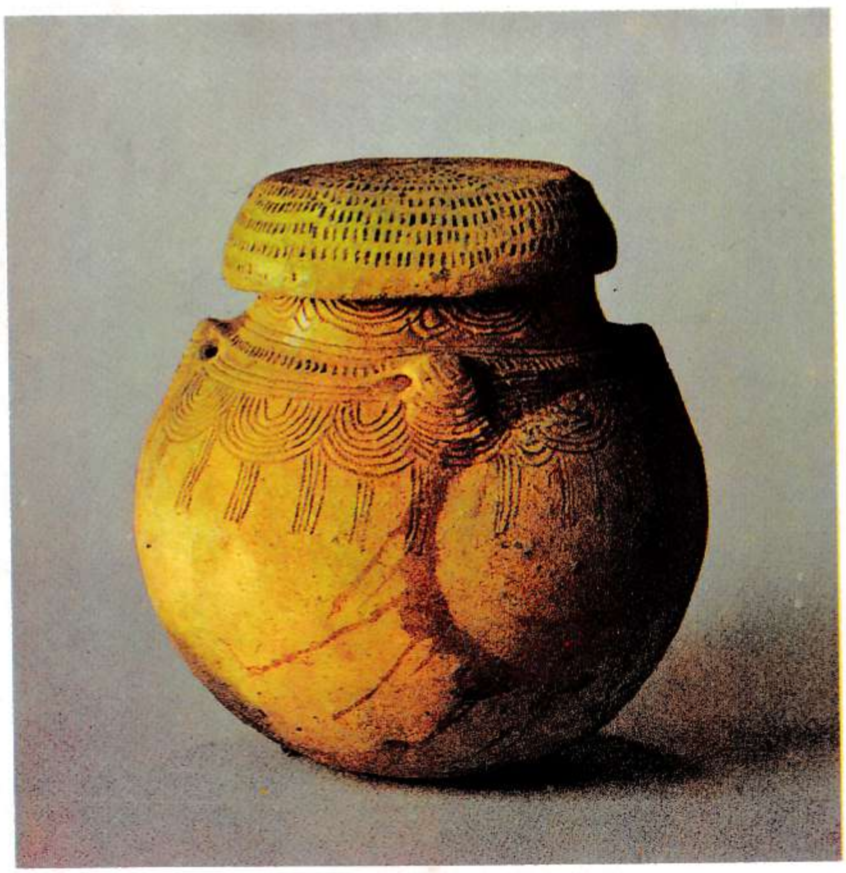
३७



३१–३५. नवपाषाण युग और प्रारं-भिक कांस्य-युग के मिट्टी के बर्तन। (५००–२००० वर्ष ई० पू०)।



३८



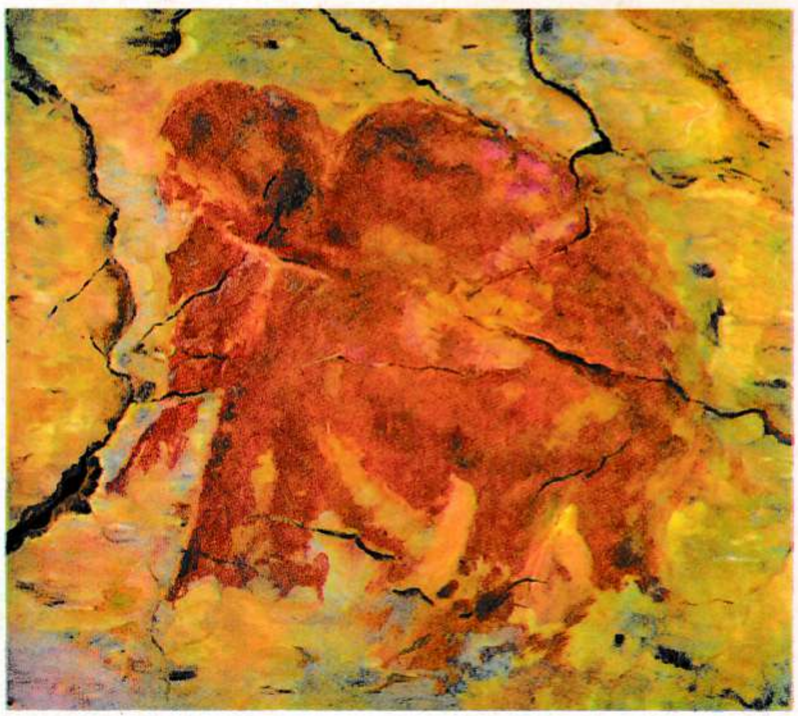
३९

३८,४०,४१. कापोवा गुफा (दक्षि
उराल) में दीवारों पर बने हुए पुरा
पाषाण युग के चित्रों की प्रतिलिपिया



४०

४१





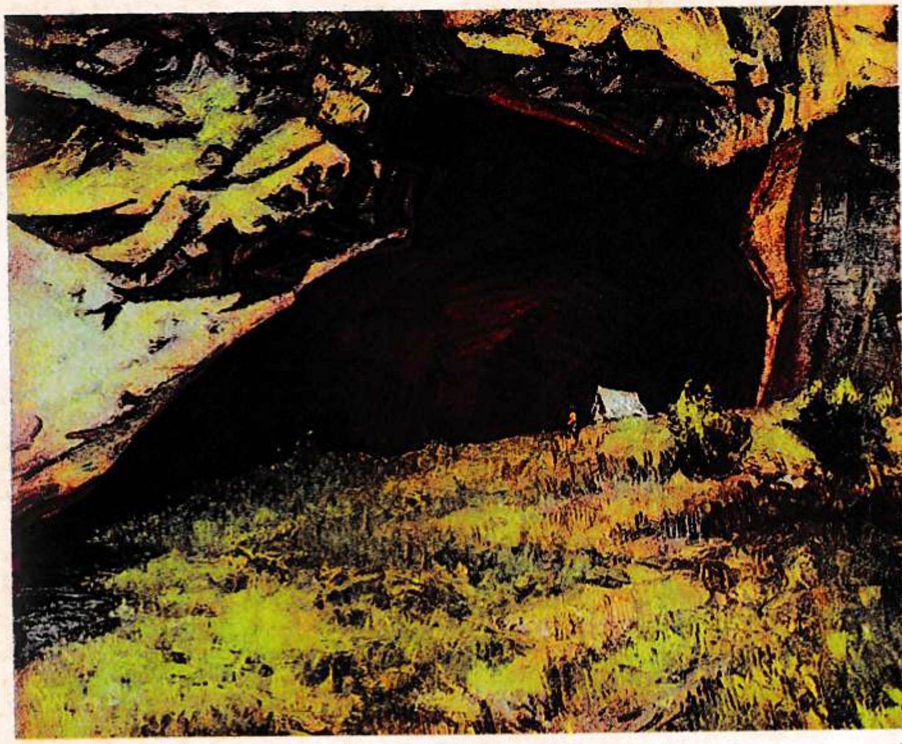
४२

३९. नवपाषाण युग का मिट्टी का बर्तन।
४२. गंडासा। नवपाषाण युग।

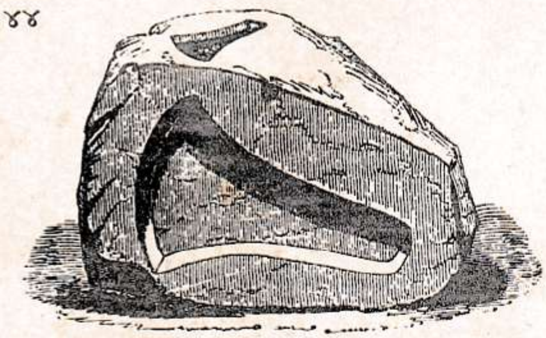
४३, कापोवा गुफा का प्रवेशद्वार।

४४. ढलाई के लिए पत्थर का सांचा। आयर्लैंड। कांस्य युग।

४५. चट्टान पर बना एक चित्र। कापोवा गुफा।



४३



४४



४६



४५

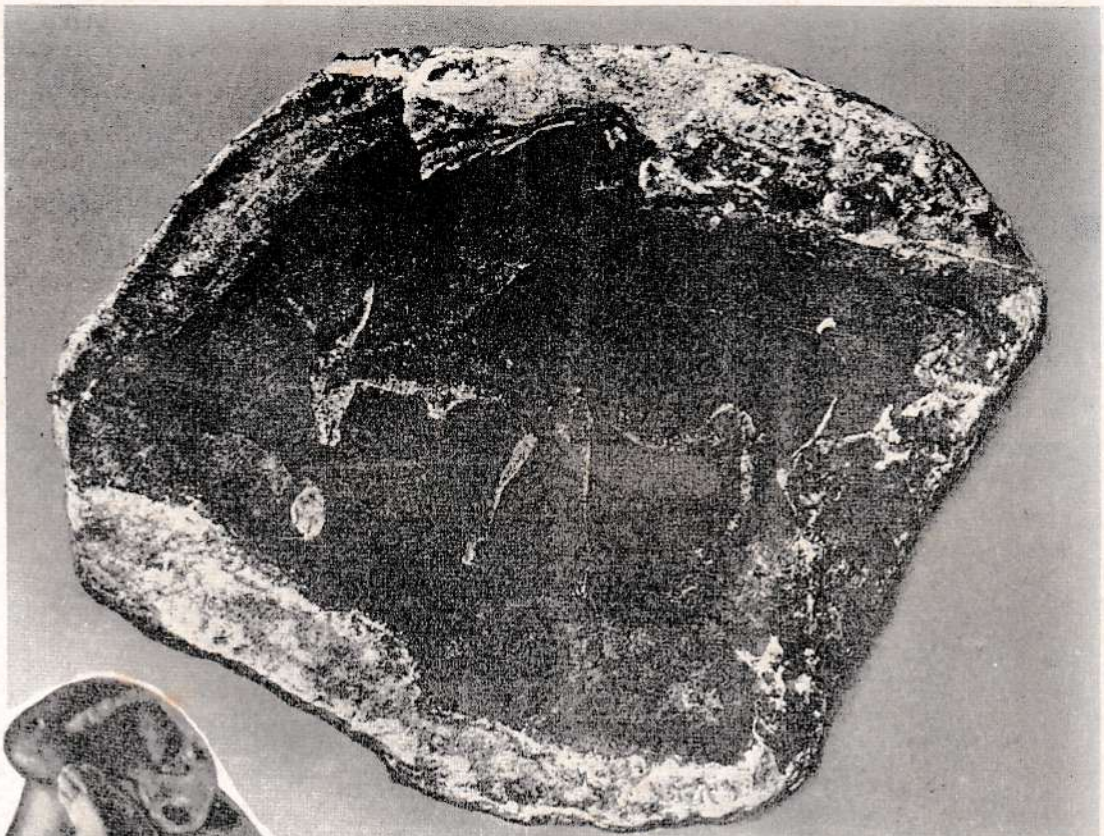
४६. केल्ट जाति के लोगों की कांसे की ढाल पर बने सजावटी बेलबूटे।

४७. हिरन। नवपाषाण युग। दक्षिण अफ़्रीका के बुशमेन आदिवासियों का चट्टान पर बना हुआ चित्र।

४८. आकृति। नवपाषाण युग। रूमानिया।

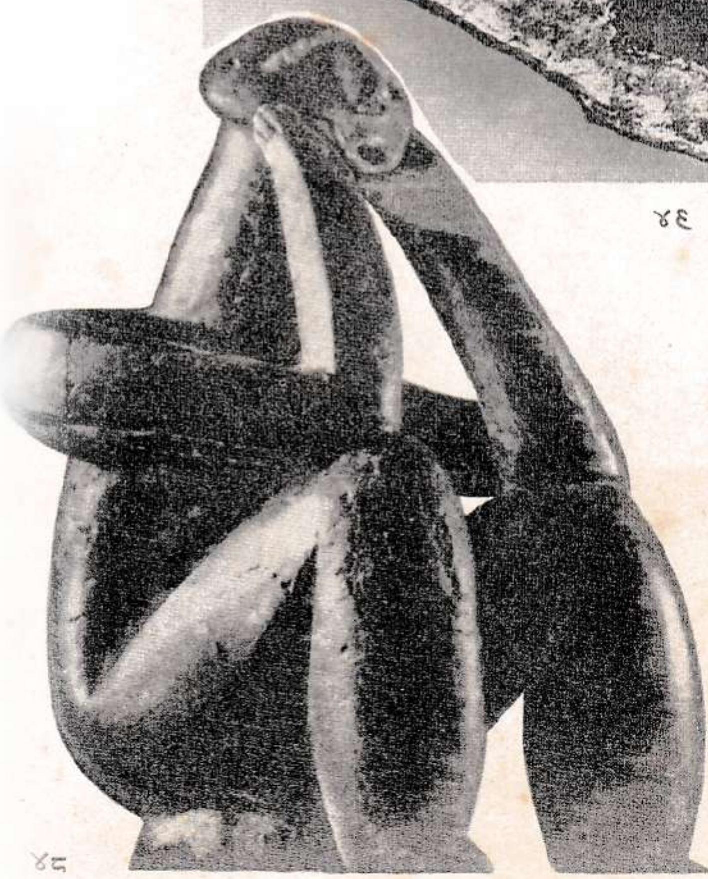
४९. सहारा के गल्लावानों की कला। नवपाषाण युग।

৪৭



৩৪





৪৮



५०



५२



५१



५३

५०. उत्कीर्ण शिलापट्ट। शिकार का दृश्य। रोम। नवपाषाण युग।

५१. एक पत्थर पर खुदा हुआ शिकार का चित्र। नवपाषाण युग। रूमानिया।

५२. खगोल-विज्ञान स्मारक। नवपाषाण युग।

५४



५७



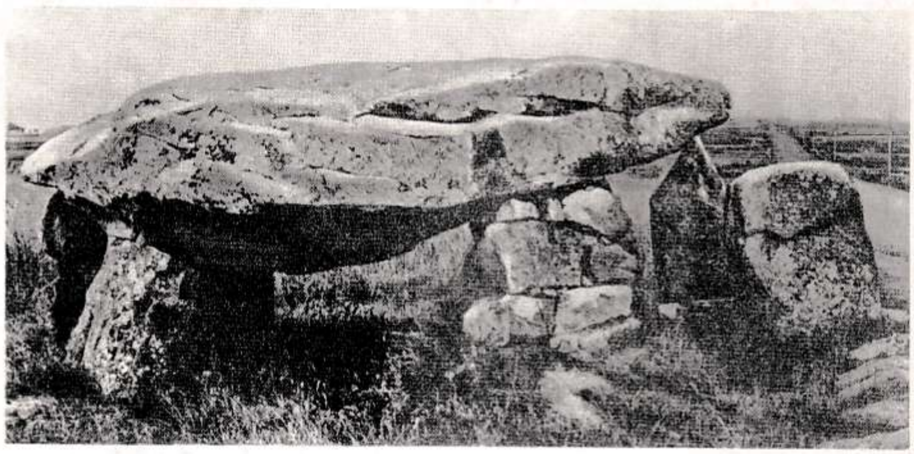
५३–५६. हड्डी की बनी छोटी-छोटी मूर्तियां। नवपाषाण युग की कला। रूमानिया।

५७. सूर्य मंदिर। नवपाषाण युग। इंगलैंड।

५८. क़ब्र के ऊपर बनी वेदी। नवपाषाण युग। इंगलैंड।

५९. नृत्य। खंड-चित्र। नवपाषाण युग। दक्षिण अफ़्रीका की कला।

५८





५५

५९





३५

14

६० सिर की शक्ल का फूलदान। नवपाषाण युग। रूमानिया।

६१,६४. हड्डी की बनी छोटी-छोटी मूर्तियां। पुरापाषाण युग की कला। रूमानिया।



६१



६२

६०





६३

६२. एक मूर्ति। नवपाषाण युग। रूमानिया।

६३. एक मूर्ति का टुकड़ा। नवपाषाण युग। रूमानिया।

६५



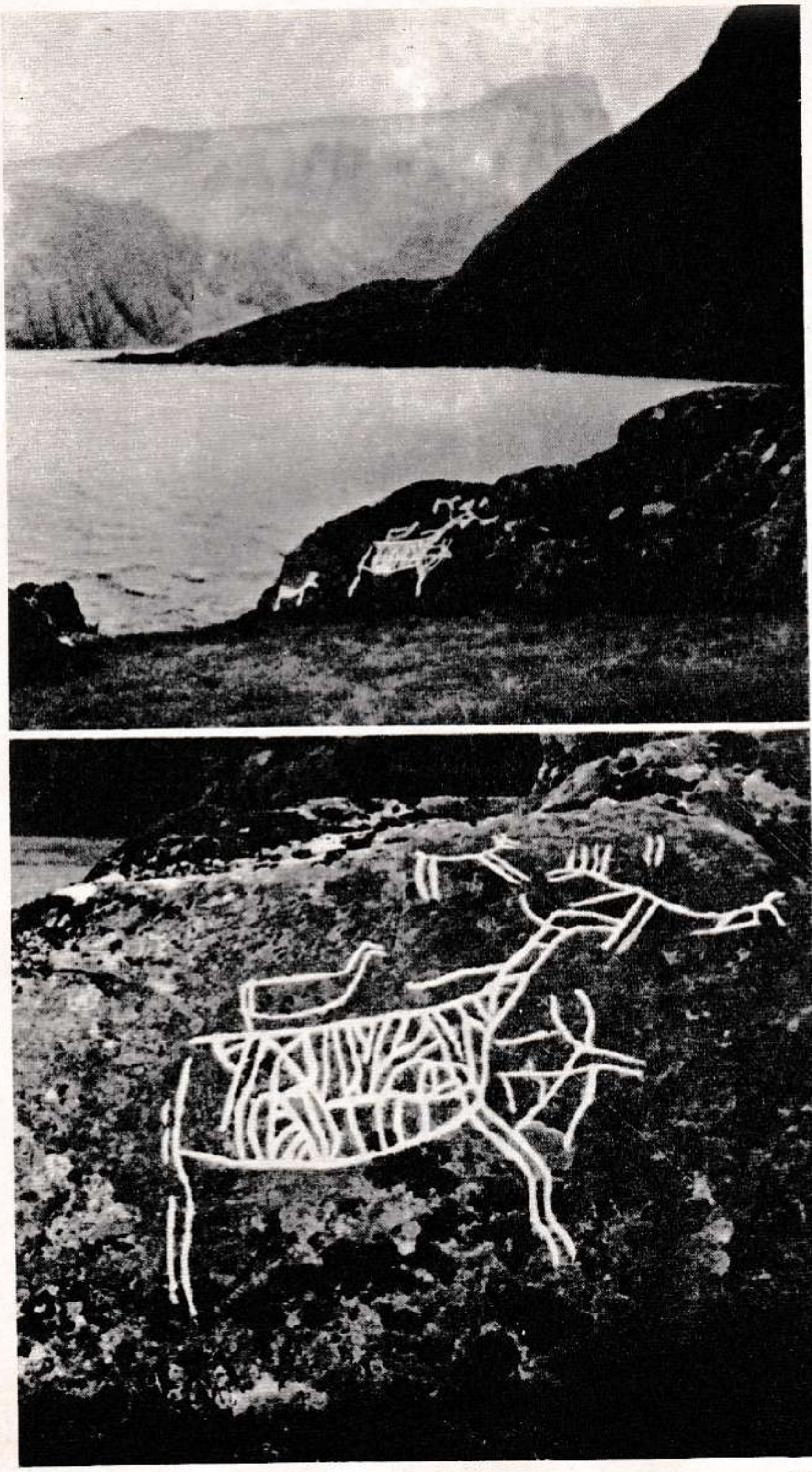
६४







६५. मूर्तियां और मनुष्य के चेहरोंवाले देवता। नवपाषाण युग। नार्वे।



६६



६७



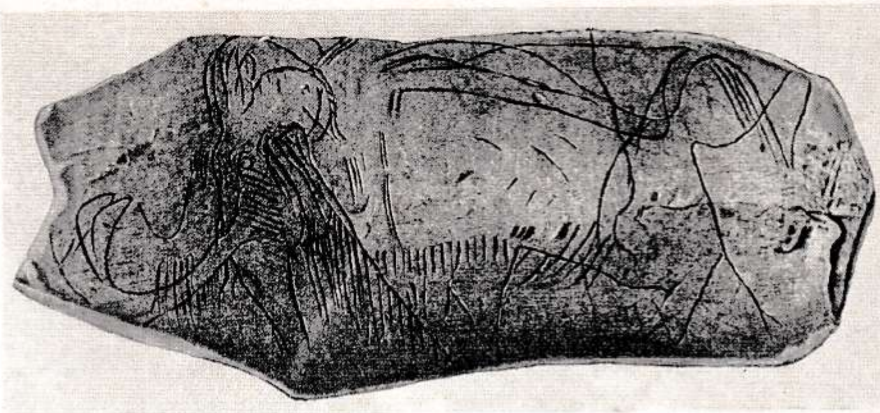
६८

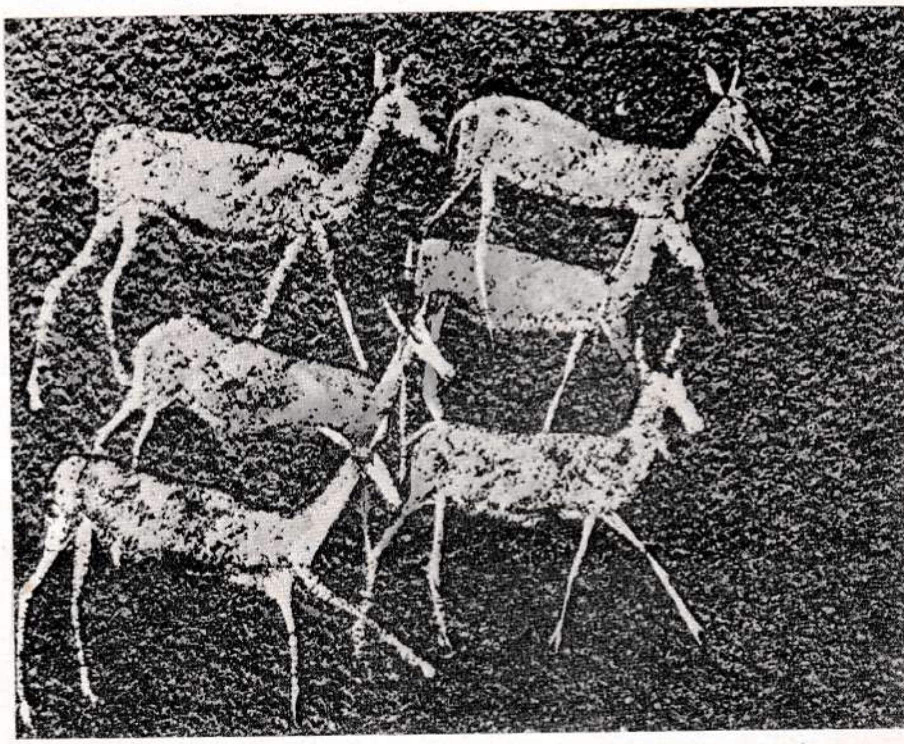
६६. चट्टानों पर खुदे पशुओं के चित्र, सफ़ेद पुते हुए। नवपाषाण युग।

६७. संप्रदाय-चिन्ह के साथ भेड़ का चित्र। नवपाषाण युग।

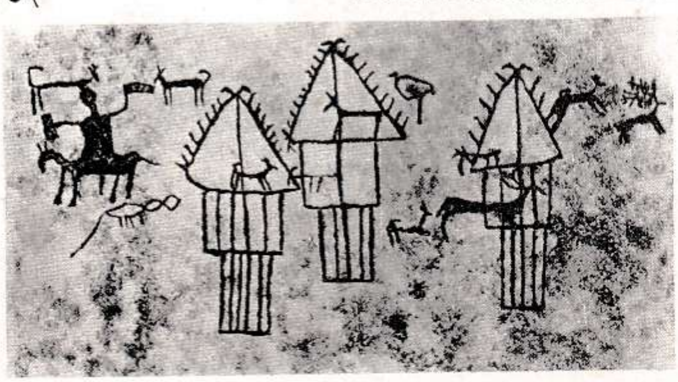
६८. सांप लिये हुए हिरन के सींगोंवाला देवता (या पुरोहित)। नीचे : देवता की पूजा करते हुए एक आदमी। लौह युग। इटली।

६९. हाथीदांत पर बना मैमथ। नवपाषाण युग।
७०. सफ़ेद और सुनहरे रंगों में चित्रांकित हिरनों का झुंड। दक्षिण अफ़्रीका की कला। नवपाषाण युग।
७१. स्त्री की मूर्ति। शक्ति का प्रतीक या उर्वरता की देवी। तांबा युग। फ़्रांस।
७२. इटली के मूलवासियों के पत्थर पर खुदे चित्र। खुदे चित्रों में : एक सवार, विभिन्न जानवर, बल्लियों पर टिके घर।
७३. बुशमेन कला। दक्षिण अफ़्रीका। केपटाउन प्रांत। उपासना-नृत्य।

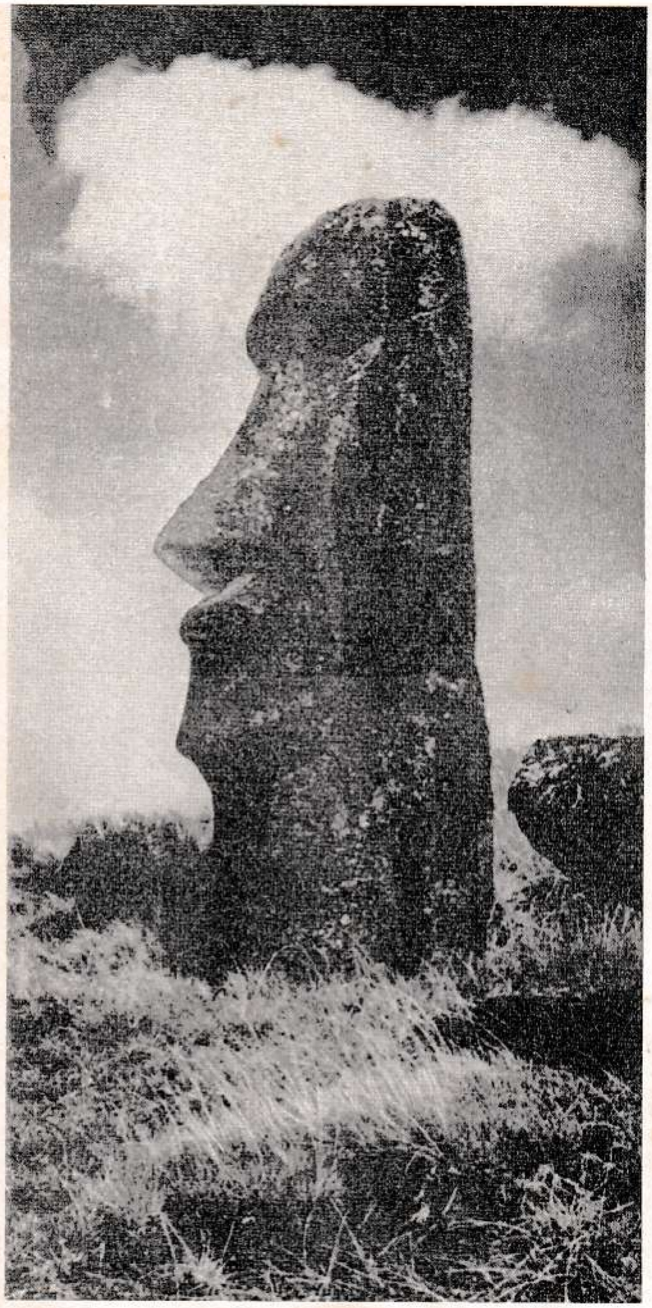
६९


७०


७१


७२


७३

७४



७५

७४. असिताश्म (बसाल्ट) की बनी विशालकाय मूर्ति। पाशहा द्वीप। पोलीनेशिया।

७५. बेनिन कला। पश्चिम अफ़्रीका। कांसे का तेंदुआ।

विषय-सूची

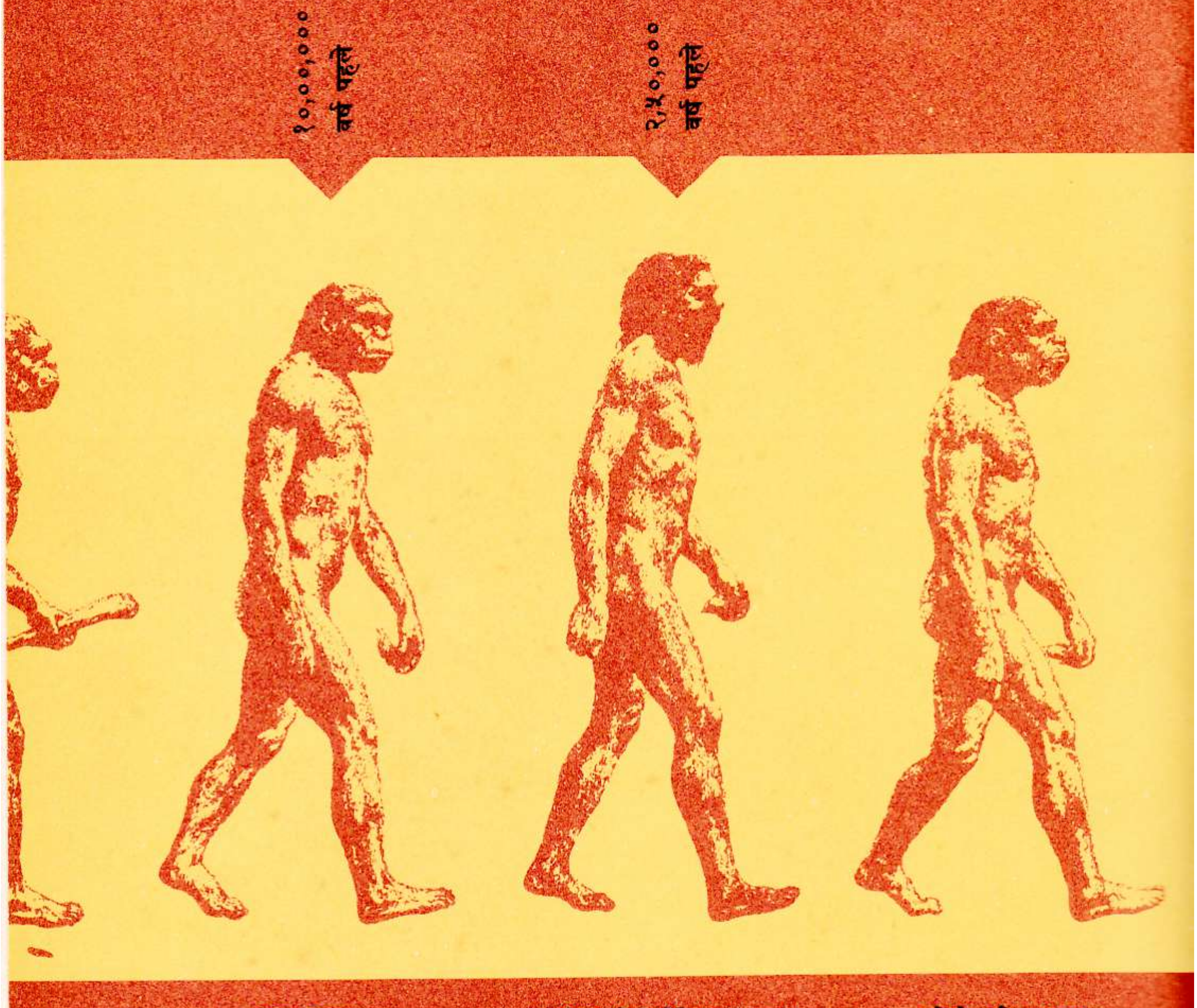
अध्याय ४

अध्याय ५

अध्याय ६

अध्याय ७

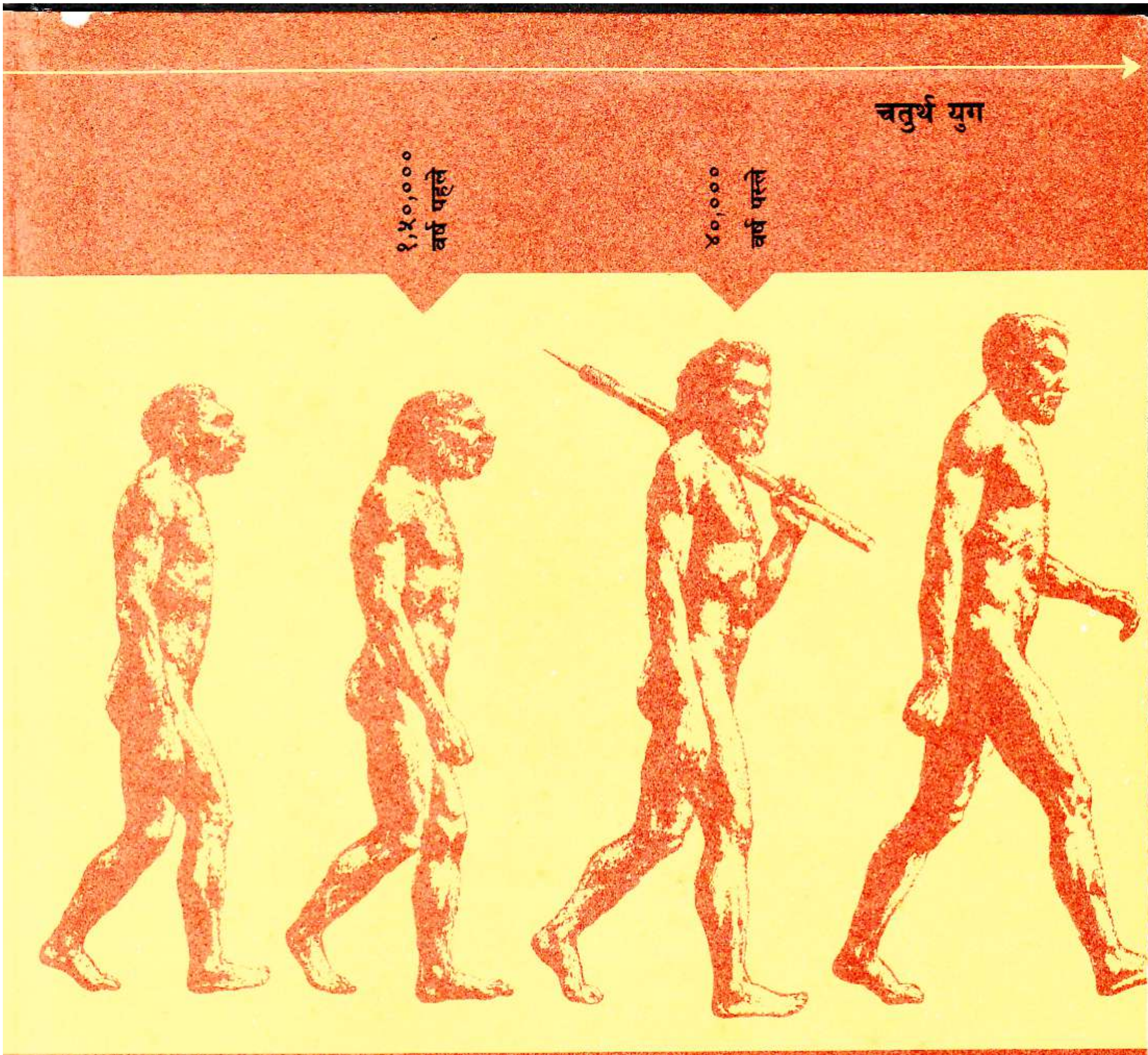
अध्याय १२



होमो ऐरेक्टस

प्रारंभिक होमो सेपिएंस (मानव

सोलो नदी का मानव



फ़ोडीसिया मानव

निआंडरथाल मानव

क्रो-मैगनोन, ऊपरी गुफ़ा और बोस्कोप के मानव

आधुनिक मानव : होमो सेपिएंस

चित्रांकन : आर० जालिगेर, 'यूनेस्को कूरियर' के अगस्त-सितंबर १९७२ के अंक में प्रकाशित चित्र के आधार पर।

तुमने अभी-अभी प्रागैतिहासिक मनुष्य के बारे में एक कहानी पढ़ी है। यह कहानी तुम्हें दास-प्रथा के आरंभ तक ले आती है। इस पुस्तक के दूसरे और तीसरे भाग, जो पूरे किये जा चुके हैं और प्रकाशित भी हो चुके हैं, शक्तिशाली दास-स्वामी राज्यों की उत्पत्ति, दास-स्वामियों के विरूद्ध दासों के संघर्ष के बारे में और एक ऐसी व्यवस्था के पतन के बारे में हैं जो दासता पर आधारित थी।

इस काम को शुरू करने के पहले हमने बहुत सी किताबें पढ़ीं।

हमने चार्ल्स डार्विन और उनके अनुगामियों, व्लादीमिर कोवालेव्स्की तथा क्लीमेंत तिमिर्याज़ेव से यह सीखा कि धरती पर सभी सजीव प्राणी किस तरह तब तक लगातार बदलते और विकास करते रहे जब तक कि अंत में मनुष्य आविर्भूत नहीं हो गया।

फ़्रेडरिक एंगेल्स की किताबें पढ़कर हमने जाना कि श्रम ने वानर को मनुष्य में कैसे बदल दिया।

इवान पाव्लोव ने यह समझने में हमारी सहायता की कि प्रागैतिहासिक मनुष्य ने सोचना और बोलना कैसे सीखा।

कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स और व्लादीमिर इल्यीच लेनिन की कृतियों ने हमारे आगे हज़ारों वर्षों के दौरान मानव समाज के विकास का एक विराट दृश्यक्रम प्रस्तुत कर दिया।

और अगर तुम भी मानव-जाति के इतिहास के बारे में ज़्यादा जानना चाहते हो, तो वही करो, जो हमने किया है – ज्ञान के बुनियादी स्रोतों की तरफ़ जाओ, उन वैज्ञानिकों की पुस्तकों को पढ़ो, जिन्होंने पृथ्वी पर जीवन का और मानव-जाति के विकास का अध्ययन किया है।

हमारा लक्ष्य तुम्हें विज्ञान की दहलीज़ पर लाना और यह कहना था "प्रवेश करो!"



रादुगा प्रकाशन
मास्को

